

देवराज सुराणा, व्यावरः—
 मध्य-श्री वैश्वेय पुस्तक प्रकाशक समिति,
 रत्नाम (मध्य-भारत)

सुराणा—
 श्री वैश्वेय प्रिंटिंग प्रेस, रत्नाम

प्रकाशक—
 छगनकाज दुगाड मल्हारगडा—
 मध्य-श्री वैश्वेय पुस्तक प्रकाशक समिति,
 रत्नाम (मध्य-भारत)

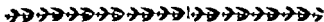
युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वे,
जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला ।
अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,
धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः ॥

दिवाकर दिव्य ज्योति के नियम



- (१) एक सौ या इससे अधिक सहायता देने वाले का दिवाकर दिव्य ज्योति के जितने भाग प्रकाशित होंगे सभी में प्रकाशित होगा ।
- (२) एक सौ से कम देने वाले का नाम एक भाग में ही शित होगा ।
- (३) अपना फोटो कोई देना चाहे तो एक भाग में ही होगा और उसकी सहायता की रकम से २५) रुपये हन होंगे ।
- (४) सहायताओं की सेवा में एक पुस्तक बिना मूल्य जायगी ।
- (५) पुस्तक किसी की रकम इन्ही पुस्तकों के दूसरे सल में कगेगी ।
- (६) जो स्वाई प्राइक होना चाहे उन्हें २) रुपये कराना पड़ेगा ।

—अध्यक्ष



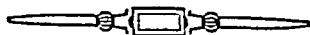
प्रवचनकारः—

स्व. जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री चौथमल्लजी महाराज



जन्मकान्तिकशु १३ रविवार—१९३४, नीला फाल्गुन शु ५ रविवार—
स्वर्गागोष्ठण ६ रविवार सम्वत् २००७

सहायकगण की शुभ नामावली



दिवाकर दिव्य ज्योति के नाम से स्व० श्री जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित रत्न मुनि श्री चौथमलजी महाराज के प्रभाव-शाली व्याख्यान सीरिज रूप में प्रकाशित कराने के लिए निम्न-लिखित महानुभावों ने सहायता देकर अपूर्व लाभ लिया, इसके लिए सहर्ष धन्यवाद है —

रुपये —

- ५०१) श्रीमान् सेठ सिरेमलजी नन्दलालजी पीतलिया,
सिहोर की छावनी
- | | | |
|--------|---|-----------|
| ५००) | „ „ गुलराजजी पूनमचन्दजी, | मदनगज |
| ३००) | „ „ चौथमलजी सुराणा, | नाथद्वारा |
| २५०) { | „ „ कुंवर मदनलालजी सचेती, | व्यावर |
| | „ „ सेठ जीवराजजी कोठारी, | नसीरावाद |
| २००) | „ „ शम्भूमलजी गगारामजी धंवाई फर्म की तरफ
से श्रीमान् केवलचन्दजी सा० चोपड़ा,
सोजत सीटी | |
| १५०) | „ „ राजमलजी नन्दलालजी | मुसावल |
| १५०) | „ „ हस्तीमलजी जैठमलजी, | जोधपुर |
| १२५) | „ जिनगर अमरचन्दजी इन्दरमलजी गौतमचन्द जैन,
गंगापुर | |

- १२४) भीमाम् सेठ कस्तूरचन्द्रजी पुनमचन्द्रजी त्रैन, गंगापुर
 १२५) ,, ठकेदार सोलारामजी मंवरलालजी जयपुर
 १२६) ,, , धनराजजी पट्टरलालजी, ,,
 १२७) ,, सेठ माखणचन्द्रजी धनलालजी गोटी, जयपुर
 १०१) ,, जिनगर वज्रमलजी रोशनलालजी, गंगापुर (मिबाइ)
 १००) ,, सेठ बालचन्द्रजी पुनराजजी मुखत, सिद्धनारायण

दो शब्द

भूमण्डल पर वसे मानव जगत् में वाणी का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाणी का बल भी एक बल है, और वह बल वह है जो जनता के मन प्रदेश पर अखण्ड साम्राज्य स्थापित करने के लिए संसार की दूसरी तूफानी ताकतों से कहीं अधिक महत्त्व रखता है।

जब जन-समूह में सदाचार की सुगन्ध से महकता हुआ महा पुरुष बोलने लगता है, तो ऐसा मालूम होता है, मानो अमृत का भरना वह चला हो। सब ओर शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाता है और जनता के मन के कण-कण में देवी भावनाओं का मधुर स्वर संकृत हो उठता है। महान् आत्माओं की वाणी अन्तर्जगत की पवित्रता का उज्ज्वल प्रतीक होती है। इस घात को ध्यान में रखकर एक आचार्य कहता है—‘सहस्रेषु च पण्डितः, वक्ता शतसहस्रेषु।’ अर्थात् हजार में एक पण्डित होता है, और लाख में कहीं एक वक्ता मिलता है। वक्ता, और वह भी योग्य वक्ता होना, वस्तुतः कुछ साधारण घात नहीं है।

अद्वेय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज अपने युग के एक महान् विशिष्ट प्रवक्ता थे। आपकी वाणी में सुधारस छलकता था। जिसने भी एक बार आपका प्रवचन सुना, वह फिर कभी भूला नहीं। आप अपने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध से कर देते थे। राज महलों से लेकर झोंपड़ियों तक में आपकी वाणी ने वह स्थान पाया कि जनता आश्चर्य-चकित हो उठी। आपकी वाणी

में बह जाऊ या कि बचा, बूझे, क्या बाकूड बचा तरुण, क्या परिहृत क्या साधारण अशोच-जन सभी पर अपना प्रभाव डालता या भीरु उपस्थित जन समूह को एक दार हो सम्राज्यता की पवित्र तरंगों में दूर तक बहा ही स जाता था। आप अहाँ भी जाते बड़ी आपक उपदेशों के प्रभाव से जनता में आशुति की एक मई कहर, एक मई बहल पहल पैदा कर देते थे।

प्रस्तुत 'दिवाकर दिव्य खोति' नामक पुस्तक जैन दिवाकरजी के जन्ही प्रभावशाली प्रवचनों का एक सुन्दर संग्रह है। वं मुनि जी प्यारचन्द्रजी महाराज की शुद्धमति का यह मधुर पत्र, जनता की आध्यात्मिक मूल का शान्त करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। मैं मुनि जी प्यारचन्द्रजी को इसके लिए बन्धुभाव ईगा कि उन्होंने जी दिवाकरजी की मोठहृद पर बरसटी हुई बचने रूप दिव्य किरणों को बरसद करवाया जिस से सर्व साधारण जनता युग युगान्तर तक प्रकाश प्राप्त करती रहेगी।

जी दिवाकरजी महाराज की आत्म्याम शैली सरल, सरल और सुशोभ है। वे बहुत गहराई में न बहर कर जनता के हृदय को युगानुयुक्त स्पर्श करते हुए चलते हैं। उनके आत्म्यामों का मूलाधार जनता में नैतिक मानवताओं को प्रदीप्त करना है। वे सीधी सारी भाषा में एक छोटी सी बात इस ईग स कह जाते हैं, जो कुछ बेर तक भोला या पाठक के मन में गंजती रहती है। प्रस्तुत संग्रह में इस शैली का चमत्कार पाठकों को पत्र तत्र सपत्र मिलेगा। मैं आशा करता हूँ जैन धर्म सभी वर्ग बन्धु इस समयोग्योपयोगी सुन्दर खोति से, अन्धकार से भरे जीवन में खचित प्रकाश प्राप्त करेंगे।

महर्षि
ता ११२-२१ }

—सपाध्याय अमर मुनि

प्रकाशकीय-निवेदन



प्रातः स्मरणीय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज “प्रसिद्ध वक्ता” के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके व्याख्यान अत्यन्त रोचक, सरस, सरल और नैतिक एवं धार्मिक उपदेशों से परिपूर्ण होते थे। लाखों श्रोताओं ने उनकी पवित्र वाणी सुनकर अपना जीवन कृतार्थ किया है। खेद है तारीख १७-१२-५१ को कोटा नगर में गुरुदेव स्वर्ग सिधार गये। हमारे लिए यह बड़े से बड़े दुर्भाग्य की घात थी। गुरुदेव के कतिपय स्थानों के व्याख्यान सकेत लिपि द्वारा लिपि बद्ध करा लिये गये थे। उन्हीं व्याख्यानों को सम्पादित करवा कर आज “दिवाकर दिव्य ज्योति” के रूप में हम पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं।

“दिवाकर दिव्य ज्योति” का यह दूसरा प्रकाश है। अगले कुछ प्रकाश भी सम्पादित होकर तैयार हो चुके हैं और आशा है कि पाठकों के कर-कमलों में उन्हें भी हम यथासंभव शीघ्र ही उपस्थित कर सकेंगे। गुरुदेव की यही एक स्मृति अवशेष रह गई है जिसके सहारे हम अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बना सकते हैं। अतएव पूर्ण विश्वास है कि पाठक दिवाकर दिव्य ज्योति को उसी भाव से अपनायेंगे, जिस भाव से उनके व्याख्यानों को अपनाते थे।

इन व्याख्यानों का सम्पादन पश्चिमत श्री शोभाचन्द्रजी मारिझ सम्पादन कक्षा बिरारद ने किया है। सम्पादित होने के पश्चात् साहित्य रत्न विश्वर मुनि श्री प्यारचन्दजी महा ने इनका आधोपाग्त सिद्धान्तोक्त और आधारपठ संशोधन भी किये हैं। मुनि श्री जैन बिबाकरजी महाराज के प्रथम शिष्य हैं, और प्रबचनों के रूप में इनकी स्मृति को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। वास्तव में आपकी शुद्ध भक्ति इस युग में एक सुन्दर एवं आधारों वराहरथ है जो प्रत्येक के लिए अनुकरणीय है। मुनि श्री मे तथा पं० बर्ष मुनि श्री कस्तूरचन्दजी म शास्त्रर मुनि श्री सहस्रमन्त्री महा प्रसिद्ध ब्रह्मा पं मुनि श्री रामकाशजी म पं रत्न मुनि श्री प्रतापमन्त्री म पं मुनि श्री हीराकाशजी म सा रत्न मुनि श्री मगनकाशजी म, मन्तोहर व्या० मुनि श्री चम्पाकाशजी म सा रत्न मुनि श्री केवलचन्दजी म, सा रत्न मुनि श्री मोहनकाशजी म, व्या मुनि श्री हुक्मीचन्दजी म, तपस्वी विजय राजजी म व्या० मुनि श्री बर्षमानजी म सेवा माजी मुनि श्री मन्नाकाशजी म, प्रमादर व्या मुनि श्री चन्दनमन्त्री म सा बिरारद मुनि श्री विमलकुमारजी म, धर्म मूकण मुनि श्री मूकचन्दजी महा सा रत्न भवधानी श्री अरोक मुनिजी म० आदि मुनिराजों ने इसमें संशोधन सिद्धान्तोक्त प्रेरणा और उचित माग दर्शन किया है। उसके लिए असीम आभारी हैं। जिन द्वार भीमों की आर्थिक सहायता से सम्पादन-प्रकारण का कार्य आरंभ और अमंथर हो सका है, उनकी मामाजी धृषद् की का रही है। उनके प्रति भी हम अत्यन्त आभारी हैं।

यहाँ इतना निवेदन कर देना अनुचित न होगा कि गुरुदेव के व्याख्यानों के प्रकाशन का कार्य विराट है और एक सीरीज के रूप में वह चालू हो रहा है । अतएव ज्योति की एक २ प्रति अपने वाचन में रखकर गुरु-भक्ति का परिचय तथा इस महान् कार्य में प्रेरक बनकर अनुष्ठान में आप सहायक होंगे । गुरुदेव की शिक्षाएँ जीवन को ऊँचा उठाने वाली और सारगर्भित हैं । आशा है पाठक इनसे पूर्ण लाभ उठाएँगे और इनका अधिक से अधिक प्रचार करने में सहायक होंगे । प्रकाशन में अगर किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो और सावधानी रखने पर भी कोई यात आगम से न्यूनाधिक हो गई हो तो विद्वज्जन सूचना करने की कृपा करें ताकि अगले संस्करण में संशोधन किया जा सके ।

निवेदक —

देवराज सुराणा

अध्यक्ष,

छगनलाल दुग्ड़

मन्त्री,

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति,

रतलाम (मध्य-भारत)

प्रस्तावना



जिन महापुरुष के प्रवचनों के संग्रह में से यह द्वितीय पुष्प पाठकों के कर-कमलों में पहुँच रहा है, उनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ अधिक विरलता न तो आवश्यक है और न प्रासंगिक ही। उन्हें स्वर्गसीन हुए अभी एक ही वर्ष हो रहा है। गत वर्ष विसम्बर मास में ही कोटा में उन्होंने महाप्रस्थान किया था। अठपच शायद ही कोई ऐसा पाठक होगा जो उन महापुरुष से परिचित न हो। पचास वर्ष से भी अधिक की अपनी संयम-साधना के दीर्घ काल में वे भारत के विभिन्न प्रदेशों में बिचरे-बे और अपने अद्भुत प्रभाव से ब्रह्ममात्र को उन्होंने आकर्षित किया था। उनके व्यक्तिगत अनुशासन उनके नेत्रों से कहरवा का असाधारण प्रवाह बहता था उनके हृदय में नवनीत की कोमलता थी, उनकी बायीं में सुधा की मधुरता थी उनके समस्त जीवन व्यवहार में सरलता संवतता और मरुता का प्रशस्त सम्मिश्रण था। इन सब विरोधताओं के कारण कोटि-छेदि बनता के वे ब्रह्ममात्र बन सके थे। 'गुरुदेव' और 'जैन विवाकरजी' के नाम से वे सर्वत्र प्रख्यात हुए। क्या बालक, क्या बूढ़ क्या राजा और क्या मछा क्या नर और क्या माँरी, सभी के लिए उनकी जीवनी आश्रयदात्री है। आश्रय उनके पावन व्यक्तिगत की सृष्टि मात्र से हृदय अभीर हो उठता है।

गुरुदेव प्रायः प्रतिदिन प्रातःकाल प्रवचन दिया करते थे। प्रवचन करने की उनकी रीति अद्वितीय थी। उनके कोमल कण्ठ

मैं न जाने क्या जादू भरा था कि जो एक दिन भी उनके प्रवचन को सुन लेना, वही उनका पुजारी बन जाता था । मगर पुजापे की उन्हें चाह नहीं थी । कभी माँगते तो बस एक ही चीज माँगते थे—धान करो, शील पालो, तप करो, सुन्दर भावना रखो । यही उनका चढावा था । इस प्रकार जैन दिवाकरजी ने लेना नहीं, सिर्फ देना ही देना सीखा था । वे जब तक जीवित रहे, दुनिया को अनमोल भेंट, अपने प्रवचनों द्वारा भी और अपने जीवन-व्यवहार द्वारा भी, देते ही रहे ।

जैन दिवाकरजी सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और फारसी भाषाओं के विद्वान् थे । उनका शास्त्रीय ज्ञान काफी गहरा था । दूसरे साहित्य का अध्ययन भी विशाल था । फिर भी उनके प्रवचनों की भाषा बहुत सरल होती थी इतनी सरल कि अक्षरज्ञान से शून्य देहाती जनता भी उसे बिना किसी दिक्कत के सहज ही समझ लेती थी । भाषा की सरलता के साथ शैली की उत्तमता का बड़ा सुन्दर समन्वय हुआ था । वे जो कहते, वड़े मनोरञ्जक ढंग से कहते थे । अपने श्रोताओं को जिस किसी भावना के रस में डुबाना चाहते, उसी में सफलता के साथ डुबा देते थे । उनका भाषण सचमुच बड़ा प्रभावशाली होता था ।

गुरुदेव के उपदेशों से प्रभावित होकर सहस्रों नर-नारियों ने अपने जीवन का सुधार किया है । राजस्थान के राजाओं, जागीरदारों और जमींदारों में उनका मान उतना ही था, जितना लगभग जैनसमाज में । यही कारण है कि गुरुदेव के प्रवचनों से प्रभावित होकर बहुतों ने जीवहिंसा का त्याग किया, शिकार खेलना छोड़ा, शराब पीना छोड़ा, मासभक्षण छोड़ा, बहुतों ने घीड़ी-

सिगरेट आदि मादक द्रव्यों का परित्याग किया। इससे कोई यह न समझे कि जैन-विचारधरती जब बर्ग के ही गुरुदेव थे। नहीं तेजी मोची, कुम्हार रेगर, मोची आदि कौमों में भी उनका वैसा ही मान था। इन कौमों से सैकड़ों आश्रमियों ने गुरुदेव की संगति करके अपनी आदतों को सुधार कर अपने जीवन को उत्तम बनाया है। कहीं तक कहे, बर्ग जाति आदि के मेढमाच के बिना उन्होंने प्राणी मात्र पर असीम अनुकम्पा बरसाई है। उनके पावन प्रवचनों को सुनकर अगणित मनुष्यों ने मनुष्यता पाकर अपने को धर्म बनाया है।

गुरुदेव के प्रवचनों को संकट क्षिपि में भी धर्मपाकड़ी मेहता द्वारा छिपिबद्ध कर किया गया था। इसी प्रवचन जैन तत्त्व मर्मज्ञ संपादन कला विद्यारत्न पंडित श्री शोभाचन्द्रजी मारिछ द्वारा सम्पादित होकर 'विद्याकर दिव्य ज्योति' नामक सीरीज के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। इस द्वितीय पुण्य के बाद शीघ्र ही अगस्त पुण्य भी पाठश्रे के हाथों में पहुँच जाने की आशा है।

प्रत्येक प्रवचन आदिनाथ महाबाहू आपमदेव की स्तुति से प्रारंभ होता है। गुरुदेव महामर स्तोत्र के एक पद्य से अपना प्रवचन प्रारम्भ करते थे। इसी पर विवेचन करते हुए अपने अमीष्ट विषय पर जा पहुँचते थे और अन्त में प्रायः किसी चरित पर ध्यात्मान करते थे। चरित का व्याख्यान भी उपदेशों से परि पूर होता था। बीच-बीच में सुन्दर उपदेश फेरमाते हुए चरित-व्याख्यान को वे अधसर किया करते थे। कतनी इसी मौक्तिक रौखी को सुपडित रखते हुए व्याख्यानों का सम्पादन किया गया है।

गुरुदेव बड़ा हाने के साथ कवि भी थे। उनके द्वारा विरचित पद्य-साहित्य काफ़ी विराट है। अक्सर वे अपने प्रवचनों में

अपने ही रचे हुए पद्यों को सुनाया करते थे । इससे श्रोताओं का मन ऊबता नहीं था और वे अन्त तक एक रस होकर मुग्धभाव से प्रवचनों का श्रवण करते रहते थे । आवश्यकतानुसार संस्कृत प्राकृत और उर्दू आदि भाषाओं के पद्यों का भी समावेश होता था, जैसा कि पाठक इन प्रवचनों में पाएँगे ।

जैन दिवाकरजी के प्रवचन सार्वजनिक होते थे । बहुजन-हिताय, बहुजनसुखाय, ही उनकी समस्त प्रवृत्तियों का मूल आधार था । अर्थात् अधिक से अधिक जनता की भलाई के लिए ही वे प्रयत्नशील रहते थे । जनसमाज का हित सदाचार से ही हो सकता है, अतएव सूक्ष्म तत्व विवचना की अपेक्षा उनके प्रवचनों में सदाचार के प्रति प्रेरणा ही अधिक दृष्टिगोचर होती है । ज्ञान के साथ जीवन को ऊँचा उठाने वाले आचार की ओर ही वे अधिक ध्यान आकर्षित किया करते थे । सम्भवतः उनकी सूक्ष्म दृष्टि से भारतीय जनता की आचारहीनता—जो दिनोंदिन बढ़ती चली जाती है—छिपी नहीं रह गई थी और वे इस त्रुटि को दूर करना चाहते थे ।

दिवाकरजी की सुधास्त्राविणी वाणी आज भी हमारे कर्ण-कुहरों में गूँज सी रही है । हमें वर्षों तक उनकी वाणी को श्रवण करने का सौभाग्य मिला है । परन्तु जिन्हें उनकी वाणी सुनने का अवसर नहीं मिला है उनके तथा भविष्य में होने वाली प्रजा के हित के लिए उनके प्रवचनों का सुरक्षित रह जाना अतीव उपयोगी है । उनकी सुरक्षा में जिन-जिन महानुभावों ने योग प्रदान किया है, वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं और भावी प्रजा के आशीर्वाद के भी पात्र बनेंगे ।

व्यक्ति या असली व्यक्तित्व उसके आचार-विचार में ही है । महान से महान व्यक्ति का शारीरिक ढाँचा तो वैसा होता है

जैसा साधारण से साधारण आदमी का । फिर भी दोनों में जो अन्तर है, वह उनके आचार विचार का ही है । इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो क्या जायगा कि गुरुदेव का अस्तौ व्यक्तिचर जनम अन्तर्जीवन, उनके एक और पवित्र आचार-विचार में ही निहित था । दुर्भाग्य से आज हम उनके आचार को नहीं देख सकते मगर भीमाग्न से हमके विचार आज भी इन प्रवचनों के रूप में हमें सुलभ हो रहे हैं । अतएव कहना चाहिए कि इन प्रवचनों के रूप में आज भी गुरुदेव जीवित हैं और अब तक पृथ्वीतल पर यह प्रवचन मौजूद रहेंगे गुरुदेव भी जीवित रहेंगे । प्रवचनों के राष्ट्र-राष्ट्र में गुरुदेव की आत्मा गूँज रही है । इनके अक्षर-अक्षर में गुरुदेव समाये हुए हैं । वह सारे प्रवचन उनके अन्तर्जीवन के प्रतिबिम्ब हैं । वह उनके सच्चे स्मारक ही हैं । इनके प्रचार से बढ़कर गुरुदेव के प्रति अपनी मद्धा निवेदन करने का और कोई तरीका नहीं हो सकता । गुरुदेव की दिवंगत आत्मा को यह ज्ञान कर अवश्य सम्तोष होगा कि तत्का आरंभ किया हुआ कार्य आज समाप्त नहीं हो गया है । वे अन्तिम समय तक जो प्रचार करते रहे, वह आज भी जारी है ।

अन्त में हम उन सब को जो गुरुदेव की 'अक्षर' रूप में जीवित रहने का प्रवास कर रहे हैं, अपनी मर्णाश में रहते हुए पम्बवाह देना चाहते हैं और आशा करते हैं कि गुरुदेव के अछाम्य विरोध रूप से विलक्ष्मी संकर गुरुदेव के उपदेशों को घर-घर में पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे, जिससे गुरुदेव का उपकार कार्य यथावत् जारी रहे सब और जगत् का कल्याण हो ।

साहित्य रत्न केवलामुनि
साहित्य रत्न मोहनमुनि

आभार प्रदर्शन

पाठक महोदय,

यह सस्था अब तक साहित्य प्रकाशन के द्वारा आपकी जो सेवा कर सकी है उसका श्रेय उन सभी उदार चेता, साहित्य-रसिक, और धर्मप्रिय गहानुभावों को है, जिन्होंने समय २ पर अपनी ओर से आर्थिक या अन्य प्रकार की सहायता देकर सस्था को इस योग्य बनाया है। अतएव हम उन सभी सहायकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इस सस्था के हितैषियों में श्रीमान् रायवहादुर सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी साहव कोठारी व्यावर निवासी का स्थान सर्वोच्च है। आप इस सस्था के आश्रय दाता भी हैं। आपके मुख्य सहयोग से ही सस्था श्री जैन दिवाकरजी महाराज का बहुत-सा साहित्य प्रकाशन करने में समर्थ हो सकी है। श्री जैन दिवाकर स्मारक में भी आपका सराहनीय सहयोग रहा है। श्री जैन दिवाकरजी महा० के प्रति आपकी भक्ति आदर्श और अनुकरणीय रही है।

व्यावर निवासी स्व० श्रीमान् सेठ कालूरामजी सा० कोठारी, श्रीमान् सेठ सरूपचन्दजी सा० तालेड़ा, श्रीमान् सेठ देवराजजी सा० सुराणा, श्रीमान् सेठ चान्दमलजी सा० टोडरवाल, श्रीमान् सेठ वसन्तीमलजी सा० वोहरा और श्रीमान् सेठ अभयराज जी सा० नाहर आदि २ महानुभाव भी इस सस्था के प्रमुख

आभार प्रदर्शन

पाठक महोदय,

यह संस्था अद्य तक साहित्य प्रकाशन के द्वारा आपकी जो सेवा कर सकी है उसका श्रेय उन सभी उदार चैता, साहित्य-रसिक, और धर्मप्रिय महानुभावों को है, जिन्होंने समय २ पर अपनी ओर से आर्थिक या अन्य प्रकार की सहायता देकर संस्था को इस योग्य बनाया है। अतएव हम उन सभी सहायकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इस संस्था के हितैषियों में श्रीमान् रायबहादुर सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी साह्य कोठारी व्यावर निवासी का स्थान सर्वोच्च है। आप इस संस्था के आश्रय दाता भी हैं। आपके मुख्य सहयोग से ही संस्था श्री जैन दिवाकरजी महाराज का बहुत-सा साहित्य प्रकाशन करने में समर्थ हो सकी है। श्री जैन दिवाकर स्मारक में भी आपका सराहनीय सहयोग रहा है। श्री जैन दिवाकरजी महा० के प्रति आपकी भक्ति आदर्श और अनुकरणीय रही है।

व्यावर निवासी स्व० श्रीमान् सेठ कालूरामजी सा० कोठारी, श्रीमान् सेठ सूरूपचन्दजी सा० तालेडा, श्रीमान् सेठ देवराजजी सा० सुराणा, श्रीमान् सेठ चान्दमलजी सा० टीडरवाल, श्रीमान् सेठ वसन्तीमलजी सा० वोहरा और श्रीमान् सेठ अभयराज जी सा० नाहर आदि २ महानुभाव भी इस संस्था के प्रमुख

जैसा साधारण से साधारण आदमी का अन्तर है, वह उनके आचार विचार का देखा जाय तो कहा जायगा कि गुरुदेव उनके अन्तर्जीवन, उनके सब धीरे पवित्र निहित था। दुर्भाग्य से आज हम उनके सच्चे मगर भीमाम्भ से उनके विचार अ रूप में हमें सुलभ हो रहे हैं। अतएव कल जनों के रूप में आज भी गुरुदेव जीवित हैं पर वह प्रबचन भीगूँ रहेंगे, गुरुदेव भी : के शम्भ-शम्भ में गुरुदेव की आत्मा गुरु : अक्षर में गुरुदेव समाये हुए हैं। वह सारे जीवन के प्रतिबिम्ब हैं। वह उनके सच्चे। प्रचार से बढ़कर गुरुदेव के प्रति अपनी म और कोई तरीका नहीं हो सकता। गुरुदेव वह जान कर अवश्य सम्योप होगा कि उन कार्य आज समाप्त नहीं हो गया है। वे अ प्रचार करते रहे वह आज भी जारी है।

अन्त में हम उन सब को जो गुरुदेव जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं, अपरम बन्धबाध देना चाहते हैं और आशा क मन्त्राक्ष विरोध रूप से विज्ञापनी लेकर गु पर-पर में पहुँचाने का प्रयास करेंगे जिससे कार्य पचावत् जारी रह सके और बगल क

साहित

साहित



विषयानुक्रमिका



१	ज्ञान की महिमा	१
२	भयभजन भगवान्	३४
३	अचौर्य	७०
४	राग-द्वेष की आग	६६
५	सत्संगति	१२५
६	काई रे गुमान करे आपनो	१५६
७	लोकोत्तर विजय	१६१
८	निष्काम भक्ति	२२५
९	कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विवेक	२५५
१०	तपस्तेज	२६५



सहायकों में हैं। इन्होंने समय समय पर आर्थिक सहायता तो दी ही है। अपना समय भी दिया है और संस्था को दिवाकरजी के साहित्य प्रकाशन में समर्पण बनाया है। हम इस सब धनप्रेमी और उत्साही श्रीमानों के प्रति अतीव कृतज्ञ हैं और कामना करते हैं कि वे शीघ्रायु होकर संस्था को भी दीर्घजीवी बनायें।

उपर्युक्त द्रव्य सहायकों के अतिरिक्त इस संस्था को शिव मुनिराजों की अतिशय मूल्यवान् माध सहायता अब तक प्राप्त हुई है, उनमें परिचित रत्न महा मुनि श्री प्यारबन्दजी महा० की सहायता अत्यन्त सराहनीय रही है। जैन दिवाकरजी महा० के प्रति आपकी भक्ति का विचार करते समय श्री जम्बू स्वामी का स्मरण हो आता है। आपका ही उत्साह और वयोग से इस साहित्य का ऊपर और सम्पादन हो सका है। आपकी ओर से साधुता की मर्यादा में हमें जो प्रेरणा मिली है, उसके लिए हमारे साथ सभी पाठक आपका प्रति कृतज्ञ होंगे।

वान्दमक कोठारी

मंत्री—

श्री जैन दिवाकर मिश्र मयवस्त
प्यावर (अजमेर)



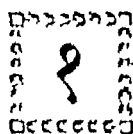
विषयानुक्रमशिका



१	ज्ञान की महिमा	१
२	भयभजन भगवान्	३४
३	अचौर्य	७०
४	राग-द्वेष की आग	६६
५	मत्सगति	१२५
६	काहूँ रे गुमान करे आपनो	१५६
७	लोकोत्तर विजय	१६१
८	निष्काम भक्ति	२२५
९	कर्तव्याकर्तव्य-विवेक	२५५
१०	तपस्तेज	२६५







ज्ञान की महिमा



स्तुतिः—

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र ।

धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ॥

यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहृतान्धकारा ।

तादृक्कृतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महा-
राज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान् पुरुषोत्तम,
भगवन् । आपकी स्तुति कहाँ तक की जाय ? भगवन्, आपके गुण
कहाँ तक गाये जाएँ ? धर्म का उपदेश देने की विधि जैसी आपकी
है, वैसी दूसरे की नहीं । अधिकार का नाश करने में सूर्य जो काम
देता है, वह तारे नहीं दे सकते । सूर्य के मुकाबले में ग्रह, नक्षत्र

और तारे कोई चीज नहीं हैं। सूर्य रात को दिन बना देता है। इसी प्रकार भगवान् अपमर्देव ज्ञान में इतने ऊंचे हैं कि उनके मुखाबिम्बे कोई दूसरा नहीं है। ऐसे भगवान् अपमर्देवजी को जेरा बार बार नमस्कार हो ।

भाइयों ! संसार में जो अकस्मात्संभूत जीव हैं, उन्हें दो हिस्सों में बांटा जा सकता है—(१) ज्ञानी और (२) अज्ञानी ।

आप कह सकते हैं कि चेतना-उपयोग आत्मा का स्वरूप है। चेतना ज्ञान को कहते हैं। ऐसी हालत में कोई भी जीव अज्ञानी कैसे हो सकता है ? आत्मा का स्वरूप ज्ञान जिसमें ली पाया आपना, वह जीव ही कैसे कहलावगा ? स्वरूप कभी स्वरूप बान् बन्तु से अलग नहीं हो सकता। अतुल्य ज्ञान कभी जीव से अलग नहीं हो सकता। ऐसी हालत में आपने जीवों को ज्ञानी और अज्ञानी इन दो हिस्सों में क्यों बांटा ? क्याचित् वह मान लिया जाय कि कोई जीव अज्ञानी भी होता है तो फिर वह जीव ही कैसे रहेगा ? वह तो ईंट, पट, कपड़े आदि की तरह अजीव ही होगा। इस तरह विचार करने पर कोई भी जीव अज्ञानी नहीं छूटता। जो जीव है वह जानवान् है और जो जानवान् है वह जीव है। फिर किसी भी जीव को अज्ञानी कैसे कहा जा सकता है ?

वह शंका सही है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है और वास्तव में कभी किसी भी अवस्था में आत्मा पूर्ण रूप से ज्ञानहीन नहीं होता। निगोत्र की अवस्था जीव की मग से अधिक निकृष्ट अवस्था समझी जाती है। उससे ज्यादा गिरी हुई और कोई हालत

नहीं है। किन्तु उस अवस्था में भी मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विचित् क्षयोपशम मौजूद रहता है। इस दृष्टि में विचार किया जाय तो कोई भी जीव, किसी भी स्थिति में, एक क्षण के लिए भी उपयोग शून्य नहीं हो सकता। फिर भी हमने जीवों के जो दो विभाग किये हैं, वे उपयोग (ज्ञान) के सद्भाव और अभाव को लेकर नहीं किये हैं। वहां ज्ञान का अर्थ है सम्यग्ज्ञान और अज्ञान का मतलब है मिथ्याज्ञान। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जीव दो प्रकार के हैं—(१) सम्यग्ज्ञानी और (२) मिथ्याज्ञानी।

अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि इस भेद का कारण क्या है? कोई जीव सम्यग्ज्ञानी और कोई मिथ्याज्ञानी क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ज्ञानावरण कर्म के उदय से ज्ञान का अभाव होता है और उसके क्षयोपशम से अथवा क्षय से ज्ञान होता है, सभी संसारी जीवों को ज्ञानावरण का कुछ न कुछ क्षयोपशम होता ही है, मगर जो जीव मिथ्यात्व से युक्त हैं उनका ज्ञान मिथ्याज्ञान रूप परिणत हो जाता है। मतलब यह है कि मिथ्यात्व मोहनीय कर्म ज्ञान को कुज्ञान अर्थात् अज्ञान बना देता है। इसके विपरीत जो जीव सम्यक्त्व से विभूषित हैं, उनका ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है। इस तरह मिथ्यात्व के कारण कोई जीव अज्ञानी होता है। यही दो भेदों का कारण है।

ज्ञानी जीवों के भी दो भेद हैं—एक अल्पज्ञानी और दूसरे पूर्ण ज्ञानी। जो जीव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, और मन-पर्यायज्ञान के धारक हैं, वे अल्पज्ञानी कहलाते हैं। अल्पज्ञानियों में कोई कोई जीव केवल दो मति और श्रुत ज्ञान के धारक होते हैं, किसी को अवधिज्ञान या मन-पर्यायज्ञान अथवा दोनों भी होते हैं।

इस प्रकार चाहे कोई हो ज्ञान का धारक हो, चाहे तीन ज्ञान का धारक हो, चाहे चार ज्ञान का धारक हो, वह अस्पृहामी ही कहलाता है। और जो केवल ज्ञानी हैं वे पूर्ण ज्ञानी कहलाते हैं।

अज्ञानी जीवों को तमाम बातें विपरीत मान्य होती हैं। उन्हें सभी बातें मूर्खी और मूर्खी बातें सभी ज्ञान पवती हैं। वे सबे साधु को देखें तो कहें कि होगी है और होगी वीर पवे तो कहें कि सबा साधु है। उनकी निगाह में जो परमात्मा है वह परमात्मा नहीं है, और जो परमात्मा नहीं है वह परमात्मा है। वे जीव को अजीव समझते हैं और अजीव को जीव समझते हैं। उनके ज्ञान से धर्म, अधर्म है और अधर्म धर्म है। जो आत्मा तपस्या करके मोक्ष में चली गई है वह मोक्ष में नहीं गई है और जो मोक्ष में नहीं गई है वह मोक्ष में चली गई है। अज्ञानी मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग समझता है और संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग समझता है।

जिस जीवों पर जिस रंग का चरमा बढ़ जाता है उसे सब जीवों वैसी ही तरह जानी है। कई जीव ऐसे होते हैं कि उनमें बड़ा धारण किया हुआ आवृत्ति भी मग्न दिखाई देता है। अज्ञानी जीव की दृष्टि पर दिव्यत्व का उल्टा चरमा बढ़ा होता है अतएव वह सभी पदार्थों को उल्टे रूप में ही देखता है। वह नहीं कहता है कि भगवान् स्वयं करके इत्यादि सब मूर्ख हैं। इन सबका अस्तित्व बतलाने वाले धर्मशास्त्र भी सिध्दा है। उनमें कोई सबाई नहीं है। उनकी निगाह में सब वही सबा है और सब मूर्ख हैं।

अज्ञानी जीव अधर्म की दशा में चले रहा है। उसकी

आंखों पर अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है। वह समझता है कि संसार में मैं ही समझदार हूँ। किन्तु वास्तव में ऐसे लोग मूर्ख हैं, अज्ञान हैं, अविवेकी हैं। वे संसार के अन्य पदार्थों को क्या समझेंगे, अपने आपको ही नहीं समझते। वे आत्मा का निषेध करते हैं, सो अपना खुद का निषेध करते हैं। विचार करना चाहिए कि जो व्यक्ति स्वयं अपने अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करता, वह दूसरों के विषय में सही जानकारी किस प्रकार रख सकता है ?

अज्ञानी जीव जब तक अज्ञान अवस्था में है, तब तक मोक्ष नहीं पा सकते। जिनकी समझ ही उलटी हो रही है, वे मोक्ष कैसे प्राप्त करेंगे ? प्रथम तो वे मोक्ष होना ही नहीं मानते और यदि मान भी लें तो उसका स्वरूप ठीक-ठीक नहीं जानते। मोक्ष के कारणों को उलटा जानते हैं, वे अपनी समझ के अनुसार ही मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं मगर समझ उलटी होने से मोक्ष के बदले में उन्हें संसार की ही प्राप्ति होती है। वे दूसरों की कही हुई सच्ची बात पर भरोसा नहीं करते और अपनी सूझी हुई झूठी बात पर विश्वास करते हैं। इस कारण वे चौरासी के चक्कर में ही पड़े रहते हैं। वे स्वयं दुःखों के पात्र बनते हैं और उलटा उपदेश दे-देकर दूसरों को भी अपने ही समान दुःखों का पात्र बनाते हैं।

अज्ञानी जीव में एक प्रकार की वक्रता और अहंकार की वृत्ति होती है। उसमें विनय नहीं, विवेक नहीं, कृतज्ञता भी नहीं होती। उसे कोई बात समझ में न आती हो और दूसरे से पूछ कर समझती पड़े तो वह पूछता है, समझ लेता है और फिर

दे दिया जाता है तो वह उसका दुरुपयोग करता है । आप दूर्यता है और दूसरों को भी डुबाता है । वह ज्ञान की आशोतना करता है । ज्ञान की आराधना करने से जल्दी वे वृत्त ज्ञान होते हैं और ज्ञान की विराधना करने से केवल ज्ञान नहीं होता ।

आप पूछ सकते हैं कि अज्ञानी और अल्पज्ञानी के बीच कोई स्थूल अन्तर तो नजर नहीं आता; फिर दोनों में भेद कैसे किया जाय ? किन्तु लक्षणों से समझा जाय कि यह अज्ञानी है और यह अल्पज्ञानी है ? मगर अज्ञानी को पहचान लेना कोई कठिन बात नहीं है । मान लीजिए, कहीं शास्त्र का पाठ हो रहा है । किसी ने किसी से कहा—‘चलो भाई, आपन भी शास्त्र सुन आवें । इस प्रकार प्रेरणा करने पर यदि वह कहता है कि-अजी क्या रक्खा है शास्त्र में । यह भी कुछ लोगों ने अपना घघा घना रक्खा है । शास्त्र सुन लेने से कौन-सा आत्मा का बड़ा कल्याण हो जायगा । तो समझ लेना चाहिये कि अज्ञानी है इसके अतिरिक्त अज्ञानी के और भी लक्षण हैं । जैसे—ज्ञान का प्रचार करने वाले विद्यालय को तुड़वा देना । कोई उदारहृदय दाता अच्छी पुस्तकों का दान करना हो तो कहना कि-अजी, क्यों बृथा धन नष्ट करते हो ? इन पोथियों में क्या पढ़ा है । आदि । इस प्रकार ज्ञान के प्रकार में विघ्न डालने से नये ज्ञानावरणीय कर्म का घघ भी होता है । कोई धर्मशास्त्र आदि सिखाने के लिए पाठशाला, विद्यालय आदि खोलने का विचार करे तो अज्ञानी जीव यह सोचता है कि मुझे भी इसमें चन्दा देना पड़ेगा । ऐसा सोचकर वह कहता है—अरे भाई । सरकार ने मदरसे खोल ही रखे हैं, फिर अपनी अलग खिचड़ी पकाने से क्या लाभ है ? ऐसा कहने

जाता भी ज्ञानावरणीय धर्म का बंध बरता है। बिना पढ़ने से जीवन सुधरता है। ज्ञान से ही विषय की उत्पत्ति होती है। जहाँ ज्ञान है वही विषय है और जहाँ विषय है वही धर्म है। ज्ञान के अभाव में विषय नहीं रह सकता और विषय के अभाव में धर्म नहीं रह सकता। अतएव ज्ञान के बिना धर्म की भलीभाँति आराधना होना संभव नहीं है। पर अज्ञानी जीव इस सत्य को समझता नहीं है। इस कारण वह ज्ञान की आसक्तता करता है और ज्ञानी की भी आसक्तता करता है। ज्ञानी जनों के प्रति वह अकारण ही ईर्ष्य रखता है। मौन-व मौन ज्ञानियों की निन्दा करता रहता है। उसे दुष्कृत्य करके अज्ञानी जीव पार जीवन के धर्म बोलता है।

अज्ञानी की अपेक्षा अस्पृष्टज्ञानी भेद हैं। अस्पृष्टज्ञानी भक्त ही पूर्ण नहीं हैं मगर जितना भी ज्ञान होता है वह सम्पूर्ण ज्ञान होता है। सम्पूर्णज्ञान होने के कारण वह अपने कल्याण के मार्ग में अज्ञानी की तरह कोंटे नहीं देखेता। वह भली राह पर चलता है और चलते चलते, अपने जीवन का क्रमशः अधिकाधिक विकास करते-करते बाइबली सीढ़ी (बीस मोड़नीय सामक गुप्त स्थान) तक जा पहुँचता है। उसके बाद वह पूर्णज्ञानी होकर बाइबली और बाइबली सीढ़ी को पार करके शाश्वत सिद्धि का वरस कर लेता है।

इस संसार में अनन्तानन्त जीव अज्ञानी हैं। इनसे बोधे अस्पृष्टज्ञानी हैं और पूर्णज्ञानी से बहुत बोधे हैं। अज्ञानी जीव सारे जगत् में भरे पड़े हैं। पृथ्वी पानी अधि बभ्रवति और वायु काय के जीव अज्ञानी हैं और हीम्विष त्रीम्विष, बीहम्विष

और असंख्य पचेन्द्रिय जीव भी अज्ञानी हैं। संख्य पचेन्द्रियों में भी अधिकांश अज्ञानी हैं। इस प्रकार अल्पज्ञानी और सर्वज्ञानी थोड़े ही पाये जाते हैं। यह बात तो आप सभी जानते हैं कि ससार में ककर-पत्थर बहुत होते हैं और हीरा-मोती कम होते हैं। गोबर जितना मिल सकता है कस्तूरी उतनी नहीं मिल सकती। कस्तूरी तो प्रयत्न करने पर भी दो-चार सेर मिल सकेगी मगर गोबर के पहाड़ चाहे जहाँ खड़े मिल सकते हैं। इसी तरह अज्ञानी जीव बहुत बड़ी संख्या में, जहाँ चाहो वहीं मिल जाएंगे मगर ज्ञानी बहुत कम हैं। जहाँ देखो वहीं धूल है, पत्थर हैं, कचरा है।

अज्ञानी जीव अपनी आत्मा के स्वरूप को नहीं समझता-जब वह अपने स्वरूप को ही नहीं समझता तो आत्मा के श्रेयस् के लिए क्या करेगा ? वह अगर प्रवृत्ति करता भी है तो मिथ्या-ज्ञान के कारण उलटी प्रवृत्ति ही करता है, और उसके फल स्वरूप ससार में भटकता रहता है। अज्ञानी जीव कभी मोक्ष गया नहीं है और कभी मोक्ष जायगा भी नहीं। ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। दशवैकालिकसूत्र में मोक्ष प्राप्ति का क्रम बहुत सुन्दर रूप में बतलाया है। कहा है —

पठमं नाण तत्रो दया, एव चिद्गुहं सन्वसंजण ।

अन्नाणी किं काही, किं वा नार्हाह्छेयपावग १ ॥

अर्थात्—सर्व प्रथम ज्ञान की और फिर चारित्र्य की आराधना की जाती है। जिसे ज्ञान ही नहीं है, वह बेचारा अज्ञानी

जाना कर सकता है ! वह अपने दिवाहित को भी कैसे पहचान सकता है ?

इसके बाद शास्त्रकार कहते हैं—

सुषा आस्य क्लृप्तासं, सुषा आस्य पावर्ष ।

उमयं पि आस्य सुषा, न ह्येव त समायरे ॥

अर्थात्—देव या गुरु के मुक्त से मुक्त कर कस्याय का पता चलता है और मुक्त कर ही अकस्याय का पता चलता है । कस्याय और अकस्याय-दोनों का ज्ञान भी मुक्त से ही होता है । कस्याय और अकस्याय का स्वरूप समझ कर कस्याय में प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

इसके पश्चात् इसी शास्त्र में बताया है कि जो जीव, जीव और अजीव तत्त्व को नहीं समझता वह संयम को भी नहीं समझ सकता । जीव अजीव को बिना समझे संयम का पालन करने के लिए लोग छन्दे अर्धयम में पड़ जाते हैं । अज्ञान के प्रताप से ही कई लोग कन्द-भूल आदि सन्निध का भक्षण करते हैं, अग्निदाय का घोर आरंभ करते हैं और दूधिता क द्विजे सन्निध गृह का उपयोग करते हुए धर्म मानते हैं । वह सब जीव और अजीव को प समझने का ही प्रताप है ।

जो जीव और अजीव का भेद नहीं जानता वह सब जीवों की माना प्रकार की गतिषों को भी नहीं जान सकता । जीव अजीव को पहचानने वाला ही माना गतिषों और योगिषों को जान पाता है । जब गतिषों का ज्ञान हो जाता है तो स्वयं विद्वान्ता

उत्पन्न होती है कि इन नाना गतियों का कारण क्या है ? कोई जीव देवगति में स्वर्ग के लोकोत्तर सुखों को भोगता है, दिव्य ऋद्धि और वैभव उसके चरणों में लोटते हैं, वह इच्छा के अनुसार चाहे जैसा रूप बना सकते हैं और ससार के सभी सुखों के भोक्ता बनते हैं । इनसे विपरीत कोई-कोई जीव नरक की भीषण यत्रणाएँ भोगते हैं । कोई-कोई तिर्यंच गति में वध, वधन आदि की दुस्सह वेदनाएँ भुगत रहे हैं । आखिर इस भेद का कारण क्या है ? इस प्रकार की जिज्ञासा जब मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होती है, तब उसे पुण्य और पाप का पता लगता है । तब वह सोचता है कि पुण्य के उदय से ससार के सुखों की प्राप्ति होती है और पाप के उदय से दुःखों का वेदन करना पड़ता है । अगर पुण्य और पाप न होते तो ससार में दुखी-सुखी, रक-राजा, रोगी-निरोगी आदि का भेद भी न होता, इस भेद का जो कारण है वही पुण्यतत्त्व और पापतत्त्व है ।

इस प्रकार जीव जब पुण्य, पाप को जान लेता है और यह भी जान लेता है कि पूरी तरह इन दोनों का क्षय हो जाना ही मोक्ष कहलाता है, तब वह मनुष्य सबधी भोगों से विरक्त हो जाता है और देव सबधी भोगोपभोगों की भी कामना नहीं करता । अर्थात् उसका चित्त वैराग्य के रंग में रँग जाता है ।

हृदय में जब सच्चा वैराग्य उत्पन्न होता है तो वह राग का परित्याग कर देता है । वह बाह्य सयोगों का (धन-धान्य, महल-मकान, स्त्री-पुत्र आदि का) त्याग करता है और अभ्यन्तर सयोगों का (क्रोध आदि विकार भावों का) भी त्याग करता है । सयोगों से हट कर वह सयम धारण कर लेता है । सयम

पारण करके संसार धम का स्पर्श करता है। संसार धम के प्रभाव से वह समस्त पातिषा कमों का छप कर जाता है। कमों का छप होते ही सबद-संबंधों अभवस्था प्राप्त हो जाती है। यह अभवस्था प्राप्त होने पर संसार का धर्म भी पदार्थ अनजाना नहीं रह सकता। इसके बाद वह आत्मा योगों का निरोध करके शैलेरी अभवस्था प्राप्त करके शेष अपातिषा कमों को भी मष्ट करके सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

शास्त्र के इस बखान से स्पष्ट मात्स्य हो जाता है कि मोक्ष-भाग का प्रारंभ सम्पन्नान से ही होता है। जिस मन्त्रान का आधार तीव्र है, वही प्रकार मुक्ति का मूलाधार सम्पन्नान है। सम्पन्नान के अभाव में मोक्षमार्ग की आराधना कदापि नहीं हो सकती। इस प्रकार शास्त्र में ज्ञान का माहात्म्य बतलाया गया है। अतएव जो मुमुक्षु जन अपनी आत्मा का परम और परम कल्याण चाहते हैं उन्हें सर्व प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जिनके ज्ञानावरण का तीव्र रूप है, उन्हें कम से कम ऐस कामों से तो बचना ही चाहिये, जिनसे ज्ञानावरण कम का गया बंध न हो।

मगर अज्ञानी जीव क्या विचार नहीं करते। वे स्वर्ग ज्ञान प्राप्त नहीं करत दूसरों को प्राप्त नहीं करने देत और यदि कोई करता है तो पाषा डालते हैं। कई लोग तो ऐसे होशियार होते हैं कि मैं पूछी गीत ! उन्हें निज की कोई अच्छत नहीं होती और कोई ज्ञान देता है तो करते हैं—अभी यह बीन-सी नवीन बात है। यह तो हम भी जानते हैं ! ऐसे लोग हमेशा अपनी हाँग ऊँची ही रखते हैं।

एक नौजवान था। उसकी शादी हुए बहुत दिन नहीं हुए थे। उसके घर में कोई बड़ी-बूढ़ी औरत नहीं थी। नयी बहू घर में अकेली ही थी। नवयुवक ने अपने पड़ोस की बुढ़िया से कह रक्खा था कि मेरी पत्नी घर के काम-काज के बारे में कुछ पूछे तो बतला देना। उसने अपनी पत्नी से भी कह दिया था कि तुम्हें कोई बात मालूम न हो और मालूम करना हो तो पड़ोसिन बुढ़िया से पूछ लिया करो। उसे ही अपनी सासू समझना।

नववधू वास्तव में जानती तो कुछ नहीं थी, मगर अपना पोजीशन सदैव ऊँचा रखती थी। वह एक दिन पड़ोसिन के पास गई और उससे पूड़ियाँ बनाने की विधि पूछी। बुढ़िया ने बड़े प्रेम से, आदि से अन्त तक की समस्त विधि बतला दी। उसकी बतलाई विधि सुनकर बहू ने कहा—‘यह तो मैं भी जानती थी।’

बहू ने घर जाकर पूड़ियाँ बनाईं। पति ने जीम कर बड़ी तारीफ की।

दूसरे दिन बहू फिर बुढ़िया के पास पहुची। पूछा—माँजी, ‘विण्ण’ किस प्रकार बनाया जाता है? बुढ़िया ने उत्तर दिया—बहू, पहले शक्कर की चासनी बना लेना। फिर वह चावलों में ढाल देना उसमें घी जरा ठीक ठाक ढालना। ऊपर से बादाम, पिस्ता, केशर आदि ढाल देना। यह तरीका सुनकर बहूरानी ने कहा—‘यह तो मैं भी जानती थी।’

इसी प्रकार कई बार बहू बुढ़िया के पास गई। हर बार वह अन्त में यही कह देती कि—‘यह तो मैं भी जानती थी।’

एक दिन बहू बेसन के गट्टों की लिपड़ी बनाने की विधि पूछने गई। बुढ़िया ने साचा-मद बहू हर बार यही कहती है कि 'यह तो मैं भी जानती थी' तो एक बार इसकी अकल का लम्ना बेल्मा बाहिये। यह सोच कर बुढ़िया ने लिपड़ी बनाने की सम्पूर्ण विधि बतला कर अगल में कहत-बहूजी अगर एक बात ध्यान में रखना। लिपड़ी स्वादिष्ट बनाना हो तो उसमें एक मुट्ठी रेत मिखा देना। बहू बहू सुनकर बोली 'यह तो मैं भी जानती थी।'

बुढ़िया मन ही मन मुस्किराई और बोली—ठीक है बहू तुम बड़ी चतुर हो। तुम्हारी वैसी चतुर बहू लाकों में एक मिलती है। तुमने बचपन में ही सब कुछ सीख रक्खा है।

बहू अपनी तारीफ सुनकर फूजी नहीं समाई। उसने सोचा मैंने भी इस बुढ़िया को सब सब बतलाया है। यह सोचती सोचती बहू पर आई। बुढ़िया की बतलाई तरबूच से उसने गट्टों की लिपड़ी बनाई और एक मुट्ठी रेत भी उसमें डाल दी।

पठिरेच मोहन करने बैठे। बड़े प्रेम के साथ लिपड़ी परोसी गई। परन्तु क्यों ही और मुँह में डाला कि 'हाय यू हाय यू' की आवाज होने लगी। बहू बोला 'आज यह लिपड़ी ऐसी क्यों बनी है ? पत्नी ने पड़ोसिन का नाम ले दिया। कहा माँजी ने एक मुट्ठी रेत डालने को कहा था सा मैंने एक ही मुट्ठी डाली है।'

पति पड़ोसिन के पास गया। पूजा-माँजी ! आज रेत डालने की विधि कैसे बतला दी ! उसने चूतर दिया-बेडा लेरी बहू जब जब भी मेरे पास कोई चीज बनाने की विधि पूछने आई, मैंने बतला दी। हर बार उसने कहा 'बहू तो मैं भी जानती

थी । ' आज मैं इसकी अक्ल की परीक्षा करना चाहती थी । राख ढालने की विधि बतलाने पर भी उसने यही कहा—' यह तो मैं भी जानती थी । '

इसके बाद वहरानी को अक्ल आई ।

भाइयों ! यह तो एक उदाहरण है । इस उदाहरण का अर्थ यही है कि अज्ञानी जीवों में सरलता नहीं होती, । कृतज्ञता नहीं होती । वे समझते हैं कि हमने दूसरों को ठग लिया, पर वास्तव में वे स्वयं ठगे जाते हैं । ऐसे लोगों का कल्याण नहीं होता । कल्याण के भागी वे होते हैं जो विनीत प्रकृति के हों । जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाय, उसके प्रति आदर का भाव रखना चाहिये, उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए । तभी ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त होता है और वह ज्ञान सार्थक होता है । जो नर या नारी हृदय को कोमल रख कर ज्ञान प्राप्त करेगा और ज्ञानदाता के प्रति आदर का भाव रखेगा, वही ज्ञानी बन सकेगा और वही मोक्ष प्राप्त कर सकेगा । कहा है—

सज्जन ! मुक्ति पाना हो तो ज्ञानी बनो,

विना ज्ञान मुक्ति नहीं पावें,

चाहें जितना कष्ट उठावें,

संशय दूर हटाना हो तो ज्ञानी बनो ॥ध्रु॥

हे सज्जनो ! मित्रो ! अजीजो ! और दोस्तो ! यदि सचमुच ही तुम अपना परम कल्याण चाहते हो, अगर तुम्हें मोक्ष प्राप्त करना हो तो ज्ञानी बनो । ज्ञान के बिना तीन काल में भी कल्याण

होने वाला नहीं है। ज्ञान के अभाव में मल ही जोई महीने महीने का उपवास करे, सपस्या करे, शरीर पर राम लपेटे, घूमी रमाव जटा बड़ावे गंगाजी में गाते लगाव और तरह तरह के कष्ट सहन करे, मगर आत्मा का कल्याण होने वाला नहीं है। अगर किसी विषय में तुम्हारे मन में संशय है तो ज्ञानी पुरुषों की संगति करो। ज्ञानी तुम्हारे संशय को दूर कर देंगे। बाव रक्षना—

जड़-चेतन मिल पिण्ड रचाया
बिसरके अन्दर मन छलवाया,
बिबध इसका पाना हो तो ज्ञानी बनो ॥

शरीर का यह पिण्ड जड़ और चेतन के मेल से बना है। अकेले जड़ से या अकेले चेतन से ऐसा पिण्ड नहीं बन सकता। मकान की दीवार लगी करने के लिए ईंट-पत्थर और चूना की आवश्यकता होती है। इसी तरह शरीर के निर्माण में जड़ और चेतन-दोनों की आवश्यकता होती है।

भाइयो ! आसानी जीब हम पिण्ड में ही मग्न रहता है। वह इसी में आत्मभाव धारण करता है। अपने शरीर के रूप-रंग को देखकर जीब में अपनी सुन्दरता निहार कर प्रसन्न होता है। मगर समझ लेना चाहिए कि ऐसा करने वाला भोर-अज्ञानी है। उसने न आत्मा का रुपा स्वरूप समझा है और न शरीर का ही असली रूप जाना है। अरे चेतन ! क्या भ्रम में पड़ा है ? तू सक्षिप्तमय है, चित्त-वस्तुकारमय है। अतन्त ज्ञान और अतन्त ब्रह्म का पिण्ड है। तू अक्षय ज्योति है, ऐसी ज्योति जिससे वह सारा विश्व आलोकित हो सकता है। मगर तू अपने को यह-

धानता नहीं। दुनिया भर की बातें समझना चूकना चाहता है, किन्तु अपने आपको समझने में ही प्रसाद करता है। तू कैसा समझदार है कि अपने को ही भूल रहा है। अरे आत्मन् ! कहाँ जड़शरीर और कहाँ चेतनमय आत्मा ! दोनों में प्रकाश और अन्धकार जितना अन्तर है। इस शरीर के कारण ही तेरा समस्त सुख, दुःख के रूप में परिणत हो गया है। शरीर ने ही तुझे राजा से भिखारी बना रक्खा है। फिर भी तू शरीर पर इतनी गहरी ममता रखता है। शरीर को अपना सर्वस्व समझता है और आत्मा को नगण्य मानकर उसकी उपेक्षा करता है। अपनी भूल सुधार चेतन ! अपनी भूल सुधार ! कल गाया था -

दो दिन रहि जा रे जीवराज ! धनी ।

फिर कदी मिलेगा रे !

हे हस ! दो दिन और रह ले। पाहुने ! जाना तो है ही, हिलमिल कर थोड़ा समय बिता लें। मगर यह मनुहार काम नहीं आती।

भाइयो ! शरीर और चीजा है, आत्मा और चीजा है। शरीर आत्मा का बनाया हुआ मकान है। मकान का स्वामी आत्मा है। मकान और मकान का मालिक एक नहीं-अलग-अलग होते हैं। तू इसे अपना आपा क्यों समझता है ? शरीर और आत्मा का यह भेदविज्ञान ज्ञान से उत्पन्न होता है।

कल्पना करो कि किसी आदमी ने, किसी सेठ के पास सुरक्षा के लिए गहनों का एक सडूक रख दिया है। उस सडूक को देखकर और अपने पास रखते हुए भी सेठ के मन में उसके प्रति

समता नहीं होती, क्यों कि वह समझता है कि वह अपनी नहीं, पराई वस्तु है। किसी भी समय इस सवूफ का मादिक इसे बठा कर ले जायगा। इसी प्रकार पाप माता बालक को खिलाती-पिलाती है उसकी सार-सँभाल रखती है फिर भी उसे अपना नहीं मानती। वह मन ही मन समझती है कि वह बालक वहाँ होते ही मुझसे छिन जाने वाला है। पणपि ईमानद्वार पाप बालक के प्रति अपना कृतव्य पूरा करने में प्रभाव नहीं करती; बालक को गैर समझ कर उसकी कपेका नहीं करती फिर भी वह पापक में आत्मीयता की भावना नहीं रखती इसी प्रकार ज्ञानी जन शरीर के विषय में साबते हैं। वे मानते हैं कि कर्म के कवच से मुझे इस शरीर की प्राप्ति हुई है, पर वह वास्तव में मेरा नहीं है, क्या कि मुझसे मिल है और एक दिन मुझे इसका परिस्वाग कर लेना पड़ेगा। ज्ञानी जन प्राप्त शरीर को अपना न समझते हुए भी उसकी सार-सँभाल रखते हैं मोहन-पानी देकर उसका रक्षण करते हैं, फिर भी उसमें अपनापन नहीं समझते। वे आत्मा पश्याण के लिए शरीर को उपयोगी साधन समझते हैं और इसीलिए उसका हठान् परिस्वाग नहीं करते।

ऐसी रुची समझ ज्ञान से ही आती है। जो अज्ञानी हैं, वहिरात्मा हैं उन्हें ज्ञान का सचा प्रकाश अभी नहीं मिला है और इस कारण वे अपने शरीर में ही 'अह' की भावना रखते हैं। ज्ञान प्राप्त होने पर स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है।

कहा जा सकता है कि आत्मा और शरीर अलग अलग कभी भी नहीं पाये जाव। वहाँ नहीं देखते हैं वहाँ शानो साध साध दिखाई देते हैं। शरीर से अलग करके आत्मा को भाव

तक किसी ने देखा नहीं है । फिर कैसे मान लिया जाय कि आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न हैं ? इसका उत्तर ज्ञानी पुरुषों ने यह दिया है कि अनादि काल से आत्मा कर्मों के आधीन है । कर्मों के आधीन होने से वह लशरीर बना रहता है । लशरीर होने के कारण वह स्वभाव से अरूपी होते हुए भी रूपी मालूम पड़ता है । आत्मा के असख्यात प्रदेश हैं और प्रत्येक प्रदेश पर अनन्त अनन्त कर्म-परमाणु चिपटे हुए हैं । दोनों एकमेक हो रहे हैं । यही कारण है कि आत्मा और शरीर अलग अलग प्रतीत नहीं होते ।

तो फिर दोनों को एक ही क्यों न समझ लें ? इस शका का उत्तर यह है कि लक्षण की भिन्नता से शरीर और आत्मा में भेद सिद्ध होता है । शरीर का लक्षण अलग है । और आत्मा का लक्षण अलग है । इस कारण दोनों अलग-अलग हैं । जिन वस्तुओं के लक्षण में भेद होता है, उनके स्वरूप में भी भेद होता है । आत्मा का लक्षण क्या है और शरीर का लक्षण क्या है, यह बात पहले आ चुकी है । फिर भी सरलता से सब को समझाने के विचार से कहता हूँ कि आत्मा का लक्षण जानना और देखना है । आत्मा अरूपी है, उसमें रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं है । आत्मा के वर्तमान काल में जितने प्रदेश हैं, उतने ही भूतकाल में थे और उतने ही अनन्त भविष्यत काल में भी रहेंगे । आत्मा किसी भी गति में जाय और कैसी ही योगि में उत्पन्न हो, उसका एक भी प्रदेश कभी कम या ज्यादा नहीं हो सकता ।

क्या शरीर भी इसी प्रकार है ? नहीं, शरीर ऐसा नहीं है । शरीर पुद्गलमय है । उसमें रूप भी है, रस भी है, गंध भी है, और स्पर्श

भी है। उसमें जानने और देखने की शक्ति नहीं है। पुरुष के परमाणु विकसित होते हैं और मिलते भी रहते हैं। आप जब चाहें सभी एक पुरुष-स्वरूप के हो सकते हैं। पर आत्मा के हिस्से नहीं हो सकते। इसी कारण आत्मा को हमर और अवि-
भागी कहते हैं और पुरुष को विनाशशील कहते हैं। इस तरह दोनों के लक्षण अलग अलग हैं। लक्षण के भेद से दोनों का भेद स्पष्ट हो समझ आ सकता है।

दोनों की भिन्नता को समझने के लिए एक युक्ति और चाहिए। कोई भी प्राणी जब जीवित होता है तो उसका शरीर बहुत नाना क्रियाएँ करता है। हाथ पर दिकत है, मँद चलता है, आँखा के पलक झपकते हैं, हृदय में धड़कन होती रहती है, सारे शरीर में अभिराम गति से लून पकर काटता रहता है। जब बड़ी प्राणी मर जाता है तो वह सब क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। कभी आप सोचते हैं कि इसका कारण क्या है? अगर शरीर से जुड़ा आत्मा नहीं है और शरीर ही शरीर है तो मृतक अवस्था में सब क्रियाएँ क्यों बंद हो जाती हैं? हमसे पता चलता है कि शरीर के कारण ही पूर्वोक्त सब क्रियाएँ मारी हो रही थीं। ऐसा होता तो शरीर तो मृतक हावत में मौजूद ही है, फिर सब क्रियाएँ बन्द क्यों हो जाती हैं? अतएव यह निश्चित होता है कि शरीर अलग और आत्मा अलग है। जब तक शरीर में आत्मा विद्यमान रहती है तब तक वह शरीर को हलक चलाने आदि देती है और जब आत्मा शरीर को त्याग कर अम्बत्र जाती है तो शरीर बेकाय पड़ा रहता है।

भाइयों! इस प्रकार का विवेक ज्ञान से ही प्राप्त होता है। जानी जब अमृत में भी भेद देखते हैं। कहा है—

पय-पानी एक रंग रंगाया,

हंस चोंच से भिन्न बनाया ।

आत्म शुद्ध बनाना हो तो ज्ञानी बनो ॥

दूध और पानी जब एकमेक होते हैं तो पानी भी दूध की शक्त में दिखाई देता है । मगर जब उसी दूध में हंस अपनी चोंच डुवाता है तो दूध अलग और पानी अलग हो जाता है । वह दूध-दूध पी लेता है और पानी पानी छोड़ देता है । ठीक इसी प्रकार शरीर और आत्मा एकमेक हो रहे हैं, फिर भी ज्ञानी जन लक्षण के भेद से दोनों को भिन्न भिन्न समझते हैं । सिर्फ अज्ञान जन ही दोनों को एक मानते हैं ।

चेतन अपना रूप विारण,

सकल कर्म ज्ञान में सहारण,

खुद को ईश बनाना हो तो ज्ञानी बनो ॥

ऐ चेतन ! तुम्हको मोक्ष प्राप्त करना है, अव्याघात सुखमय स्थाित प्राप्त करनी है तो अपने स्वरूप की ओर दृष्टि कर । तू फौन है ? कहाँ से आया है ? और कहाँ जायगा ? तू यह मसक कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है । तू अपने आपको राजा या मालदार समझ कर प्रसन्न होता है, पर यह तेरा स्वरूप नहीं है । 'कोऽहमस्मि ?' इस छोटे से मालूम होने वाले किन्तु ! गभीरतम प्रश्न का सही उत्तर जब तुम्हें मिल जायगा तो तू निहाल हो जायगा । उस समय ससार का सम्पूर्ण वैभव भी तुम्हें तुच्छ दिखाई देगा और अपने ही स्वरूप में आनन्द की प्राप्ति होगी ।

एक राजा का लड़का साधु बन गया। साधुभा में वह नियम होता है कि पाद में बीसा लने वाला पहले बीसा सिये हुए सब साधुमी साधुभा को बंधना-नमस्कार करता है। चाहे कोई राजा हो या राजकुमार हो या बकवर्ती भी क्या न हो, उस के बिनाम से पाद छिन्ना भी बूढ़ा क्यों न हो पहले बीसित निर्धन और बालक साधु को भी नमस्कार करना होगा। साधुओं में 'गुणा' पूजास्नान की छक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती है। अर्थात् जो चरित्र में-संयमपराय में बूढ़ा है, वही पूज्य होता है। साधु बन जाने पर एक मात्र संयम से ही उसका व्यक्तित्व का माप होता है—न इस से न मन से न ज्ञान से और न किसी अन्य वस्तु से।

वह राजा का लड़का अमरु मगधाम् महावीर का अपदेश सुनकर साधु बन गया। रात्रि के समय उसे सब से आखिर में सोने की जगह मिली। वह जगह दरवाजे के पास ही थी और जाने जाने का रास्ता वही होकर था। रात्रि में जो साधु कमर से निकलता था अधिरा होने के कारण उस नवरीक्षित साधु को छूकर जगती थी। रात भर छेदरे जाते खाते वह उकता गया। उस नौव नहीं भाई। वह साधुने जगता-मों में मुझे बहुत समझाया था कविता में नही माना। वही का नतीजा यह है कि मुझे यह सुमीवते छटागी पड़ रही है।

राजमहल में सज्जम और कुबो भी सेत्र पर सोने वाले सुकुमार राजकुमार का इस तरह सोने में छिन्नी लक्ष्मीक हुई होगी यह बात तो वही जान सकता है। वह लक्ष्मीक के कारण

घबरा कर सोचने लगा—मैं तो बल घर चला जाऊँगा । मुझ से यह सब वर्दाश्वत नहीं होगा ।

सवेरा हुआ । उसने घर लौट जाने की तैयारी की । फिर सोचा-भगवान् से कहे बिना जाना उचित नहीं है, अतएव जाने की उन्हें सूचना दे दू । यह सोच कर वह भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित हुआ । देखत ही भगवान् ने कहा—मेघकुमार । रात्रि में तुम्हें नींद नहीं आई । माधुओं की ठोकर लगने के कारण तू वापिस घर लौट जाना चाहता है ? परन्तु हे कुमार । तुम्हें यह भी मालूम है कि तुम राजा के लडके किस प्रकार बने हो ? देखो, पहले तुम —

वीर कहे सुन मेघ ! हमारी,
मेघ ! हमारी, मेघ हमारी ।

हे मेघ कुमार । तेरी आत्मा पर अज्ञान का पर्दा पडा है । मैं तुम्हें पहले का वृत्तान्त बतलाता हूँ । सुन—

पूछन काज आज मुझ आये,
जो दुख पाये रैन मुझारी ।
गज-भव में तुम शशक बचाया,
पड़त किया संसारी तिवारी ॥

देख, पूर्वभव में तू कजलीवन में हाथी था और पाँच सौ हथिनियों का सरदार था । उस जगल में कभी कभी आग लग जाया करती थी । उससे तुम्हें बड़ा कष्ट होता था और अपनी

जान बचाना कठिन हो जाता था । इस संकट से बचने के लिए नून चार कोस के इर्गिद की मारी जमीन साफ कर डाली । चार कोस के परे में जितन भी पैदल से सब उल्लाड़ डाल । सारी मादिका का सफाया कर दिया ।

एक चार सस जंगल में फिर भाग लगी । तब तू अपने सारे परिवार को लेकर उस परे (मंडल) में आ गया । जंगल में सब जगह भाग ही भाग फैल गई थी । अतः दूसरे जानवर भी अपने प्राण बचाने के लिए उस परे में आये । पीर पीरे वह परा ठसाठस मर गया । एक छरगोरा भी कूहा घोंटता वहाँ आया पर उसे जख्म नहीं मिली । उस समय तूरे शरीर में सुजली चली । शरीर झुजाने के लिए वहाँ ही तूने पैर ऊपर छटका और बोझी-सी जगह टाकी हुई कि वही समय छरगोरा वहाँ आ गया । अब हावत यह भी कि अगर तू अपना पैर जमीन पर टेके तो छरगोरा कुचल जाय । तू में छरगोरा को देखा और उस पर दबा भी माचना उत्पन्न हुई । अतएव तू ने अपना पैर ऊपर ही छटाये रक्खा । तीन दिन बाद भाग शान्त हुई और सब जानवर मागे और वह छरगोरा भी चला गया । तब तूने अपना पैर जमीन पर टेकने का विचार किया । मगर जगाहार तीन दिन ठँबा रहने के कारण पैर अकड़ गया था । वह नीचा नहीं हुआ तू भरती पर पड़ गया और मर गया । मरते समय तेरी माचना बहुत उम्बड़ रही । छरगोरा पर दबाभाव रहने और उम्बड़ माचना पारण करने से तू राधा भौतिक का पुत्र हुआ है ।

मेघ ! यह तूरे पूर्वमय का इत्थान्त है । आज तू सोचे से

कष्ट से ही घबरा गया है किन्तु गज के भव में तूने कितना कष्ट उठाया था ? इतना सुनकर—

जाति-सुमरन ज्ञान हुआ है ।

हस्त-कमलवत् लिया निहारी ॥

भाइयो ! भगवान् महावीर के मुख से इतनी बात सुनते ही मेघकुमार को जाति स्मरण ज्ञान हो गया । उन्हें अपना पूर्व भव हाथ की रेखाओं की तरह स्पष्ट दिखाई देने लगा । शुद्ध भावना आई तो अज्ञान का पर्दा हट गया । मेघकुमार ने कहा— भते ! आपने आज मेरे नेत्र खोल दिये । मैं अभी तक भ्रम में था—अधकार में भटक रहा था । मैं अपनी भूल के लिए क्षमा चाहता हूँ । मुझे प्रायश्चित्त दीजिए । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि दोनों नेत्रों को छोड़कर मेरा यह सारा शरीर मुनियों की सेवा में समर्पित है ।

संयम पाल विजय विमान में,

देव हो गये एका भवतारी,

चाथमल कहे गाव बड़ावदे,

दो हजार के साल मुक्तारी,

आखिर मेघकुमार ने ज्ञान के द्वारा जान लिया कि—यह शरीर अनित्य है । इससे जितनी सेवा, जितना वैयावृत्य हो सकेगा, दूसरों को जितना आराम पहुँचेगा, उतना ही आत्मा का कल्याण होगा । उस दिन से मुनि मेघकुमार पूर्ण रूप से सयमनिष्ठ हो गये । शुद्ध सयम का पालन करके अन्त में वे

अतुल्य विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ से जब कर, मनुष्यगति में आकर वे मोक्ष प्राप्त करेंगे।

क्यों का अविश्राम यह है कि जब तक अज्ञान का पर्दा पड़ा रहता है तब तक वास्तविक तत्त्व मायूम नहीं होता। ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य को सोचना चाहिए कि मैं कौन हूँ? क्यों से आया हूँ? और क्यों जाऊँगा? जब इन प्रश्नों का सही ठौर पर ज्ञान हो जायगा तो आपको वेबस् का मार्ग मिल जायगा और उस मार्ग पर चलकर आप स्वयं भगवान् बन जाएँगे।

हो इश्वर हो भविष्य आया
गुरु-प्रसादे बौध्मस गाया।
पर निश्चय ज्ञान हो तो ज्ञानी बनो ॥

माइनों! भविष्य समझे कि ज्ञान के अभाव में आकाशमन नहीं हो सकता। ज्ञान के बिना अमर पर प्राप्त नहीं हो सकता।

बन्धु-कुमार की कथा

बन्धु-कुमार को भी ऐसा ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। श्री गुरुभक्त स्वामी ने उनके भीतर के नेत्र खोल दिये थे। उस ज्ञान के प्रभाव से वे अपने संकल्प पर अडिग रहे। बन्धु हैं ऐसे नरबीर!

आठों कम्पाग्यों ने विचार किया कि जगत् में नारी की शक्ति दुर्लभ है। हम आठों मिलकर कुमार व वैराग्य को काटकर देंगी। अतएव हमें बन्धु-कुमार के साथ ही विवाह करना चाहिए।

इस प्रकार आपस में निश्चय करके कन्याओं ने अपने-अपने माता-पिता को अपने निश्चय की सूचना दे दी। उधर जम्बूकुमार के माता पिता के पास भी यह सवाद पहुँचा दिया गया। अब तक वे दुविधा में पड़े थे। कन्याओं के विचार-विनिमय का परिणाम जानकर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। नौ ही घरों में विवाह की धूम मच गई। बीच में निराशा और अनुत्साह की जो हवा फैल गई थी, वह दूर हो गई। निराशा के बाद की आशा अधिक स्फूर्तिजनक होती है। अतएव बड़ी स्फूर्ति और आशा एव हर्ष के साथ फिर विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

आखिर विवाह का दिन आ पहुँचा। आठों कन्याओं का पीठमर्दन हुआ। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनाये गये। कन्याओं में नैसर्गिक सौन्दर्य था ही, शृ गार ने उसे कई गुना बढ़ा दिया। कन्याएँ ऐसी दिखाई देने लगीं, मानो स्वर्ग से अप्सराएँ उतर कर आई हों।

उधर जम्बूकुमार को भी दूल्हा का धाना पहनाया गया। बड़े ठाठ के साथ ब्रिदौरी निकली। आखिर घरात खाना हुई। आठों कन्याओं से एक ही साथ विवाह हो गया। सब कन्याओं के माता-पिता से ६६ करोड़ सोनैया का दहेज मिला। सब के यहाँ से सोने-चाँदी और रत्नों के पलग मिले। थाली-गिलास आदि-आदि ११६ तरह की चीजें दहेज में दी गईं। घरात लौट कर घर आ गई। घर आते ही जम्बूकुमार ने माता-पिता के चरणों में नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे अपने भवन के सातवें खड पर चले गये।

धर आठों गुरुओं के जाने से पर मान्यो खिन्न लठा ।
 रीतक ही कुछ और हो गए । गुरुओं ने आकर जम्बूकुमार की
 माता को अत्यन्त आदर के साथ प्रणाम किया । गद्गल भाव
 से माता ने उन्हें आशीर्वाद दिया-बेटिया ! पूतो, कतो !
 तुम्हारा मुहाग बढ़ता रहे ।

रात्रि का समय आया । सभी शिष्यों सुन्दर से सुन्दर
 गृहार करके अपने पति स मिलने गईं । मास्को ! आज योग
 और भोग की कड़ाई है, तर्काई भी साधारण नहीं बड़ी अचर्चित
 टनन वाली है । आज संसार की दो विरोधी शक्तियों का दुसुल
 संग्राम है । उसमें बड़ी विजय पाएगा, जो ज्यादा शक्तिशाली
 होगा ।

जम्बू कुमार ध्यान में मग्न अपने पलंग पर बैठे हैं । उनके
 मुख पर स्वाग और वैराग्य की अलक विकार्य हो रही है । शान्ति
 और सीम्पता का नृत्य सा हो रहा है । इसी समय आद्य सध
 परिणीता वपुर्से कमकुम-कमकुम करती हुई कुमार के कमरे में
 प्रविष्ट हुई । उन्होंने कुमार को ध्यान में डीन देखा तो हृदय को
 ठस लगी । उन्हें ऐसा लगने लगा, मान्यो हमारी पराजय होने
 वाली है । फिर भी धीरे-धीरे धर, कुमार को चारों ओर से घेर
 कर बह बैठ गईं । मगर कुमार का ध्यान नहीं टूटा । बेनाफ के
 अग्रले भाग पर तब्रर अभाव चीन भाव से सबों के लो बैठे रहे ।

आठों वपुर्से कुमार पर दृष्टि लगाये बैठी रहीं और कलक
 ध्यान समाप्त होने की राह देखने लगी । उस समय उन लक्षिका
 दिता वपुओं के चित्त में कैसी-कैसी भावनाएँ उत्पन्न हो रही होंगी,

यह कल्पना करना भी कठिन है। वह विवाह की पहली रात्रि थी। इसे सुहाग-रात कहते हैं। सुहाग-रात दुनिया में असाधारण समय समझा जाता है। न मालूम कितने और कैसे-कैसे मसूबे लेकर, कितनी कौमल, हरी-भरी और रगीन भावनाएँ लेकर नवविवाहित पति-पत्नी इस समय मिलते हैं। उनका हृदय धड़कता हुआ, छलकता हुआ, उछलता हुआ और नाचता हुआ होता है। पर जन्मू कुमार की सुहाग-रात अनोखी है। जगत के इतिहास में, किसी दूसरे नवयुवक ने इस प्रकार सुहागरात मनाई हो, यह देखने-सुनने में नहीं आया। जन्मू कुमार ने विस्मय पूर्ण और अनोखे इतिहास की सृष्टि की है। धन्य है, धन्य है, ऐसे विकार विजयी वीर पुरुषों को।

आखिर ध्यान भग होने की प्रतीक्षा करते-करते बहुत समय बीत गया और भग होने के कोई लक्षण दिखाई न दिये। धधुओं का धैर्य टूटने लगा। विषाद से हृदय भारी हो गया। उनकी उम्रों और कल्पनाएँ कुमार के वैराग्य-सागर में डूबने लगीं, तब उनसे चुपचाप न बँठा गया। उन्होंने कहा-प्राणनाथ। कई दिन का भूखा कोई आदमी भोजन करने बैठे, उसके सामने सुन्दर सरस और स्वादिष्ट भोजन मौजूद हो, और पहला कौर उठाते ही मक्खी पड़ी नज़र आ जाय तो उसका क्या हाल होता होगा? ऐसा ही हाल हमारा है। न जाने कितनी उत्कंठा के बाद आपके दर्शन हुए हैं। कितनी लुभावनी भावनाएँ लेकर हम आपके आगे आई हैं। हमने अपना सारा जीवन आपके ऊपर निष्ठावर कर दिया है। मगर आप प्रथम मिलन के समय ही रुठे बैठे हैं। बोलते नहीं और आँख उठा कर देखते भी नहीं हैं। क्या हमने आपका

परोक्ष में कोई अपराध किया है ? कभी किसी रूप में कोई भूल हो गई हो तो जमा प्रदान कीजिए । मुँह साफ़ कर उस भूल को सम्झिए तो सही । अगर अम्बूकुमार ने बड़ा ही कठोर मनोभाव धारण किया । वे परिवर्त के इस प्रकार की हरकत का विपक्ष होने वाली बात को सुन कर भी पिपसे नहीं । अम्बूकुमार जब भी अपने ध्यान में मग्न बैठे हैं ।

एक ओर यह हो रहा था और दूसरी ओर दूसरी घटना का सूत्रपात हो रहा था । बात यों हुई । उसी नगर में प्रमथ नामक एक व्यवस्थित चोर था । उसने सुना कि अपभ्रष्ट सेठ के यहाँ बहुत के बिना में ६६ करोड़ का शायदा धाया है । भाव ही उस मात्र पर हाथ साफ़ करने का उत्तम व्यवसर है । यह सोचकर प्रमथ ने अपने ५० साथियों को इकट्ठा किया और रात्रि जब काँची नीत गई तो यह उनके साथ सेठजी के घर आया । प्रमथ चोर कोई मामूली आदमी नहीं था । उसने कई बिघारें सीखी थीं । जन्म से ताँजा तोड़ने की विद्या भी एक थी । इस विद्या के प्रभाव से उसने समस्त ताँजे तोड़ डाले । दूसरी विद्या का प्रयोग करके उसने सब आत्माओं को मुक्त किया । इसके बाद उसने अपने साथियों को हुक्म दिया—मोहरों की गठकियाँ बॉबो धीरे अकड़ी करो । प्रमथ के साथी बड़ी तत्परता के साथ मोहरें बटोरने में लग गये ।

माइजो ! संसार एक बड़े रंगमंच के समान है । यहाँ तरह-तरह के हरकत दिखलाई पड़ते हैं । एक दृश्य पूरा नहीं हो जाता कि दूसरा तैयार है । न माइज कितनी घटनाएँ घटती खटती हैं ।

इधर चोर जल्दी-जल्दी माल समेटने में लगे हैं, उधर शासन देवता का ध्यान इस ओर आकर्षित होता है। जब शासन देवता को यह बात मालूम हुई कि कुमार कल दीक्षा लेने वाले हैं और आज रात्रि में ही उनके घर जबरदस्त चोरी हो रही है। अगर चोरी हो गई और उसके याद कुमार ने प्रातःकाल दीक्षा ली तो ससार में अपवाद होगा। लोग कहेंगे कि सम्पत्ति चली गई है, इसी कारण कुमार साधु हो रहे हैं। उक्ति प्रचलित है—

नारि मुई घर सम्पति नासी,
मूढ़ मुडाय भये सन्यासी,

लोगों को इस प्रकार की बातें कहने का मौका मिल जायगा। कुमार की दीक्षा का महत्त्व दुनिया की नज़रों में कम हो जायगा। जम्बूकुमार की दीक्षा दुनिया के इतिहास में एक अनोखी घटना है। दीक्षाएँ तो बहुत हुई हैं और होंगी भी, परन्तु इस प्रकार की यह दीक्षा निराली है। इस दीक्षा की उत्तमता खत्म हो जायगी और जनता के अपवाद का विषय बन जाएगा।

शासन-देवता ने इस प्रकार विचार कर अपने दैवी सामर्थ्य से, धर्म की महिमा बढ़ाने के उद्देश्य से, चोरों को स्तब्ध कर दिया। जो चोर जहाँ जिस हालत में था, वह वहीं उसी हालत में स्थिर हो गया। किसी में हिलने-डुलने की भी शक्ति नहीं रही। रह गया सिर्फ प्रभव, जो स्तब्ध नहीं हुआ था। उसे अपने साथियों का अचानक यह हाल देखकर आश्चर्य हुआ। वह बुरी तरह परेशान हुआ। थोड़ी देर तक वह भौंचक्का

सा हो रहा । उसे सुझा ही नहीं कि क्या करें और क्या न करें ।

सेठ अल्पमदत का पर बहुत विरग्राह था । प्रमद उसमें इपर इपर पागल सा घूमने फिरने लगा । वह अचरमात् आपकी सुसीबत का इलाज सोचने लगा । प्रमद बहुत होशियार होर था । उसकी होशियारी और बालाकी के सामने किसी की हज बलती नहीं थी । राजा भक्ति की राजधानी में ही वह बड़ी सफलता के साम अपना पंथा बसा रहा था । जिस की मजाक है कि उसके रास्ते का झंटा बन सक । परन्तु आज उसकी सारी बालाकी हवा हो गई । वह बिचरा साधार और हीन बन गया । बहुत मायापकी करने पर भी उसे कोई उपाय न सुझा कि अपने साधियों की रक्षा कर सके ।

सठजी के घर में घूमता फिरता प्रमद वहीं जा पहुँचा जहाँ जम्बूकुमार और उनकी भातों पत्नियाँ मौजूद थीं । जम्बूकुमार के सामने पहुँचते ही उसने अपने आपका एक सिपुर् कर दिया । वह बोला-कुमार कृपा करके मुझे स्तमित करने की विद्या सिखाइए । उसके बरबसे मैं आपकी दो विद्याएँ सिखाऊँ देता हूँ । जमा कीजिए, मुझे पता नहीं था कि आपके वह विद्या जाती है । अब स्वप्न में भी कभी मैं आपके यहाँ चोरी करने नहीं आऊँगा ।

जम्बूकुमार रात्रि के समय अचानक, प्रमद को सामने पाकर बहिन रह गये । तिस पर उसने एकएक विद्या सीखने और सिखाने का जो प्रस्ताव रक्खा वह तो उनकी समझ में ही न आया । वे समझ ही नहीं सके कि आशिर यह पेड़ी बाटें क्यों

कर रहा है ? उन्हें क्या पता था कि-मेरे घर में चोर स्तम्भित हो गये हैं और प्रभव समझता है कि यह सब मेरी ही करामात है ! अतएव जम्बूकुमार ने कहा-प्रभव, तुम किस भ्रम में पड़े हो ? क्या कह रहे हो ?

प्रभव बोला-कुमार ! बनिये मत । समय ज्यादा नहीं है । सुबह हुआ ही चाहता है । देरी हुई तो हम सब मारे जाएँगे । जल्दी कीजिए । अगर आप मुझे विद्या सिखा देंगे तो रक्षी दया होगी ।

भाइयो ! आगे का वृत्तान्त फिर सुनाने की भावना है । अगर आप जम्बूकुमार की तरह ज्ञान प्राप्त करेंगे तो आनन्द ही आनन्द होगा ।

जोधपुर,
ता. २३-८-४८ }



भयभंजन भगवान् !



स्तुतिः—

रम्भोत्तममदानिष्ठविशोष्ठकपोकम्भस ।

मत्तममम्भमरनाद विद्वदम्भेम् ।

पेरावताममिभम्भुतमापत्तन्त,

एप्ति मय मवति नो मवदाभिवानाह् ॥

भगवान् कृष्णदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—वे सर्वज्ञ, सर्वेश्वरी अमृत-राक्षिमान्, पुरुषोत्तम कृष्णदेव भगवान् । कहीं तक आपके गुण गाये जाएँ ? किस प्रकार आपकी स्तुति की जाए ?

भगवान् का नाम मैं अद्भुत राखि है । कल्पना कीजिए, कहीं आपकी स्तव-बरा किसी जगल, गाँव या शहर की गली में

होकर जा रहा है । सामने से एक मदोन्मत्त और उद्धत हाथी आ गया । हाथी मद से मतवाला हो रहा है । उसके गडस्थलों से मद चू रहा है । चूते हुए मद की गंध से बहुतेरे भ्रमर भी मतवाले बन रहे हैं । मतवाले भौरों गुन-गुन करके शोर मचा रहे हैं । भौरों के शोर से हाथी का क्रोध बहुत अधिक बढ़ गया है । हाथी कोई मामूली नहीं ऐरावत के समान विशाल-काय और शक्तिशाली है । मतवाला और कुपित है । ऐसी स्थिति में अगर कोई मनुष्य उसके सामने आ जाय तो वह क्षण भर में उसका कचूमर निकाल सकता है । बलवान् से बलवान् और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् मनुष्य भी ऐसे हाथी के सामने क्या कर सकता है ?

किन्तु जो भव्य जीव भगवान् ऋषभदेवजी के भक्त हैं, जिन्होंने प्रभु के पाद-पद्मों में अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है, जिन्होंने अपनी ताकत का घमड़ छोड़ कर भगवान् के नाम के लोकोत्तर बल का सहारा पकड़ लिया है, उन्हें ऐसा भयानक हाथी सामने आया देख कर तनिक भी भय नहीं होता । उन्हें विकराल से विकराल हाथी भी खरगोश के समान प्रतीत होता है । भगवान् का ध्यान करके 'ॐ उसभ' इस प्रकार तीन बार उच्चारण करने से हाथी उसे नहीं सताता । वह आनन्दपूर्वक अपने घर पहुँच जाता है । उसे कोई कष्ट नहीं होता । यह भगवान् के स्मरण की महिमा है । भगवान् ऋषभदेवजी के नाम में ही जय इतनी महिमा है तो साक्षात् भगवान् का तो कहना ही क्या है ? ऐसे भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार बार नमस्कार हो ।

भाइयो ! मनुष्य को सब से पहले श्रद्धा होनी चाहिये । वह भी अचल और अटल होनी चाहिए । ससार में श्रद्धा बड़ी चीज

है। जो सम्पूर्ण माद मे अद्यामव होता है, वही अपने लक्ष्य मे सफलता पाता है। आत्मा की दृढ़ता इानी बाहिय। जिसमे मया आत्मक है, कोई विम्व्र उसके सामने बाधक नहीं बन सकता।

अन्तगाह मूत्र मे एक बटना का वर्णन आता है। करीब पचीस सौ वर्ष पहले की बात है राजगृही मगरी में जो आर्यभट्ट के विहार प्रान्त में थी ठक माली रहता था। वह अजुन माछी के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी पत्नी बड़ी ही रूपवती सुकुमारी और पुण्यवती थी। इसमें अच्छी कियों के दृष्टता आरि गुण विद्यमान थे। शहर मे मेले-मखोरमव हुआ ही बन है। तबजु नार उस समय भी राजगृही में बड़ा उत्सव था। अजुन माछी अपनी पत्नी के साथ मात काज करी उठकर बगीच मे गया। इसने पत्नी मे कहा आइ मगर में इसव है। पूजा की विधी करनी होगी। इसकी बच, कर पूर पुन लावे। गन्त बगीचे मे पहुँच।

इसी मगर मे बह मधुबक व आ नरवान और शक्ति शास्त्री व। वसेटा के लड़के थे। इनके पितामा म र ज। दित के बाई मम काम क्रिय व जिसम लज्ज बड़ी-बड़ी-रिवायते मिली थी वहाँ तक कि मृत कर देना भी लम्हे माफ था।

इसी दिन इस मधुबक ने विचार किया कि पत्नी अजुन माछी के बगीच मे वने और वही मनारजन करके ममव विताए। वे बहो उस बगीचे मे जा पहुँच। अजुन माछी के पहुँचन मे पड़े ही व वहाँ पहुँच गये।

अजुन माछी और इसकी पत्नी ने बगीच मे जाकर पूर पुने और टाकरी मे भर लिये। गन्त साचा-पहल दृढ़ता की

फूत चढ़ा दें, फिर इन्हें बेचने के लिए ले चलेंगे। यह सोचकर दोनों फूत चढ़ाने के लिए जा रहे थे कि उन छहों नवयुवकों की निगाह माली की छा पर पड़ी। स्त्री की खूशमूरती देख कर उनकी नीयत बिगड़ गई। उन्होंने आपस में सलाह-करके निश्चय किया-अर्जुन को पकड़ कर बाँव ले और इसकी स्त्री से अपनी इच्छा की पूर्ति करें। यह अकेला है और अपन छह है। उसका कुछ भी बश नहीं चलेगा।

छहों नवयुवक मन्त्रि के दो दरवाजों के पीछे तीन तीन की संख्या में छिप रहे। अर्जुन को इस घटना का तनिक भी आभास नहीं मिला। उसका खुद का बगीचा था और वह हमेशा वहाँ आया करता था। अतएव न तो उसे किसी प्रकार की आशंका थी, न कोई भय था। वह सहज भाव से अपना काम कर रहा था। वह अपनी पत्नी के साथ सड़िर में प्रविष्ट हुआ। दोनों ने देवता के आगे फूत चढ़ाए। किन्तु उ्यों ही वे नमस्कार करने के लिए नीचे झुकें कि इसी समय उन नवयुवकों ने हमला बोल दिया। उन्होंने अर्जुन को पकड़ लिया। उसी की पगड़ी से उसकी मुँहें बाँध दीं। फिर उसे एक किनारे पटक दिया और उसी के सामने उसकी स्त्री के साथ दुर्गाचार का मेवना किया।

अर्जुन के मन में उस समय कैसे कैसे विचार आये होंगे, कौन कह सकता है? वह क्रोध के सारे जलने लगा। उसने सोचा-मेरा बश नहीं चल रहा है, मगर हम अपने बाप-दादाओं से इस देवता की पूजा करते आये हैं। यह देवता इस भीषण अत्याचार को कैसे सहन कर रहा है? अब शायद इस मूर्ति में देव नहीं रहा है, सिर्फ लकड़ी की मूर्ति रह गई है। अगर इसमें देव होता

तो क्या वह ऐसा अत्याचार होने देता ? इर्गिज नहीं । अब इस मूर्ति में कोई करामात नहीं है ।

अर्जुन मात्सी ऐसा विचार कर ही रहा था कि किसी बेबता का उपयोग लग गया । उसने अर्जुन के शरीर में प्रवेश किया । बेबता के प्रवेश करते ही अर्जुन के शरीर में असाधारण बल आ गया । उसकी मुठ्ठे अब सूत की तरह बननामास ही टूट पड़ी । वह स्वतंत्र हो गया । वहाँ पहुँच हुए एक भारी सुएगर को धठाकर वह सब घोर अत्याचारी और दुराचारी नवयुवकों की तरफ झपटा । उसने वहाँ के प्राण के लिए और साथ ही अपनी पत्नी का भी आत्मा कर दिया, क्योंकि उसकी नीबल भी लपक हो गई थी ।

इस प्रकार सात मनुष्यों का सून करके वह बागीचे से बाहर निकला । हाथ में भारी सुएगर लिये वह घूमने लगा । वह प्रतिदिन वह पुरुषों का और एक स्त्री का बल करने लगा । यह उसका दैनिक कार्य हो गया । एक दिन, दो दिन, महीना, दो महीने पचास बार महीने हो गये । अर्जुन की रक्त-पिपासा नहीं बुझती । उसका अचेरा कम मरी होता । वह साक्षात् वमराज की भाँति सुएगर लिये घूमा करता है और नर-संहार किया करता है । उसकी यह प्रवृत्ति बढ़ती ही नहीं है ।

सारी राजगृही नगरी में तरहका मच गया । अर्जुन के हर क मारे लोग खौपने लगे । उन्हें ऐसा माहूम होने लगा-माने मौत शरीर पारण करके घूम रही है । पर किसी का बल नहीं बल । अर्जुन मात्सी को पकड़ बने का किसी का साहस

नहीं हो सका और विरुराल रूप धारण किये अर्जुन प्रतिदिन छह पुरुषों तथा एक स्त्री को यमलोक भेजने लगा ।

राजा ने निरुपाय होकर नगर के चारों दरवाजे बन्द करवा दिये और डोंडी पिटवा दी कि अगर कोई नगर के बाहर गया तो हम उसकी जान के जिम्मेदार नहीं हैं । इससे लोगों को और खास तौर से गरीबों को बड़ा कष्ट हो गया । जो लोग जंगल से लकड़ी, पत्ता या दूसरी चीजें लाकर और उन्हें बेच कर अपना उदर-निर्वाह करते थे, उनकी आजीविका के द्वार भी बंद हो गये । वे बेचारे संकट में पड़ गये । यों करते-करते आखिर पाँच महीना बीत गये ।

छठा महीना चल रहा था कि एक नयीन घटना घटी । उस समय श्रमण भगवन्त महावीर मौजूद थे । भगवान् ग्राम, नगर, पुर पाटन आदि में विचरते-विचरते राजगृही नगरी के बाहर घगीचे में पधारे । भगवान् अपने ज्ञान से जान चुके हैं कि अर्जुन माली राजगृही में भारी गजब ढा रहा है । उसने आज तक ग्यारह सौ से भी कुछ अधिक आदमियों के प्राण ले लिये हैं ।

राजगृही में सुदर्शन नामक एक सेठ थे । उन्होंने अपने पिता की मौजूदगी में ही सेठ की पदवी प्राप्त की थी । सुदर्शन सेठ भगवान् के भक्तों में प्रधान, धर्मपरायण और दृढ़ शीलव्रती थे । उन्हें भगवान् के पधारने का समाचार मिला । तीर्थंकर भगवान् नगर में पधारे और उनके दर्शन न किये जाँ, यह कल्पना ही सुदर्शन को अरुचिकर थी । उन्होंने भगवान् के दर्शन करने के लिए जाने का पक्का निश्चय कर लिया । अपने निश्चय की

मृत्युता माता-पिता का भी दूरी । माता पिता का पुत्र पर गहरा स्नेह होता है । उगलन मुदगलन में कहा उगा ! बीन अमागा ज्वाला रागा जो भगवान् के वरान न करना चाहगा ? सीधेकर मधु के वरान का मोमाम्ब सीधे पुन्य के उद्यम में मिलता है । उमका वरान परम पावन है । जीवन का धन्य और पुण्यमय बनाने वाला है । मगर तुम्हें क्या पता नहीं है कि अजुन के कारण भगवान् के वाम पहुँचना ही संभव नहीं है । यह बाहर निकलने वाला मनुष्यों का बंध कर डालता है । ज़िंदगी में मुन्दारा यहाँ जाता बध्मक नहीं है । भगवान् अनन्त छाती है पट पट की बात आता है । तुम्हारे हृदय का भक्ति-मात्र उमम छिपा नहीं है । अतएव यही मैं भगवान् का वन्दन-महाम्कार कर का । भगवान् तुम्हारी वन्दना अचरित स्वीकार कर लेंगे ।

मुदराँन ने कहा—आपकी मुन्द पर अमीन समता है । इसी कारण आप मुझे ज्ञान की मलाई पर रहें हैं जिस काम में आप मेरा कहित मानते हैं, उसमें राखन हैं; यह मेरे सीमागत का विश्व है । मगर मरी अन्तरात्मा मुझे प्रेरित कर रही है कि मैं भगवान् महावीर के चरण कमलों में बही जाकर वन्दना करूँ । मैं अर्चन निश्चय कर चुका हूँ ।

पिता—तुम क्यों क्या हो ? क्या तुम्हें ज़िन्दगी पसंद नहीं है ?

मुदराँन—पिताजी ! आपकी बच-बाया में रहत मुझे ज़िन्दगी ; आपसम्ब क्यों होगी ? मुझे कोई कष्ट नहीं है । मगर मुझे विश्वास है कि मेरा कुछ भी अन्तिम नहीं होगा । अजुन में यदि शक्ति है तो क्या धर्म में शक्ति नहीं है ? अजुन मारगा तो क्या धर्म रखा नहीं

करेगा ? मैं अपने धर्म की रक्षा करूँगा तो धर्म भी अवश्य ही मेरी रक्षा करेगा । ससार में यदि भौतिक बल है तो आध्यात्मिक बल भी है और आध्यात्मिक बल भौतिक बल से अधिक प्रबल है । शस्त्र स्थूल वस्तु है और आत्मा सूक्ष्म है । स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्ति ज्यादा जवर्दस्त होती है । अतएव आप चिन्ता न करें । धर्म के प्रसाद से कोई अमगल नहीं हो सकता ।

इस प्रकार किसी तरह माता-पिता को समझा-बुझा कर सुदर्शन सेठ घर से बाहर निकले । जिस किसी ने उन्हें जाते देखा, उसी ने टोका, रोका और कहा—आज क्या प्राण देने की इच्छा हुई है ? मगर भक्त प्रवर सेठ सुदर्शन, बिना किसी की सुने आगे धड़ते ही चले गये । चलते-चलते वे नगर के फाटक पर पहुँचे । वहाँ तैनात सिपाहियों ने भी उन्हें रोका । कहा—सेठजी ! आप सारी हालत समझते हैं, फिर भी बाहर जाने का विचार करते हैं । प्राणों की जोखिम उठाना ठीक नहीं है । आप लौट जाइए ।

मगर सुदर्शन पर किसी के समझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । कवि ने कहा—

राई घटे न तिल बढ़े, रह-रह जीव निशंक ।

अर्थात्—केवली भगवान् ने अपने ज्ञान में जैसा देखा है वैसा ही होगा । उसमें न राई भर घट सकता है, न तिल भर घट सकता है । कहा है—

मैं अखंड अविनाशी हूँ, परिशुद्ध धर्म यह मेरा है ।

इस तन से मेरे क्या मतलब, यह नाशवान निस्सारा है ॥

सुपरान सेठ कहते हैं—मैं इस सिद्धांत को मानता हूँ कि मैं अक्षय हूँ, अविनाशी हूँ, अजर अमर हूँ। निष्कलंकता मेरा धर्म है। इस शरीर से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन हो सकता है तो यही कि यह धर्म भी आटाबना में सहायक बने। अगर यह धर्म में सहायक नहीं होता बल्कि रूपांत होता है तो इसका वास्तव-वैफल्य करने से क्या काम है ? मैं धर्म के क्रिये शरीर का परित्याग कर सकता हूँ, मगर शरीर के क्रिये धर्म का परित्याग नहीं कर सकता। कारण यह है कि एक शरीर त्याग देने पर दूसरा शरीर अनायास ही मिट जाता है, मगर धर्म का त्याग कर देने वाले को फिर धर्म की प्राप्ति होना संभव नहीं है।

सुपरान सेठ फिर बोले—जो आज लोग शरीर की रक्षा के लिए अपने धर्म का परित्याग करते हैं, उनसे बहुतकर मूर्ख संसार में बन जाएगा। वे धर्म को छोड़ कर शरीर की रक्षा करना चाहते हैं, मगर क्या वे शरीर की रक्षा कर सकेंगे ? ऐसा होता तो अधर्मी लोग अजर अमर बन गये होते और अनादि काल के सभी अधर्मी इस दुनिया पर ही मौजूद रहते। मगर ऐसा होना संभव नहीं है। अगर और साक्ष प्रयत्न करने पर भी शरीर सदा त्वाची नहीं रह सकता। इस प्रकार शरीर तो नाराज रह, बहने वाला ही है, फिर उसकी रक्षा के लिए धर्म का त्याग करना कहाँ तक बचित है ?

माइयो ! यो तो बहुत लोग 'पक्षी जमा पक्षी जमा' के मारे जगाते रहते हैं, मगर जब किसीकी का काख आता है तब जने और छोटे हो जाती हैं।

भौंदू भैया ! क्या तेरा विश्वास ?

तेरा पड़े न पूरा पाशा !

लोग कहते हैं-हम भी भक्त हैं, हम भी शीलधर्म को मानते हैं, ईश्वर पर श्रद्धा रखते हैं, मगर कवि कहता है, भौंदू भाई ! तुम्हारा भरोसा क्या है ? बहिर्ने बड़ी भाग्यशालिनी हैं । उनमें धर्म के प्रति अच्छी अवस्था देखी जाती है, मगर असलियत का पता तो समय आने पर ही लगता है । समय आने पर शूरवीर पुरुष अपने पथ से रचमात्र भी नहीं ढिगता, मगर कायर क्या करता है ? -

कायर तो ढिग गया हो गया चकनाचूर ।

कोइक नर सेंठा रया, जाने वीर वखाएया शूर ॥

कायर पुरुष भाग जाता है और चकनाचूर हो जाता है । कोई विरले ही पुरुष दृढता धारण करते हैं । भगवान् ने उन्हीं की तारीफ की है और हम भी उन्हीं की तारीफ करते हैं ।

भगवान् की शक्ति तो अतुल्य है ही, मगर भगवान् के भक्त की शक्ति भी मामूली नहीं होती । भक्त को भी भगवान् की शक्ति का अंश प्राप्त रहता है । मगर सबी भक्ति का जागना बहुत मुश्किल है । सबी भक्ति के सामने तलवार की तीखी धार बेकार साबित होती है । अलबत्ता वनावटी भक्ति में यह सामर्थ्य नहीं है । काम सचाई से चलता है इमीटेशन से क्या काम चलेगा ?

हाँ, तो सुदर्शन सेठ ने सिपाहियों से कहा-तुम मेरी चिन्ता मत करो । अपनी चिन्ता करने को मैं आप वस हूँ । दरवाजा खोल दो । मुझे जाने दो ।

बेचारे सिपाहियों ने दरवाजा खोल दिया। सेठ सुबर्दान गंभीर भाव से आगे बढ़े। इधर लोगों के झुंझुका का पार नहीं था। बहुत से लोग अपनी ज़तों पर बढ़ कर और बहुतेरे राजगृह नगर के राष्ट्रपनाह की दीवार पर बढ़ कर बड़ी जकड़ा के साब देखने लगे कि अब आगे क्या होता है ? वे सोच रहे थे कि अजुन माखी आया नहीं कि सुबर्दान बमसोक पहुँचे नहीं। मगर सेठजी अपनी स्वामासिक गति से बढ़ते बढ़े जा रहे हैं। उन्हें न कोई मिन्नत है, न मन्नत है न पबराहट है। वे जानते हैं—करना तो करना नहीं और करना तो करना नहीं। कहा है—

हममग नहीं करना, नहीं करना, प्रभुजी के मारम बचना।

अजुन-भगवान् के सस्य पद पर चलने में दिक्कत नीति नहीं रखना चाहिये। एक मावना और पूर्ण विरवास के साथ-भगवान् के मार्ग पर बढ़ने से ही सिद्धि प्राप्त होती है।

आसिर जो आरांफा भी, सस्य साबित हुई। इधर सेठ सुबर्दान बढ़ जा रहे थे और उपर से अजुन माखी लपका-बंसा आ रहा था। नगर के वर्राह लोगों ने यह दरब देखा तो तख़्त तख़्त की बातें आरम कर दीं। किसी ने कहा—‘कितना मना किया था, मगर सेठ नहीं माने। हमकी मौत उन्हें अचरसती पसीट ले गई। अजुन आ पहुँचा है और अब सुबर्दान के दरम बुलम हो जायेंगे। दूसरे बोले—‘बम्ब है मकत सुबर्दान जो अपनी ज़ान हथेली पर लेकर भी भगवान् की लपासना के किए बढ़ दिव। संसार में ऐसे पक्के मकत बिरसे ही हो सकते हैं।’ तीसरे ने कहा—‘देखो, क्या होगा है ? मौतिक और आसिरिक

बल में से किसकी विजय और किसकी पराजय होती है ? चौथा बोला—‘बात ठीक है । यह तो धर्म और अधर्म का सम्राज है । देखें, धर्म विजयी होता है कि नहीं ।’ इस प्रकार बातें करने वाले कभी सुदर्शन को और कभी अर्जुन माली को देख रह थे ।

दोनों के बीच का फासला कम होता जा रहा था । दोनों एक दूसरे के पास बढ़ते चले जाते थे । ज्यों-ज्यों दूरी कम होती जाती थी, त्यों-त्यों देखने वालों की घबराहट ज्यादा बढ़ती चली जाती थी । सब के सब सास रोक कर शीघ्र ही होने वाली घटना की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

इसी समय सेठ सुदर्शन ने जब अर्जुन माली को पास आया देखा तो आगे बढ़ना बंद कर दिया । उन्होंने अपने दुपट्टे से भूमि का प्रसार्जन किया और सीधे खड़े होकर ध्यान में लीन हो गये । उन्होंने भगवान् की साक्षी से, विघ्न शान्त न हो तो जीवन पर्यन्त के लिए अन्न-पानी आदि का, यहाँ तक कि अपने शरीर का भी त्याग कर दिया । अठारहों पापों का भी त्याग कर दिया । उन्होंने सोचा—अगर मैं इस उपद्रव से बच गया तो मुझे पूर्व की भौंति आचरण करने का आगार है । इतना सब करते हुए भी सुदर्शन के हृदय में भय का लेश मात्र भी संचार नहीं हुआ । उनके साढ़े तीन करोड़ रोमों में से एक भी रोम में भय का आभास नहीं हुआ ।

भाइयो ! हम भी तारीफ ऐसे ही महापुरुषों की करते हैं । हम घरे गैरे पँचकल्याणी लोगों की तारीफ नहीं करते ।

इस बीच अर्जुन नगदीक आ पहुँचा । उसने सुरार्ज सेठ पर प्रहार करने के लिए सुर्गर को पड़े और स डँचा उठाया । लोगों ने समस्त अब सुरार्ज नकनाचूर हुए । राक्षस का मूण्ड बजा-मगर सुरार्ज तो पक्षे ही यह चुके थे—

धर्मो रक्षति रक्षितः ।

आ धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म करता है । सुरार्ज ने धर्म की रक्षा की थी तो क्या धर्म उनकी रक्षा न करता ? यदि धर्म में इतना सामर्थ्य न होता तो उसकी इतनी महिमा क्यों होती ? यह धर्म का ही प्रताप था कि अर्जुन ने सुर्गर का प्रहार करने के लिए हाथ ऊपर उठाया तो हाथ ऊँचा ही रह गया । उसने बहुत और मारा अपनी सारी शक्ति लगा दी किन्तु हाथ लीचा नहीं हुआ । उसने चारों दिशाओं में घूम-घूम कर प्रपन्न किया मगर कोई भी प्रपन्न कारगर नहीं हुआ । इसके विपरीत सुरार्ज के आत्मबल से पराजित होकर अर्जुन का शरीर में प्रविष्ट हुआ बेबठा निकल कर भाग गया । बेबठा के निकलते ही अर्जुन बकाम स भरती पर आ गिरा ।

जो लोग सुरार्ज सेठ के लिए पयासाप कर रहे थे कि अब उनके जीवन का अन्त आ पहुँचा है उनके विस्मय की सीमा न रही । यह अद्भुत अमरकार देख कर लोग चित्र-विविध से रह गये । उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं होता था । वे भ्रम में पड़ गये कि हम आ देख रहे हैं सो यह भ्रम है वा सत्य है ? अचानक क्या से क्या हो गया ? मगर आदिर सत्य तो सत्य ही है !

सुदर्शन सेठ ने अर्जुन को धरती पर गिरते देखा तो वह समझ गये कि मेरे ऊपर आया हुआ विघ्न टल गया है । उन्होंने विधि पूर्वक सागारी सथारा पारा और अर्जुन पर प्रेम का हाथ फेरा । थोड़ी देर बाद अर्जुन होश में आया । उसने सुदर्शन से पूछा—आप कौन हैं ? उत्तर मिला—मैं सुदर्शन सेठ हूँ । भगवान् महावीर का भक्त हूँ । भगवान् का दर्शन करने जा रहा था कि रास्ते में तुम मिल गये । कहो, चित्त स्वस्थ तो है ? तवियत ठीक है ?

अर्जुन ने कहा—सब ठीक है । मैं भी आपके साथ भगवान् महावीर स्वामी के दर्शन करना चाहता हूँ । कोई बाधा तो नहीं है ?

सुदर्शन—श्रमण भगवान् पतितपावन हैं । वे जगत् के समस्त जीवों के बन्धु हैं, हितैषी हैं । तीन लोक के नाथ हैं । वे ऊँच-नीच राजा-रक, नर-नारी यहाँ तक कि मनुष्यों और कीट-पतंगों को भी समभाव से देखने वाले महाप्रभु हैं । उनका द्वार किसी के लिए बन्द नहीं है, बल्कि उनके द्वार ही नहीं है । भगवान् के चरणों में सब को समान रूप से स्थान मिलता है । वीतराग प्रभु की छत्रछाया में आकर पापी से पापी पुरुष भी निष्पाप हो जाता है, निस्ताप हो जाता है और परम शान्ति के सुख का आस्वादन करता है । भगवान् का उपदेश किसी खास जाति के लिए नहीं है, किसी एक वर्ग के लिए नहीं है । जैसे सूर्य के प्रकाश से जीव मात्र लाभ उठा सकता है, उसी प्रकार भगवान् के उपदेश को प्राणी मात्र ग्रहण कर सकता है, उनके पथ पर चल सकता है । अतएव हे अर्जुन, किसी प्रकार की शका न रखते हुए प्रभु की

शरय में चलो । प्रभु की शरय महा मंगल रूप है ।

इस प्रकार आस्थासन देकर सेठ सुवर्ण भोजन माछी को साथ ले प्रभु के समीप पहुँचे, भगवान् को वन्दना-भक्तिकार करके बैठ गये । भगवान् ने उन्हें मानव-जीवन की कथित्प्रवृत्ति समझाई ।

इसग यह भास विम्बुण, पोय विहुर संवमावए ।

एवं मनुभास जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

—श्री उत्तराध्यायन, अ १०

मनुष्य की जिंदगी दूध की नोक पर लटकते हुए भोस के बंद की तरह किसी भी कथ समान हो जाने वाली है । उसके कर्म होने में देर नहीं लगती । इसलिये हे भण्डो ! तुम्हें जो उत्तम व्यवहार मिला है, उसका सदुपयोग कर लो । व्यवहार का सदुपयोग किसमें है वह एक विचारणीय प्रश्न है । बहुत-से लोग अधिक से अधिक विषयभोग भोगने में जीवन की धार्मिकता समझते हैं, बहुत से ऐसे भी हैं जो जन-वैमर्श को ही अपने जीवन का आराध्य समझते हैं । मगर वह दोनों प्रकार के लोग भ्रम में पड़े हुए हैं । ऐसे लोगों को यह भान ही नहीं है कि उन्हें परलोक में जाना होगा । जो पूर्वोपाहित पुरुष की इस जन्म में भोगते हैं मगर आगामी जन्म के लिए पुण्य का संचय नहीं करते, उनका अविध्य धोर अंधकारमय है । वे परमेश में जाकर किस प्रकार सुख-साठा पाएँगे ? ऐसे लोग शानी नहीं अच्छाभी हैं । उनका अज्ञान उन्हें भवानक दृष्टि में स कायगा । शानी वह है जो पूर्वसंविष्ट पुरुष को भोगता हुआ भी नवीन पुरुष का संचय

करता है और अपनी आत्मा के विकारों को दूर करने का प्रयत्न करता है । जो सिर्फ वर्तमान में ही भूले हैं और भविष्य की उपेक्षा करते हैं, वे भविष्य में सुखी नहीं हो सकते । अतएव विवेकशील पुरुषों को वर्तमान के साथ भविष्य का भी ध्यान रखना चाहिए । याद रखो, जैसा पहले किया था वैसा अब पाया है और जैसा अब करोगे वैसा भविष्य में पाओगे ।

‘पूर्वजन्म का किया मिला अब करो वही फिर पाओगे ।
अब गफलत के बीच रहे तो मित्र बहुत पछताओगे ॥

पूर्वजन्म में जो किया था वह मिल गया है । अब जो करोगे उसका फल आगे मिलेगा । जो इस बात को ध्यान में नहीं रखेगा, वह क्या पाएगा ? किये बिना क्या मिलने वाला है ? फिर तो पश्चात्ताप ही हाथ आने वाला है ।

एक आदमी गौना (आणा) लेने गया । रास्ते में खाने के लिए उसने पूडियाँ साथ में ले लीं । चलता-चलता वह ससुराल के गाँव के बाहर पहुँचा । थकावट मिटाने के लिए किसी पेड़ की छाया में बैठ गया । वह सोचने लगा अब ससुराल आ गया है । पहुँचते ही दाल का गरम-गरम हलुवा मिलेगा । साथ में बँधी हुई इन पूडियों का क्या करूँगा ? अब यह बेकार हैं । ऐसा सोच कर उसने अपने पास की सारी पूडियाँ फेंक दीं । फिर वह ससुराल वालों की दुकान पर पहुँचा । देखा, दुकान बंद है । समझा, सब लोग घर पर होंगे । अतएव वह घर आया तो घर भी बंद था । वहाँ भी ताला लगा हुआ था । पड़ोस वालों से पूछताछ करने पर पता चला कि ससुराल के सभी लोग, तीन दिन हुए, बाहर

गले हैं । बस बड़ी विराहा हुई । आसिर मूसा रह कर अपने पर छोटा ।

जो मनुष्य पूर्वोपाश्रित पुरुष को भोगोपभोग भोग-भोग आदि करके नष्ट कर देते हैं और आगे का विचार नहीं करते तनकी दशा वैसी ही होती है, वैसी इस पाहने की हुई । विवर्धमान व्यक्ति अपनी पुरुष की बमाई का भागते समय मविष्य का भी विचार करता है । वह पुरुष कर्म करके त्वीन पूंजी भी इकट्ठी करता है । मगर जो अविवक्षी है, वह वर्तमान में ही मस्त रहता है । बस आगामी भव का कयाल नहीं आता । वह सोचता है कि वर्तमान में जो सुख मिल हैं, उन्हें भोग लें । कौन जाने परलोक है भी या नहीं ? होगा तो आगे की आगे देखी जायगी । मविष्य के सुख के लिए अभी के सुख का परित्याग क्यों करें । मगर इस प्रकार सोचते-सोचते अब जीवन का अन्तिम समय आ उपस्थित होता है और परलोक के लिए प्रयाण करने का अवसर आता है तो तनकी आत्मा कोप कटती है । राम-राम में पहराई होती है । वह चिन्ता विषाद और पश्चात्ताप से बसने लगता है । मानसिक बेवसाओं का शिकार हो जाता है । चिन्ता के कारण पल भर भी शान्ति नहीं पाता । वह रोता कलपता और भीखता चिन्ताता हुआ अपने प्राणों का परित्याग करता है । इस तरह धर्म-हीन जीवन व्यतीत करके मृत्यु को प्राप्त होकर वह मरक का अतिथि बनता है ।

जीव-दया पाळी नहीं रे पाळी नहीं छह कय ।

मात्या वाला मानवी इतो धक्का नरक में लाय ॥

जिसने जीवों पर दया नहीं की, परोपकार नहीं किया, ईश्वर का भजन नहीं किया, अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास नहीं किया, शील नहीं पाला, दान भी नहीं दिया और व्यर्थ समय गवाँ दिया, वह जब इस पर्याय को त्याग कर जायगा तो सूने घर के पाहुने की तरह दुःख पायेगा । अगर साथ में पुण्य धर्म ले जायगा तो सुख पायेगा । मगर यह सुख किसे मिलेगा ?

जीवदया पाली सही रे पाली है छह काय ।

बसता घर को पाहुनो वो तो मीठा भोजन पाय ॥

भाइयो ! जो ज्ञानी पुरुष जीवों पर दया करते हैं और पट्काया के जीवों की रक्षा करते हैं, वे बसते घर के मेहमान की तरह मधुर फल पाते हैं । कल्पना कीजिए, कोई लाखपति घर का मनुष्य ससुराल जाता है । साथ में पाँच आदमी भी हैं । और खाने-पीने का सामान भी है । बादाम की चक्कियाँ हैं, गुलाब-जामुन हैं, रसगुल्ले हैं, कचौड़ियाँ और पूडियाँ हैं । सब लोग गाँव के बाहर पहुँचते हैं । हाथ मुँह धोकर जीमने बैठते हैं । इतने में ससुराल वालों को मालूम होता है । साले, ससुर और दूसरे लोग मोटरें ले-लेकर उनके स्वागत के लिये आते हैं और कहते हैं—पधारिये, पधारिये आपका स्वागत है ।

ससुराल वाले अपने जामाता को बढिया सजे हुए मकान में उतारते हैं जिसमें टेबुल, कुर्सियाँ आदि उत्तम फर्नीचर यथा-स्थान रक्खा है । बिजली के पंखे चल रहे हैं । उधर जीमने के लिए बादाम का सीरा और दूसरी मिठाइयाँ तैयार हो रही हैं । समय पर आनन्द के साथ भोजन होता है ।

क्यों मारें ! यह क्या किस कारण मित्रा है ? जिसने बीवों की क्या पात्नी, दाम दिया, शीघ्र पात्रा उपस्था की, जो दुश्मनों का दुःख दूर करने में उत्तर दृष्टा अनाथों का दुःख मित्रापा उन्हें पूजा आदि देकर व्यवसाय-धर्म में लगाया जिसने अपने देश और समाज को कायदा पहुँचाया और परोपकार किया, वह यहाँ से शरीर त्याग कर गये तो वहाँ स्वर्ग में भी पाहुने की तरह हैं । उन्हें वहाँ भी मधुर फल की प्राप्ति हुई । इस प्रकार जो इस जीवन में सुकृत करता है वह बसते पर के पाहुने की तरह परमेश में सुख का भाजन बनता है । और जो इस मग में सुकृत नहीं करता वह सूने पर के पाहुने की तरह दुःख छटाता है ।

भिगड़ी ओपड़ी के लोग कहते हैं—आगे की जिसने देखी ? शीत बेल कर आया है कि परकोक है या नहीं ? पर धर्म मारें ! जिसने देखा है कहीं तो परकोक बतलाया है । ऐसी स्थिति में धर्मस्थान नहीं करोगे तो पड़ताओगे । हे मित्र ! तुम्हें फिर पञ्चाशप करना पड़ेगा । सुन पर का पाहुना बकना पड़ेगा और अपना सा मुँह लेकर लौटना पड़ेगा । अरे दूर क्यों जाते हो ? यहीं बेल को नु और पूर्व जन्म में पुण्य उपायन करके मर्यादाये हैं जो दासी हाथ आये हैं, पहनने के लिये छोटी तक नमीच नहीं होती । व अपनी लज्जा हँकने को बीबड़ा भी मर्यादाये ।

क्यों मारें ! क्या लाये ? पोंड़ी लाकी हाथ दिखात हुए आ गये । औरत कहती है—पापरा पट गया है । मर कहता है—पास में कूड़ी कीड़ी भी मरों है । क्या कदं कहा स हाऊँ ? यह

सुनकर औरत को क्रोध आ जाता है । वह जली-कटी बातें सुनाती है । कहती है—ऐसा या तो कुँवारे ही क्यों नहीं रह गये ? शादी करने का शौक क्यों चर्राया था ? जानते नहीं थे कि औरत आएगी तो उसे घाघरा भी बनवाना पड़ेगा । वह नगी नहीं रहेगी । घाघरा भी नहीं धनवा सकते ये तो अपना अकेले का ही पेट पाल लेते । औरत का यह उत्तर सुनकर कई मर्दों के कलेजे में आग लग जाती है । कई, जो समझदार और हज्जतदार होते हैं, रोने लगते हैं । कई जगह ऐसा हाल होता है । इसका असली और भीतरी कारण कभी सोचा है ?

हे मालदार लोगो ! तुम अपने धन के घमड में बावले होकर मत फिरो । अगर तुम्हें अगले जन्म में पूर्वोक्त परिस्थिति से बचना है और इस जीवन को भी सुख-शान्ति के साथ व्यतीत करना है तो जल्दी सावधान हो जाओ । गरीबों की सुध लो । अगर तुम अपने इस कर्त्तव्य से विमुख होते हो तो याद रखो परलोक में तुम्हारी दुर्दशा तो होगी ही, इस लोक में भी शान्ति नहीं पा सकोगे । आज की दुनिया में बहुभाग मनुष्य गरीब हैं और थोड़े-से पू जीपति हैं । गरीबों में एक नयी चेतना का विकास हो रहा है । उनके हृदयों में भयानक आग सुलग रही है । उस आग में से ऐसी ज्वालाएँ फूटने वाली हैं, जिनमें तुम्हारी शान्ति भस्म हो जायगी । उस समय कोई भी शक्ति तुम्हारी सहायता नहीं करेगी । मैं तुम्हें दुराशीप नहीं दे रहा हूँ, आने वाले भविष्य का चित्र तुम्हारे सामने खींच रहा हूँ । इस प्रयोजन से कि आज तुम चाहो तो उस भयानक स्थिति से अपना बचाव कर सकते हो । बचाव का एक मात्र उपाय यही

है कि स्थाप में बंधे मत बना । गरीबों को और अधिक गरीब बना कर अपनी अमीरी बढ़ाने के तरीके ढाँढ़ दो । ऐसी परिस्थिति पैदा करो जिससे गरीबों का असंतोष दूर हो सके, वे शांति और संतोष के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकें । मत समझो कि हमारा पट मरा है तो तुलिया का पेट मरा है । तुम्हें असली स्थिति पर विचार करो । हृदय में दया की भावना रखो । गरीबों की तुलिया में जाकर देखो, उन्हें छाती से लगाओ और उनके अमाशों को दूर करो । उमा करने में गरीबों का ही नहीं तुम्हारा भी हित है । मैं कहता हूँ कि ऐसा करने में ही तुम्हारा हित है । गरीबों से शिक्षा ग्रहण करो । ऐसा कोई काम न करो जिससे तुम्हें भी आगे कुछ छटाना पड़े ।

खयाल आता है सुम्ह दिसवान तेरी बात का,
किन्तु तुम्हको है नहीं आगे अधेरी रात का ।
जीवन तो कम बल जायगा दरयाप है बरसात का,
दो बेर काई न खाएगा इकर म तेरे हाथ का ॥

जब अछान्ती जीव अपने अहित के कार्यों में मग्न होते हैं और बस्याख के पक्ष से विमुख होते हैं तो छान्ती पुरुषों का स्वभाव से ही स्वामय हृदय पिपकते लगता है । वे उन्हें समझाते हैं—सुम्ह बड़ा तरस आता है—कि तू कुछ नहीं सोचता है । आगे अन्धकार है और तू आँखें मीचकर बसता जा रहा है । तुम्हें खयाल ही नहीं है कि तू लोकर जा जायगा । तू अपनी जबाबियों को भूल म मूँम रहा है । तुम्हें नहीं मासूम कि यह जबाबों की बरसात है, जिसका बेग बहुत दिनों तक कायम नहीं रहने वाला है ।

यह सोडा वाटर के उफान के समान है । देखते ही देखते बीत जाती है । अरे, जवानी क्या, सारे जीवन का ही यही हाल है ।

भगवान् ने अपने उपदेश में आत्मा का स्वरूप और जीवन की अनित्यता पर प्रकाश डाला होगा । आत्मकल्याण के उपायों का दिग्दर्शन कराया होगा । सुदर्शन सेठ और अर्जुन माली भगवान् का प्रभावशाली प्रवचन सुनकर गद्गद हो गये । प्रवचन समाप्त हुआ तो सुदर्शन भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके लौट गये । अर्जुन माली ने हाथ जोड़ कर कहा-दीनानाथ । मैं अत्यन्त पतित हूँ । मैंने अपने मस्तक पर पापों का पहाड़ रख छोड़ा है । प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं । आपसे क्या छिपा है ? मेरी जिंदगी कितनी कलुपित है, कितनी पापमयी है । घोर से घोर पाप करके मैं ने अपने जीवन को वर्वाद कर लिया है । आज मैं सारे ससार की घोर घृणा का पात्र हूँ । मैं स्वयं अपनी ही नजरों में घृणित बन गया हूँ । इतने बड़े ससार में मेरे लिए कहीं आश्रय नहीं है । कौन मुझे सहारा दे सकता है ? मेरे पिछले जीवन को याद करके लोग मुझे दुत्कारेंगे और ठुकराएंगे । प्रभो ! दुत्कार, तिरस्कार, घृणा और अपमान के सिवाय और क्या पाने की मैं आशा कर सकता हूँ ? मैं इन्हीं का पात्र हूँ । मैं सत्कार और सन्मान नहीं चाहता, प्रतिष्ठा नहीं चाहता । परन्तु अपने पापों का प्रचालन करना चाहता हूँ । हे पतित पावन ! इस विश्व में आपके अतिरिक्त और कौन है जो मुझे गले लगा सके ? आपके सिवाय मेरे लिए कोई शरण नहीं है, त्राण नहीं है । हे धर्म धुरन्वर ! मैं आपकी शरण चाहता हूँ । आपके चरणों की नौका का आश्रय लेकर ससार-सागर को पार करना चाहता हूँ ।

प्रभो ! प्रसार करो । अगर मेरी आत्मा का उद्धार हो सकता हो तो दया करो । मुझे मंगल-मार्ग पर ले जाओ । मुझे आत्मा का कानुम्य जो डालन का उपाय बताओ । मुझे अपने शिष्य क रूप में स्वीकार करो । मैं मुक्ति बनता चाहता हूँ ।

महामहिम प्रभु महावीर ने धीरे, गंभीर स्वर में कक्षा-आहु प्पम् । कर्मों की गति अमोघी है । उनके प्रभाव से आत्मा कष्ट-पित अति कष्टपित बन जाता है । फिर भी आत्मा अपने मूल स्वरूप में तो दिव्य ज्योति का ही पिण्ड है । उसका स्वरूप प्रत्येक दशा में स्थिर रहता है जब कर्मों की प्रकृति दृष्ट जाती है तो आत्मा का स्वरूप उमर जाता है । ज्यों ज्यों कर्मों का सेप चीख होता जाता है, त्यों त्यों आत्मा का सहज प्रकार बढ़ता जाता जाता है । अतएव प्रत्येक आत्मा में परिपूर्ण विकास की सम्भावनाएँ बिपी हुई हैं । तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए ।

अर्जुन ! अपने पापों का विचार तो करना चाहिए, अगर आत्मा के निष्कर्षक स्वरूप को भी नहीं मूकता चाहिए । आत्मा की अमन्त शक्ति पर भी विश्वास रखना चाहिए । मैं अपने भीतर जो शक्तियाँ पाता हूँ वही सब तुम्हारे भीतर भी दया रहा हूँ । मुझमें और तुममें कोई भौतिक अंतर नहीं है । अंतर है कला का । मैं अपने स्वरूप का विकास कर लिया है और तुम्हें अब करना है । इसलिए हूँ बस ! निराश न होओ । पापियों और पण्डितों के क्षिण धर्म आचार है । धर्म के सहारे ही वे जैसे उछलें हैं । धर्म की स्मृतमय गोद में सब के क्षिण स्थान है । तुम अपना कल्याण करना चाहते हो जीवन का पवित्र बनाया चाहते हो और अपने पापों के पापों का प्रयाजन करना चाहते हो तो आओ

मैं तुम्हें पथ-प्रदर्शन करूँगा । हे देवों के प्यारे । धर्म-कार्य में बिना-
म्व न करो ।

भगवान् के मुखारविन्द के फूल से कौमल वचनों को सुन
कर अर्जुन को कितना आश्वासन मिला होगा ! उसमें कैसी
आत्मश्रद्धा जगी होगी ।

अर्जुन उसी समय साधु-वेष धारण करके नम्र भाव से
भगवान् के सामने खड़ा हो गया । उसने फिर प्रार्थना की—प्रभो !
मुझे अपने चरणों में ग्रहण कीजिए, मेरा उद्धार कीजिए । मैं
आज कृतार्थ हुआ । अनुग्रह कीजिए ।

भगवान् ने अर्जुन माली को मुनि-दीक्षा दी । दीक्षा लेने के
बाद अर्जुन मुनि ने भगवान् से निवेदन किया—भते ! मैंने अपने
पिछले जीवन में बहुत पाप किये हैं । पापों का वह भारी बोझ
मेरे लिए असह्य हो रहा है । मैं उसे शीघ्र ही हल्का करना चाहता
हूँ । तप ही उसका उपाय है । अतः मैं जीवन पर्यन्त बेले-बेले की
तपस्या करना चाहता हूँ ।

भगवान् ने तपस्या करने की आज्ञा दे दी । तपस्या पूरी
होने पर अर्जुन मुनि उसी नगर में गोचरी के लिए जाते हैं । मगर
उन पर नजर पड़ते ही लोगों का घैर भाव उमड़ पड़ता है । उनमें
बदला लेने की भावना उत्पन्न होती है । कोई पत्थर मारता है,
कोई लाठी लगाता है, कोई गालियाँ देता है । कोई आहार देता
है और कोई नहीं देता । कोई कहता है इसने मेरी माँ को मार
ढाला है, कोई कहता है इसने मेरे घाप का वध किया है, कोई
कहता है इसने मेरे पुत्र के प्राण लिये हैं, कोई कहता है यह मेरे

माई का काहू है । लोग तरह तरह से मुनि को सताते हैं । मगर अर्जुन मुनि तो प्रायश्चित्त करने को छुट्टी ही थे । उन्हें किसी काम और समता धारण करनी कि नूँ तक नहीं करते । इतना ही नहीं वे अपने मन में खेरा मात्र भी तुमबाँ नहीं कल्पना होन देते । जगता यही सोचते हैं ईन बेचारों का क्या अपराध है ? अपराध तो मेरा है । मैंने इनके निर्दोष आत्मीय बनों का भव किया है और इन लोगों को संताप पहुँचाया है । यह चारों तो अपने कुटुम्बी के माथों के बरसे मेरे भासते सकते हैं, मगर इतनी सज्जनता है कि वह दुर्बेचन यह कर अधवा जोड़ी-सी मार-पीट करके ही मुझे कोढ़ देते हैं ।

इस प्रकार तपोमय और कामय जीवन व्यतीत करते हुए अर्जुन मुनि को ब्रह्म साह हो गए । तब एक दिन उन्हें केवल ज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हो गई । वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये । मगधान् महावीर की शरण प्रार्थ्य करके उन्होंने मानव-जीवन की सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त की ।

माइयो ! सुपरीन सेठ की क्या सुबकर आपने क्या कठीका निकाला ? अर्जुन माझी के इत्तान्त से आपने कौन सी शिक्षा प्रार्थ की ? आपके मनोरंजन के लिए मैंने यह कथानक बरी सुनाया है । इसमें स सार लेकर आपको अपने जीवन की सुधारना है । आज स्तुति में कहा गया था कि जो मध्य ज्ञानी मगधान का आनन्द लेते हैं उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं सताता । स्तुति में जो गाँठ बड़ी गई है, गरिष्ठ से बड़ी का समर्थन किया गया है । उस समय राजपूत नगर से वह से बड़ा भव अर्जुन माझी का ही था । मगर मगधान् के मछ सुपरीन सेठ

उस भय से तनिक भी भयभीत नहीं हुए । उन्होंने भगवान् के नाम का स्मरण किया तो सारा भय दूर हो गया । विशेषता तो यह है कि भगवान् के स्मरण से न केवल सुदर्शन का ही, वरन् सभी लोगों का भय जाता रहा । सर्वत्र निर्भयता और शान्ति का वातावरण फैल गया । सचमुच भगवान् के नाम की महिमा अपरिमित है । उसमें अनन्त सामर्थ्य है । भगवान् के नाम से सब सकट सहज ही टल जाते हैं । समस्त विघ्न समूल नष्ट हो जाते हैं ।

कई लोग मन में सोचते होंगे कि हम भगवान् का नाम रटते रहते हैं, फिर भी हमारे सकट क्यों नहीं टलते ? उन्हें समझना चाहिए कि भगवान् के नाम-स्मरण में तो अपूर्व शक्ति है, मगर फल की प्राप्ति तो उसी को होती है जिसके अन्तःकरण में दृढ़ विश्वास हो । मन ढीला है, विश्वास नहीं है और भय से हृदय काँप रहा है और सिर्फ जीभ भगवान् का नाम बोल रही है, तो काम नहीं चल सकता । बगुला भक्ति से दूसरों को ठगा जा सकता है, आत्मा को और परमात्मा को नहीं ठगा जा सकता । अकसर लोग दिखावटी भक्ति करते हैं, मगर उस नकली भक्ति से नकली ही फल मिलेगा वास्तविक फल कैसे मिल सकता है ?

एक आदमी सौ रुपया नौली में बाध कर दूसरे गाँव को रवाना हुआ । रास्ते में चार ठग महात्माओं का भेष बनाकर बैठ गये । जब वह आदमी उनके पास से निकला तो रुपयों की खन-खनाहट हुई । ठगों में से एक ने कहा—‘दामोदरम्, दामोदरम्’ । [दामोदर का अर्थ श्री कृष्ण है और व्यंग में रुपया अर्थ भी है ।] दूसरा ठग बोला—‘वृन्दावन, वृन्दावन’ । तात्पर्य यह था कि जरा

सुनसाम वन में चकते थे। तीसरे ने कहा—‘कृष्ण कृष्ण’। फिर चौथा बोला—‘हर हर’।

चारों ओरों के मुख से यह चारों सुनकर वह आदमी तबके पास गया। चौथे के सामने जाकर बसने नौली कमर से स्नेह कर रहा था। बड़बड़ करके वह बोला—मेरी मछि है, कृपा करके इसे स्वीकार कीजिए। मगर मेरी पत्नी की मछि कं मुझाबिजे मेरी मछि तुम्ह है। वह आपकी मछि देखेगी तो लाखों का खेवर आपके घरणों पर मिटाकर कर दंगी।

उस यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—ऐसी मछि पराबया नारी को मैं बबरन वर्नन दूंगा। तुम अपनी नौली समाज को। मुझे इसका क्या करमा है ?

राहगीर ने हाथ जोड़ कर कहा—मैं तो पुरख कर चुका हूँ। अब इस मछि से सक्ता। हों आपकी आम्ना से मैं इसे अपने पास रख लेता हूँ मगर है वह आपकी ही।

राहगीर ने नौली अपने पास रख ली। वह चारों को साज लेकर अपने घर लौटा। श्री ने उन्हें देखा तो बड़बड़ किया और अपना सारा खेवर जोड़ कर मेट कर दिया। इसके बाद बर-माझिड ने कहा—महाराज ! वही प्रसाद पात्रों की कृपा कीजिए। जब महाराजों ने कछरी माथेवा स्वीकार कर ली तो उन्हें वस्त्रों से ऊपर के मंजिल पर बढ़ा दिए और कहा—मैं प्रसाद लेकर अभी जाता हूँ। इतना कह कर और अपनी श्री के कान में धीम-से कोई बात कह कर वह बाहर चला गया। उसके जाते ही श्री ने

नसैनी हटा कर अलग कर दी । ठगों को खयाल ही न हुआ कि कुछ गोलमाल हो रहा है ।

घर-मालिक थोड़ी देर बाद ही पुलिस को साथ लेकर आ पहुँचा और बोला-बाबाजी ! सावधान !

बाबाजी ने पुलिस को देखा तो चेहरे का रंग उड गया ।
हैं वच्चा, हैं वच्चा, कह कर दीनता दिखलाने लगे । पुलिस ने हिरा-सत में ले लिया । तलाशी ली तो सब के पास छुरे निकले । पुलिस ने खूब पिटाई की और अन्त में उन्हें कैदखाने की हवा खानी पड़ी ।

कहने का प्रयोजन यह है कि नकली महात्मापन या दिखा-वटी भक्ति से काम नहीं चलता । नकली चीज असली चीज का काम नहीं दे सकती । सुदर्शन सेठ के मन में दृढ़ और सच्ची श्रद्धा थी, इसी कारण अर्जुन माली उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका बल्कि वह स्वयं सुधर गया ।

जम्बूकुमार की कथा:—

जम्बूकुमार के हृदय में भी सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हुई थी । उनके चित्त पर वैराग्य का पक्का रंग चढ़ा था । जब प्रभव चोर उनके पास पहुँचा और स्तम्भित करने की विद्या सिखलाने का आग्रह करने लगा तो वह बोले-प्रभव ! मैं ने ऐसी कोई विद्या नहीं सीखी है । सीखने की कभी इच्छा भी नहीं की है । विद्या, मन्त्र या जादू-टोने से आत्मा का वास्तविक कल्याण नहीं होता । यह सब संसार में भटकाने वाली चीजें हैं । अतएव इनकी तरफ मेरी कोई रुचि

नहीं है। मैं मैं ऐसी बिद्या सीखना चाहता हूँ और मैं जानता ही हूँ। मनुष्य सब भ्रममोक्त है। उसे भ्रममात्र रक्त को हुआ गैराना उचित नहीं है। यह जन्म पाकर कोई उत्तम कार्य करना चाहिए जिससे वह-कोई भीर परकोई दोनों का सुधार हो।

प्रमद ! परोक्ष वस्तु में भ्रम होना सहन किया जा सकता है, मगर आँखा दिखाई देने वाली वस्तु को भी छुट्टा समझना कहीं तक उचित है ? तुम हम और सभी प्रत्यक्ष देखते हैं कि कोई भी सम्पत्ति पर-भ्रम में साध नहीं आती। सिर्फ पाप और पुण्य ही साम आता है। फिर हम और सम्पत्ति के द्विप पापों का क्या र्जन करना क्या बुद्धिमत्ता है ? नहीं यह अभिचेक है, मूर्खता है।

एक आशमी नीच में सो रहा है। वह राज्य देखता है—मैं ब्रह्म-पति बन गया हूँ। वह बसन्ती प्रसन्नता का पार नहीं रहता। वह हाथियों और घोड़ों की पीठ काही देखता है। अपने आपको राजा समझता है। मगर जरा-सी आदृष्ट पाकर बसन्ती नीच भंग हो जाती है और तब देखता है कि सामने कुछ भी नहीं है। यही हम सब लोगों के जीवन का है। जब तक साँस चल रही है, इन्द्र में बहकन हो रही है तब तक आशमी समझता है कि मैं राजा हूँ, महाराजा हूँ, सठ हूँ सम्पत्ति का स्वामी हूँ। पर ज्यों ही साँस बन्नी इन्द्र की बहकन बंद हुई कि सभी कुछ पतारह हो जाता है। ऐसी उणिव सम्पत्ति और विमूर्ति के द्विप आत्मा के कल्याण में बाधा डालता क्या उचित है ?

प्रमद ! मैं मैं आत्मा के कल्याण के पथ पर चलने का निश्चय किया है। कष्ट मैं साधु बनने चाहता हूँ। फिर मैं दुम्हारी

ससार में भटकाने वाली विद्याएँ सीख कर क्या करूँगा ? मैं तो तुमसे भी कहता हूँ भाई, कि अपनी वृत्ति को चटल डालो । तुम चतुर हो, निर्भीक हो, साहसी हो । मगर तुम्हारे यह सब गुण गलत रास्ते पर हैं । तुम इनका दुरुपयोग कर रहे हो । तुम्हारे भीतर जो शक्ति विद्यमान है, उसका अगर सदुपयोग करो तो महान् बन सकते हो । जगत् आज तुम्हारे नाम से घृणा करता है । यदि तुम सही रास्ते पर आ जाओ तो जगत् सन्मान करेगा । क्यों चक्कर में पड़े हो ? कब तक सोते रहोगे ? जागो और भीतर के नेत्रों से सचाई को देखो ।

प्रभव विचारों में डूबने-उतराने लगा । उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कुमार कल साधु बनेंगे । वह सोचने लगा—अभी-अभी इनका विवाह हुआ है, एक से एक सुन्दरी स्त्रियाँ इन्हें मिली हैं और इतना विराट् वैभव प्राप्त हुआ है, फिर भी कहते हैं कि मैं कल साधु बनूँगा । एक मैं हूँ जो धन के लिए मारा-मारा फिरता हूँ । नीति-अनीति, पाप-पुण्य किसी की परवाह नहीं करता । आखिर प्रभव ने कहा—इतनी ऋद्धि पाकर भी आप साधु बन रहे हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है ।

जम्बूकुमार धोले—तुम यह लक्ष्मी देखकर ललचा रहे हो, मगर यह नहीं सोचते कि लक्ष्मी से कितना सुख मिलता है और कितना दुःख प्राप्त होता है ? लक्ष्मी का उपार्जन करने में कष्ट, उपार्जन करके उसकी रक्षा करने में कष्ट और रक्षा करने पर भी उसके चले जाने में कष्ट । इस तरह लक्ष्मी आदि, अन्त और मध्य में कष्ट ही कष्ट देने वाली है । उससे अत्यल्प सुख की प्राप्ति

होती थी है तो अमरुत दुख भी प्राप्त होता है। इस संबंध में मनुष्य का स्वादरस दिया जाता है।

एक काफ़िला दूसरे देश जाने को रवाना हुआ। जंगल का सामना था, अतः काफ़िले के सब लोग साव-साव ही चलते थे। रास्ते में एक बग़ल डेरा डाला गया। इनमें से एक आदमी सीता चाहता था, मगर कोसलाइय के कारण उसे वहाँ नींद नहीं आई। वह कुछ दूर जाकर सो गया। बका हुआ या-गहरी नींद आ गई। सुबह काफ़िला अपनी रवाना हो गया और वह आदमी सीता ही रह गया। जब उसकी नींद खुली तो काफ़िला काफी दूर निकल चुका था। वह पड़ता-पड़ा और बबराता हुआ पीछे पीछे भागा। मगर उसे एक हाथी मिल गया और उस हाथी ने उसका पीछा किया। उसे पास ही बक का एक पेड़ दिखाई दिया। अपनी जान बचाने के लिए वह उसी पेड़ पर चढ़ गया। वह एक टहनी को पकड़ कर लटक गया, क्योंकि नीचे कुम्हा था और हाथी की सूँढ़ वहाँ तक पहुँचती नहीं थी। उसने ऊँचे की तरफ़ देखा तो उसके भीतर एक अन्नगर मुँह फाड़े बैठा था। ऊपर से वो बूँद उस टहनी को छूट रहे थे। हाथी पेड़ को बसाबसे में लुट गया। पेड़ में मनु-मस्किनों का एक बच्चा था। पेड़ के हिलने से मस्किनों की भी और उस आदमी को काटने लगी।

इस प्रकार वह आदमी चारों ओर से संकट में पड़ा हुआ था। मगर इतने दुर्गमों के बीच उसे एक मुक़्त भी था। मुक़्त यह कि पेड़ के हिलने से जलते से रह-रह कर रज्ज के बूँद टपक रहे थे और वह उन बूँदों को अपने मुँह में ले-लेकर खाट रहा था। वह मनुष्य इस मन्त्र से मुक्त के लिए प्राणपातक संकटा की

परवाह नहीं कर रहा था । हाथी पेड़ को उखाड़ने में लगा है, कदाचित् वह न भी उखाड़ सके तो चूहे उस ढाल को कुतर रहे हैं । पेड़ गिरा या ढाली टूटी तो उसका कुँ में गिरना अनिवार्य है और कुँ में अजगर मुह फाड़े तैयार बैठा है । वह जितनी देर नहीं गिरा है उतनी देर भी मधु-मक्खियाँ उसे ढँस ही रही हैं । फिर भी उसे इन सब की चिन्ता नहीं है ।

संयोग से उसी समय एक विद्याधर उधर से निकला । विद्याधर की पत्नी उसके साथ थी । दोनों विमान में बैठे उड़ रहे थे । विद्याधर की पत्नी ने सब ओर से घोर मुसीबतों में फँसे हुए उस आदमी को देख कर अपने पति से कहा—यह आदमी भयानक सकटों में फँसा है । इसे बचाना चाहिए । नाथ ! मनुष्य ही मनुष्य की रक्षा नहीं करेगा तो उसकी मनुष्यता कैसे टिकेगी ?

होकर मनुष्य मनुष्य की करते दया अगर नहीं ।

फिर कहा रही मनुष्यता कहती है दुनिया सारी ॥

जो मनुष्य मुसीबत में पड़े मनुष्य की रक्षा नहीं करता वह वास्तव में मनुष्य नहीं है । मैंने रत्नलाम में अपनी आँखों से देखा था कि एक कुत्ते ने किसी पालतू हिरन को पकड़ लिया । कितने ही लोगों ने उसे लकड़ियों से मारा मगर कुत्ते ने उसे नहीं छोड़ा, नहीं छोड़ा । तब एक गाय आई । उसने अपनी पूंछ ऊँची करके कुत्ते और हिरन के बीच में सींग लगाए । ऐसा करने से दोनों अलग अलग हो गये ।

भाइयो ! जरा विचार करो कि जिसे आप पशु कहते हैं, उसमें भी प्राणियों की रक्षा करने की कितनी उग्र भावना है !

फिर मनुष्य में कैसी भावना होनी चाहिये ? मनुष्य में अधिक विवेक होता है और इसी कारण मनुष्य समान जीवपारियों में नीच समझा जाता है। जब वह सर्व मनुष्य प्राणी है तो उसका कर्तव्य भी सर्व भेद होना चाहिए। मनुष्य होकर भी जो अपने पुत्रिणह का उपयोग सिर्फ स्वार्थ के लिए करता है और दूसरों की विपत्ति के समय भी सहायता नहीं करता, सब पशुपक्षी तो वह पशुओं से भी गया-बीता है।

तो विद्याधर की पत्नी ने कहा-वतिसेव ! इस मनुष्य की रक्षा करो। विद्याधर ने भी उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझा। उसने सोचा-साधारण मनुष्यों में विमान बनाने का ज्ञान भी पाया जाता नहीं है। मुझे पुरख के योग से वह विद्या प्राप्त हुई है तो इसका सदुपयोग करना ही चाहिए। इस प्रकार, विचार कर विद्याधर अपना विमान उस आदमी के पास ले गया। उसने कहा-मार्ह, मया एक संकट तरे छनर मेंकरा रहे हैं। तू मेरे विमान में आ जा। सहज ही छुटकारा पा जायगा। मगर वह मनुष्य कहता है-धरा धरू, जाइए। राख का वह बूँद आ रहा है। उसे पाह धने दीजिए। विद्याधर ने कुछ देर प्रतीक्षा की। मगर वह फिर दूसर बूँद की प्रतीक्षा करने लगा। इस प्रकार वह विमान में नहीं आया। आकर विद्याधर चला गया। बोझी-सी धेर में जूहों ने बाह अड की। वह कुप में आ गिरा और अजगर उसे खा गया।

हे प्रमथ ! गुह महाराज ने कहा है कि मनुष्य का शरीर बूँद के समान है। काह स्त्री हाथी शरीर की गिराने मनु करने का उपयोग कर रहा है। रात और दिन स्त्री को नूरे जामु स्त्री

ढाली को निरन्तर काट रहे हैं। नीचे नरक-गति रूपी कुआ है और क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी अजगर है। कुटुम्ब-परिवार रूपी मक्खिया हैं। इन सब संकटों के बीच शब्द का धुँ चाटने के समान नगण्य-सा सासारिक सुख है। संसारी जीव उस अल्प सुख में भविष्य के दुःखों को भूला हुआ है। सद्गुरुरूपी विद्याधर जीव को नरक निगोद के दुःखों से उबारने के लिए धर्मरूपी विमान उपस्थित करते हैं। मगर विषय-सुखका लोभी ससारी प्राणी कहता है कि अभी जल्दी क्या है? थोड़ा-सा सुख और भोग लें, फिर धर्म का सेवन कर लेंगे। मगर इसी बीच आयु समाप्त हो जाती है और ससारी जीव नरक का मेहमान बनता है।

ससार में दुःख अनन्त हैं और सुख अत्यल्प है, यह बात शास्त्र में इस प्रकार कही है—

खणामित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा,

पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा ।

संसारमोक्खस्स विपक्खेभूयां,

खणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥

—उत्तराध्ययन, अ १४, गा, १३

भव्य जीवो ! काल के आधार पर तुलना की जाय तो प्रतीत होगा कि कामभोग क्षण भर सुख देने वाले हैं और चिर-काल पर्यन्त दुःख देने वाले हैं। कामभोगों से जो सुख प्राप्त होता है वह बहुत ही अल्प है और दुःख असीम है—बहुत अधिक है। इन काम भोगों में आसक्त होकर ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती मर कर सातवें

मरक में गया । यह विषय भोग संसार में भी हितकारी नहीं है और मोक्ष के अज्ञान-मूल में बाधक तो हैं ही । संसार में मिलने भी अनर्थ हैं, इन सब के मूल को मोक्ष काय तो प्रतीत होगा कि विषयभोग ही से सारे अनर्थ उत्पन्न होत हैं ।

बन्धुकुमार प्रमद से कहत हैं—दे प्रमद ! आशिर इया सोच कर इस संसार में अनुरक्त हो रहे हो ? प्रबल पापों का अपाजन करने के साथ अगर बोझी-सी मन-संपदा का भी अपाजन कर लोगे तो क्या तुम्हारा परलोक सुखर जायगा ? नहीं, तुम्हारा परमेश्वर परिपूर्ण बनता जा रहा है । उस मन-सम्पदा से तुम न इस लोक में सुख पाते हो और न परलोक में ही सुख पा सकोगे । इसलिए तुम इस प्रपञ्च से बाहर निकलो । यह मूर्खी भाषा है । मैं प्रातःकाल होते ही सब कुछ त्याग कर साधु बन रहा हूँ और तुम से भी नहीं कहता हूँ कि मनुष्यमन पाया है तो इसे सफ़ा बना लो ।

बन्धुकुमार का कथन सुनकर प्रमद ने कहा—कुमार ! मैं और हूँ और निर्द्वेषतापूर्वक कार्य भी किया करता हूँ । मगर वह सब परिस्थितियों का फल है ! जन्मेनि मुझे ऐसा करने के लिए बाध्य किया है । मेरे भीतर भी बड़का दुष्मा इरादा है और उसमें विवेक भी है, दया भी है । आपका करवेरा सही है, कष्टम है । मगर कष्ट ही विनाश दुष्मा है । इन आठों सुकुमारी दुष्मा रिशों को मोक्ष कर आपका साधु कर्मना मुझे अहित नहीं साध्य होता । आपके इस व्यवहार से माता पिता आदि कुटुम्बीजों का भी इरादा बिहीन हो जायगा । अतएव आप अपने संकल्प पर फिर विचार कीजिए ।

जम्बूकुमार बोले—भाई प्रभव । मैं इन्हें अचानक नहीं त्याग रहा हूँ । विवाह होने से पहले ही मैं ने अपने निश्चय की सूचना इन्हें दे दी थी । रह गई कुटुम्ब-परिवार की बात, सो जरा उदार हृदय से देखोगे तो पता चलेगा कि साधु अपने परिवार का त्याग नहीं करता वरन् वह जगत् के प्राणी मात्र को अपना परिवार बना लेता है । उसका स्नेह संकीर्ण सीमाओं को लाघ कर जगत् व्यापी बन जाता है । साधु किसी पर कम और किसी पर ज्यादा सद्भाव नहीं रखता—सब को समान सद्भाव प्रदान करता है । ससार के छुद्र नातों का कोई मूल्य नहीं है । वह तो घनते और विगड़ते रहते हैं । प्रत्येक जीव के साथ अनन्त-अनन्त वार ऐसे सवध कायम हो चुके हैं । यहा तक कि एक ही जन्म मे, एक ही जीव के साथ अठारह नातें रिश्ते भी हो जाते हैं । उनकी क्या कीमत है ? अत जो व्यक्ति-गभीरता पूर्वक विचार करता है, वह ससार की यथार्थता को समझ लेता है । वह भूल-भुलैया में नहीं पड़ता । ऐसा विवेकवान् व्यक्ति आनन्द ही आनन्द पाता है ।

जोधपुर,
ता. २४-८-४८ }



अचौर्य



स्तुति—

मिन्नेमदुम्भगलदुम्भसत्ताशितास्त ।

सुक्ताफलप्रकरभूषितमूषिमागः ॥

बदकमः क्रमगतं हरिणाभिपोऽपि ।

नाक्रामति क्रमयुगावलसंभितं ते ॥

मगवान् आपमदेवत्री की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—इ सबस्य सर्षदशी अन्तः शक्तिमान् आपमदेव मगवान् आपकी क्यों तक स्तुति की जाय ? मगवान् ! आपके गुण क्यों तक गाये जाएं ? प्रभो ! आप जगत् का दुःख विचारण करने वाले हैं । आपके नामस्मरण से भीषण से भीषण संकट दूर आते हैं ।

मान लीजिए, कोई मनुष्य कार्यवश गाँव को जा रहा है। मार्ग में जंगल में एक सिंह हाथी को दबोच रहा है। उसने हाथी के गडस्यल को फाड़ डाला है। उसमें से आसपास-में-मोती बिखर रहे हैं, शेर हाथी को मार कर खा रहा है। भाग्यवश वह आदमी वहाँ जा पहुँचा। शेर से उसका-सामना हो गया। अथ कौन उसे बचा सकता है ? तो, वहाँ- कोई दूसरा आदमी है- ही नहीं; कदाचित् हो भी तो क्या वह बचाने में समर्थ हो सकता है-? नहीं। जब मनुष्य को जंगल में सिंह दिखाई दे जाता है तो- उसके पैरों तलों की जमीन खिसक जाती है-। उस समय धैर्य रखना कठिन हो जाता है। जब वह मनुष्य हाथी को भक्षण करते सिंह को देखता है तो उसके देवता कूच कर जाते हैं। ऐसी सकटपूर्ण परिस्थिति में वह मनुष्य भगवान् का स्मरण करता है-भगवान् के चरणों का सहारा लेता है। वह ओं उसभ, ओं उसभ, ओं उसभ ! का जाप करता है तो उसमें ऐसा आत्मवल प्रकट हो जाता है कि-उसके सामने सिंह गाड़र की तरह नम्र हो जाता है। वह सिंह उसको नहीं छेड़ता है और वह सकुशल नियत स्थान पर पहुँच जाता है।

इस प्रकार प्रभु के नाम की अपरिमित महिमा है। यह आचार्य महाराज ने फरमाया है और उसी का मैं जिक्र कर रहा हूँ मगर जैसा कि पहले व्याख्यान में बतला चुका हूँ, भगवान् के प्रति प्रगाढ़ और अखण्ड श्रद्धा होनी चाहिए। केवल जीभ से कोई शब्द उच्चारण करने मात्र से काम नहीं चलता।

भाइयो ! प्रभु-स्मरण की एक घटी हुई घटना आपको सुनाता हूँ। कंजेड़ा गाँव का जिक्र है। यह गाँव मालवा प्रदेश

में है और जंगली मछियों के बीच में बसा हुआ है। इस गाँव में एक जादूख रहते थे। उनके रात्रि में चौबिहार का त्यह या रात्रि में वह पानी तक नहीं पीत थे। एक दिन वह पोड़े पर सवार होकर किसी दूसरे गाँव से आ रहे थे। रास्ते में कुछ आगे एक शेर या भिसभी बू पाकर पोड़ा रुक गया। आगे नहीं बढ़ा। तब वह जादूख पोड़ा से पीने लगे। पोड़े की बही दर लत से बौंधकर वह आँखों आगे बसे। कुछ आगे बढ़कर उन्होंने देखा कि रास्ते में शेर बैठा हुआ है। तब उन्होंने यमोकार मंत्र का उच्चारण किया—

यमो परिईतान्, यमो सिद्धाय, यमा मायरियात् ।
यमो तवन्मायात् यमो येर सव्यसाहस्य ॥

इस प्रकार महामंत्र का उच्चारण करके वह बोले—मेरे रात्रि में भोजन-पानी ग्रहण करने का त्याग है। अगर तुम रास्ता नहीं छोड़ोगे तो मैं दिन रहते पर नहीं पहुँच सकूँगा और मुझे मृत्ता-प्राप्ति रह जाना पड़ेगा। इसलिए तुम रास्ता छोड़ दो और मुझे जाने दो। जादूख की यह बात सुनकर सिंह बसा गया और जादूख बोड़े पर चढ़ कर अपने घर आ पहुँचा। यह एक सच्ची घटना है।

साहसो! अन्तःकरण में यह मन्त्र रक्खो। यह मन्त्र के बिना कोई ऐसा कार्य सिद्ध नहीं होता। कष्ट के व्याख्यान में बतलाया जा चुका है कि सुरर्षाम सेठ ने ऐसा यह विद्यास पढ़ा कि श्वता भी बसका कुछ बिगाड़ नहीं कर सका। मूठ-मैठ आदि काबर को डगते हैं, शूरवीर को नहीं। आपने सुनो होगा कि जिन लोगों के

संस्कार हीन कोटि के होते हैं, उन्हें को भूत-प्रेत तथा डाकिन आदि की बाधा होती है। उच्च संस्कार वाले, विवेकवान् और विद्वान् को कभी कोई भूत नहीं सताता।

पन्नालालजी नामक एक साधु एक धार श्मशान की छतरी में ठहरे थे। रात्रि का समय था। साधुजी बड़े तपस्वी और निर्भीक थे। थोड़ी सी रात बीती कि एक देवता उनके पास आया और बोला—आप मेरी छतरी में आ जाइए। इस छतरी का देवता मिथ्यादृष्टि है। वह आपको कष्ट पहुँचाएगा। महाराज ने कहा—जहाँ ठहर गये सो ठहर गये। मगर उनकी तपस्या और निर्भीकता के कारण कोई उपद्रव नहीं हुआ। उस मिथ्यात्वी देवता का कोई जोर नहीं चला। मतलब यह है कि दृढ विश्वास, सयम, तपस्या और आत्मबल हो तो कोई भी बाधा उत्पन्न नहीं कर सकता।

जिनके अन्तःकरण में भगवान् के प्रति निरन्तर श्रद्धा का अखण्ड दीपक प्रज्वलित रहता है और जो भगवान् के द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर होने की भावना रखते हैं, उन्हें कोई भी संसार की शक्ति परास्त नहीं कर सकती। भगवान् के द्वारा घतलाया हुआ मार्ग है अहिंसा का पालन करना, सत्य भाषण करना और बिना आज्ञा लिए किसी की कोई चीज न लेना, शीलव्रत का पालन करना और मोह ममता का यथा सभव त्याग करना। इन पाँच बातों में से अहिंसा पर प्रकाश डाला जा चुका है, सत्य के संबंध में भी थोड़ा बहुत कहा जा चुका है। चोरी के विषय में आज कहूँगा।

चोरी करना घोर पाप है। यह ऐसा दुष्कर्म है कि इसके विषय में ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है। दुनियाँ में कोई

ऐसा मत, पंच या धर्म नहीं है जिसने चोरी को पाप न माना हो और चोरी का त्याग करने का उपदेश न दिया हो। सभी मत, सभी पंच और सभी धर्म एक स्वर से चोरी को स्वाम्य बतलाते हैं। नीतिकार भी चोरी को निन्दा करते हैं। संसार में जितने भी शिष्ट पुरुष हैं सभी चोरी को पुरा कर्म मानते हैं। चोरी करने वाला पुरुष एक प्रकार से सभी पापों का सेवक करता है। चोर जब किसी की सम्पत्ति चुरा ले जाता है तो उस सम्पत्ति के स्वामी को चोर बदमाश होती है। संसारी जीव सम्पत्ति को प्राणों की तरह चाहते हैं। जब उनके सम्पत्ति कोई हर लेता है तो उन्हें ऐसा दुःख होता है, मानों उनके प्राण ही किसी ने हर लिये हों। चोरी हो जाने पर धर्म के मातृक को बर्बाद ही म्यमा होती है। अतएव चोरी करने वाला हिंसा के पाप का भागी होता है। इसी प्रकार चोर मूठ-झाड़ि अन्योन्य पापों से भी नहीं बच पाता।

चोरी का सातवा बहुत बड़ा और व्यापक है। कोई चादवी घनावास्तव को, विद्यालय को निराश्रितों को और बच्चों को डकान देता हो और कोई उसे दान देने से मना करे कि इसे दान देकर बचा करोगे, तो यह भी चोरी में शुमार है। दान देने में बचा धरा है ? क्यों धन बिगाड़ते हो ? सब को दान-पैर प्राप्त है, आप ही कमा-कमा कर खाएंगे। इस प्रकार कर-कर किसी को दान देने से विमुक्त करता किसी का धन दान देने से फेर देता भी मगवान् ने चोरी में शुमार किया है।

दुसरे की पुण्यी जाना भी चोरी है। किसी को धारम से रोककर जड़ना बाह करता भी चोरी है। किसी के पुण्य का लूट हूमा है और वह स्वाय-नीति के साथ व्यापार करता हुआ

लखपति बन गया है; अथवा किसी की नौकरी में तरक्की हो गई है, या किसी के लड़के की सगाई हो रही है, किसी के घर पुत्र-पौत्र आदि अच्छा परिवार है, और दूसरा यह सब देख-देखकर जलता है, ईर्ष्या करता है तो वह एक प्रकार से चोरी करता है।

तात्पर्य यह है कि जिस काम को करने का तुम्हें हक्क शामिल नहीं है, ऐसा कोई काम मत करो। अगर ऐसा काम करते हो तो समझ लो कि तुम चोरी कर रहे हो। अतएव जिसे चोरी के भयानक पाप से घबराता है उसे न्याय-नीति और प्रामाणिकता के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए। अत्यन्त रोद की बात है कि जो भारतभूमि धर्मभूमि कहलाती है, जिस भूमि पर तीर्थंकर जैसे लोकोत्तर महा-पुरुषों ने जन्म धारण किया है और धर्म का उपदेश दिया है, जिस भूमि पर अवतारी महा-पुरुष पैदा हुए हैं, जिस भूमि पर बड़े बड़े ऋषि-मुनि, साधु सत्तों ने जन्म लेकर उग्र तपस्या की है और जिस देश में आनन्द, कामदेव आदि के सम्मान पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले आदर्श श्रावक हो गये हैं, जहाँ के बालकों को घचपन में ही धर्म के संस्कार दिये जाते हैं, उसी देश का आज घोर नैतिक पतन हो गया है। आज जिधर नजर डालो उधर ही अप्रामाणिकता और अनीति दिखाई देती है। राजा से लगा कर रक तक सभी अपने कर्तव्यों से गिर कर चोरी के पाप के भागी हो रहे हैं। राजा अथवा राज्य-शासक अगर ईमानदारी के साथ अपना कर्तव्य अदा नहीं करता, अपनी छूटी का पावद नहीं रहता, अपने कर्तव्य की उपेक्षा करता है तो वह चोर है। न्यायाधीश का कर्तव्य है कि वह छानबीन करके सच्चा न्याय दे-दूध का दूध और पानी का पानी कर दे। इसके विपरीत

अगर वह किसी के सिद्धांत में आकर, किसी के दबाव में पड़कर, कोम का रूप धे पँस कर या रिश्तों सेकर सम्पाद करता है, सच्चे को मुँठा और मूँठे से सच्चा खड़ाता है तो वह बुरा है। वह अपने कर्तव्य का जोर है, धर्म का जोर है, सरकार का जोर है और प्रजा का जोर है। इसी प्रकार कोई दूसरा कमचारी भी अगर अपने वास्तविक कर्तव्य से गिरता है तो वह बोरी के अंग्रे में गिरता है।

व्यापारिक क्षेत्र में अब हम लड़के बाँधते हैं तो भी बड़ी निराशा होती है। प्राचीन काल में व्यापारी लोगों की बड़ी प्राप्ति थी। बड़ी प्रतिष्ठा थी और बड़ी मारी इज्जत थी। उनके शम्भों की भीमठ होती थी। अहाबतों में उनके बड़ीकाते इस प्रकार सही और प्रामाणिक माने जाते थे जैसे कानून के शम्भ सही माने जाते हैं। प्रजा में व्यापारियों के प्रति बड़ी भद्रा और सहमावना थी। लोग उन्हें अपना सहायक और संरक्षक समझते थे। पर आज क्या स्थिति है ? क्या आज व्यापारियों के प्रति जनता के हृदय में वह सद्भावमूर्ति रह गई है ? पहले कैसा विश्वास बसा है ? क्या आज अदालत में कतली बात कतनी प्रामाणिक मानी जाती है ? नहीं ! इसका कारण बोरी है। व्यापारी बुरा आज प्रामाणिक नहीं रहा है और इसी कारण अब कतली प्रतिष्ठा भी नहीं रह गई है। कम तोल कर देना, ब्यादा तोल कर देना, अच्छी वस्तु में बुरी वस्तु मिला कर देना नामने तोलने के बाँध या गज आदि छोटे-बड़े रकना आदि आदि ऐसी बातें हैं जिनके कारण व्यापारी बोरी के पाप के भागी होते हैं। इसी बातों से कतली प्रतिष्ठा बँट गई है। प्राचीन काल के व्यापार-

रियों ने प्रतिष्ठा की जो पूंजी संचित की थी, वह आज के व्यापारियों ने प्रायः नष्ट कर डाली है।

मेरा यह कथन अधिकांश व्यापारियों को लक्ष्य में रख कर है। आज भी कोई-कोई व्यापारी प्रामाणिकता के साथ अपना धंधा करते हैं। अपनी प्रामाणिकता के लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। यह वे लोग हैं जिन्होंने भगवान् के मार्ग को समझा है, अपने कर्त्तव्य को समझा है। मैं चाहता हूँ कि सभी व्यापारी उनका अनुकरण करें और अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करें।

इसी प्रकार अगर कोई मजदूर पूरी मजदूरी लेकर भी पूरा काम नहीं करता, काम करने से जी चुराता है और ऐसी कोशिश किया करता है कि किसी तरह काम न करना पड़े, तो वह भी चोर है। मतलब यह है कि अपने कर्त्तव्य को ईमानदारी के साथ अदा न करने वाला चोर कहलाता है। चाहे वह किसी भी जाति का हो, कोई भी धंधा करता हो। चोर की कोई जात-पाँत नहीं होती। जो चोरी करे वही चोर है, डाका डाले वही डाकू, रडी के यहाँ जावे वही रडीवाज और बुरे काम करे वही बदमाश कहलाता है। इन सब दुर्गुणों का सबध किसी जाति से नहीं होता, व्यक्ति से होता है। कई लोग ऊँची जाति में उत्पन्न होकर भी चोर और बदमाश हो सकते हैं और कई नीची समझी जाने वाली बीम में जन्म लेकर भी प्रामाणिकता और नीति के साथ अपना निर्वाह करते हैं।

कई लोग सत्संग के लिए आते हैं और किसी की नयी जूतियाँ, छतरी या और कोई चीज उठा ले जाते हैं। मगर, सच

पूछो तो वे सत्संग करने नहीं आते बल्कि चोरी करने के प्रयोजन से ही आते हैं। अक्सर मेले महोत्सव या समा-ध्यायमान आदि के अवसरों की वे राह देखत रहते हैं। उन्हें पता नहीं है कि ऐसा करके वे चोरी के पाप में फँस कर अपना अहित कर रहे हैं। नाटक नासमझी से खहर ला देता है और पूर्वोक्त सभी लोग समझ-भूल कर यह जहर खा रहे हैं।

चोरी करना बड़ा भयानक पाप है। परलोक में उसकी बुरी गति होती है। उसे नरक और तिर्यक लोकों में जन्म लेकर भीषण सुखीबर्ते सहनी पड़ती है। परन्तु परलोक की बात जान भी हो और सिर्फ इसी वर्तमान भव का विचार करो तो भी चोरी की तुर्त समझ में आ जायगी। चोरी करने वाले का हृदय निरन्तर व्याकुल और अशांत रहता है। उसे कब भय भी कभी चैन नहीं मिलती। कभी चोरी करते किसी से देन या किया हा मेरी चोरी मजदूर न हो जाय, इस प्रकार की आशंकाएँ उसे सदैव सताती रहती हैं। वह बड़ा दुःखा सा पमा रहता है। वह छिपने की कोशिश करता है। बिना कोसकर कभी बात नहीं कर सकता। उसे सदा सावधान रहना पड़ता है। फिर भी कभी कभी उसका पाप प्रकट हो ही जाता है। चोरी बाहिर होने पर चोर की कैदी बना होती है, वह कौन नहीं जानता ? चोर लोगों की निगाह में गिर जाता है। सब लोग उसकी करतूत पर झूठे हैं। सभी उससे घृणा करते हैं। मूखकर भी कोई उस पर विश्वास नहीं करता। इसके अतिरिक्त सरकार उसे गिरफ्तार कर लेती है, हफ्तेदिनों कीर बेकियों पहनाती है, मुकदमा चलाती है और फिर जेलों के लिए जगगाह में बंद कर देती है।

भाइयो ! कभी अपनी नीयत मत धिगाड़ो । किसी की चीज बिना इजाजत मत लो । यह बड़ा भारी पाप है । चोरी करने वाला अपने निर्मल कुल को कलक लगाता है । वह अपने पुरखों की कीर्ति में धब्बा लगाता है और अपनी सन्तान को भी धृणा का पात्र बनाता है । उसके दुष्कर्म के लिए उसकी भावी सन्तान को भी लाछन लग जाता है ।

मनुष्य में चोरी की आदत पड जाना ही बुरा है । किसी प्रकार के अभाव से प्रेरित होकर चोरी करने वाले लोग बहुत कम मिलेंगे, पर आदत से लाचार होकर चोरी करने वालों की संख्या वेशुमार है । बहुत लोगों में बचपन से ही चोरी की आदत शुरू हो जाती है और वह अकसर माता-पिता की गलती से शुरू होती है । बालक पहले-पहल मामूली-नगण्य सी चीजों की चोरी शुरू करता है । माता-पिता उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं अथवा उसकी चतुराई की सराहना करते हैं । इस प्रकार आदत बढ़ती जाती है, पक्की होती जाती है और वह बड़ी-बड़ी चोरी करने लगता है ।

एक लड़का बाजार से चार आम चुरा लाया । माता ने आम देखे तो कुछ नहीं कहा और सब ने खा लिये । लड़के की हिम्मत बढी । वह दूसरे दिन दूसरी और तीसरे दिन तीसरी चीज चुरा कर घर लाया । माता ने फिर भी कुछ नहीं कहा, बल्कि मौन रह कर उसकी चोरी का समर्थन किया । यों करते-करते लड़के की आदत चोरी करने की हो गई । एक बार वह चोरी करते पकड़ा गया । मगर बालक होने के कारण थोड़े कोड़े खा कर ही छूट गया । फिर भी उसकी आदत नहीं छूटी । वह क्रमशः

बड़ी-बड़ी थोरियों करने लगा। वह एक बार फिर पकड़ा गया और जेलखाने का मेहमान बना। उसकी बुढ़िया माँ रोती बूढ़ी पत्नी जेलखाने में उससे मिलने गई। जेलर ने उससे कहा—मेरी माँ मिलने आई है। क्या तू उससे मिलना चाहता है ? कैदी बोला—मेरी माँ तो मर गई है।

जेलर ने कहा—पगले ! वह रोती-बीसती तुमसे मिलने आई है और तू कहता है कि वह मर गई है !

कैदी—नहीं वह मेरी माँ नहीं है।

आखिर बुढ़िया उसके पास आई गई तो वह पीठ फेर कर जका हो गया। बुढ़िया ने कहा—बेटा, मैं तेरी माँ हूँ। आज तू मुझे देखता भी नहीं चाहता ?

जेलर ने जेलर दिया—तू मेरी माँ नहीं दुरमन है। तू बहीखत ही मेरी यह दुर्बला हुई है !

जेलर ने लकड़ से प्रश्न किया—तू जोरी करने के कारण कैद की ज्वा का मागी हुआ है, माँ को क्यों लाज्ज लगता है ?

जेलर के प्रश्न का जवाब होते हुए उसने अपने पिछले जीवन का इत्तम सुनाकर कहा—यदि पहले दिन ही बार आसों, के बरके इसने मेरे गाल पर बार चटि जक दिये होत तो आज मुझे यह दिन न देखना पड़ता !

कहने का मतलब यह है कि तुम्हारा लकड़ा, लकड़ी बरिन माँई अबका कोई और सम्बन्धी यदि बुरा काम करता है तो उसे सज़ा मत करो; उसकी छेपों मत करो उसकी सहायता मत

करो। उसे तत्काल अच्छी नसीहत दे दो तो उसका आगे का जीवन आराम से निकलेगा। ऐसा करने में ही तुम्हारी और उसकी भलाई है।

एक मुनीम ने किसी सेठ की दुकान पर कम-कम तोल कर सेठ का फ यदा किया। सेठजी ने दुकान की चीजें बढी हुई पाईं तो मुनीम से इसका कारण पूछा। मुनीम ने कहा—आपका नमक खाता हूँ तो फर्ज भी बजाना चाहिये। मैं ने अपना फर्ज अदा किया है। ग्राहकों को कम तोल-तोल कर इतनी बचत की है। यह सुन कर सेठजी को बड़ा अफसोस हुआ। उन्होंने कहा—मुझे ऐसी कमाई पसंद नहीं है। व्यापारी को उचित रूप में जो नफा मिलता है, वही उसके लिए काफी है। उससे अधिक मुनाफे की मुझे भूख नहीं है। मैं अपनी प्रामाणिकता, नीतिनिष्ठता या ईमानदारी के बदले में थोड़े से पैसे ऐंठ लेना पसंद नहीं करता। चोरी करके कमाया हुआ पैसा मोरी में ही जाने वाला है। उससे आत्मा का भी हनन होता है। चोरी करने वाला व्यापारी अन्त तक अपनी साख कायम नहीं रख सकता। एक न एक दिन उसकी साख खत्म हो जाती है और व्यापारी की साख उठ जाना एक प्रकार से व्यापार उठ जाना है।

अन्त में सेठजी ने अपने मुनीम से कहा—जिन जिन को कम तोला है उन सब को बुलाकर लाओ। सेठजी की इस आज्ञा से मुनीम चकित-सा रह गया, मगर लाचार होकर उसे आज्ञा का पालन करना पड़ा। सब ग्राहक दुकान पर इकट्ठे हुए। सेठजी ने उनसे कहा—मुनीम ने आपको कम माल तोल कर दिया है, मगर मैं बेईमानी की कमाई खाना नहीं चाहता। अतः आप लोग

अपने-अपने हिस्से का बाकी माह ले जाए। इस प्रकार सब माहको ले बाकी का माह ले लिया गया। इस ईमानदारी का प्रतीका यह हुआ कि सेठजी की सास बम गई। सब लोग अब पर विश्वास करने लगे। सेठजी का व्यापार ऐसा बमका कि कम्मे पास चासीस लाख की आवदाय हो गई।

दूसरे विरम-युद्ध ने भारत को एक नया उपहार दिया है—ब्लोक मार्केट अर्थात् बाज़ार बाजार। पहले विरम-युद्ध ने बाज़ार का उपहार दिया था और इस दूसरे युद्ध ने बाज़ार बाजार दिया है। बाज़ार बाजार भी एक अमानक रोग का मगर बाज़ार बाजार उससे भी अधिक भयंकर रोग है। यह सारे भारत में फैला हुआ है। इसके कारण देश की सासन व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो रही है। गरीबों का संकट बढ़ता जा रहा है। व्यापारियों में अनैतिकता बढ़ रही है। क्या जाता है कि भारत में इसकी अमान-मायिकता और स्वार्थ-विरामकता पहले कभी नहीं थी, जितनी आज है। लेकिन व्यापारी कान धोकर कहेंगे कि ब्लोक मार्केट एक प्रकार की बोरी है और इस तरीके से अगर कमाई करना शीघ्र ही नहीं छोड़ दिया जायगा तो इसकी प्रति-क्रिया बड़ी ही भयंकर हो सकती है। ब्लोक मार्केट करने वाले व्यापारी अपने अधिकार को मूख रह रहे हैं। वे समाज में आर्थिक स्थिति का व्यापार कर रहे हैं। क्या चाहिये कि आज अमान-विरा पृथिवी ही पृथिवी के विरम बाजारवाय का निर्माण कर रहे हैं।

माहपो ! नीति की राह पर चलने वाले क्या भूलें करते हैं ? नहीं, हा फिर क्यों पैर के लिए अनीति का आधार लेते हैं ? अनीति की कमाई टिकन वाली नहीं है। यह न माहम कब किस

खोटे रास्ते से चली जायगी । ऐसी कमाई तो किसी शुभ कार्य में भी नहीं लगाने वाली है । कई लोग कहते हैं कि यह मालदार होते हुए भी परोपकार में पैसा खर्च नहीं करते ! मगर भाई, उनका पैसा हराम का है, हलाल का नहीं, अनीति का है, नीति का नहीं । अतः ऐसे पैसे का वे कैसे सदुपयोग कर सकते हैं ? पाप का पैसा पुण्य का साधन शायद ही बन सकता है । इसलिए नीयत साफ रखो । गलत तरीके से किसी का माल हड़पने का विचार मत करो । बुरी भावना मत रखो । अन्याय का पैसा अव्वल तो सामने ही समाप्त हो जायगा, कदाचित् रह गया तो तीसरी पीढ़ी में तो दिवालिया बना ही देगा । ईमानदारी का एक पैसा भी मोहर के बराबर है और बेईमानी की मोहर भी पैसे के बराबर नहीं है ।

जो स्वयं प्रामाणिकता नहीं रखेगा, उसकी सन्तान में भी प्रामाणिकता नहीं आ सकेगी । बेईमानी करना बाल-बच्चों को बेईमानी सिखलाना है । वागवान पौधा जय कुछ बढ़ा होता है तो उसे सीधा रखने के लिए वह एक लकड़ी घोंघ देता है । इसी तरह अगर बालक को शुरु से ही सुधारना हो तो उसे सचाई और नीति की लकड़ी पकड़ा दो । ऐसा करने से वह नीति-निष्ठ और सच्चा बन जायगा ।

जो नर और नारी पिता और माता बनने का उत्तरदायित्व अपने माथे पर ले लेते हैं, परन्तु ठीक तरह उनका संरक्षण नहीं करते, उन्हें सुसंस्कारी बनाने की ओर ध्यान नहीं देते, उनके जीवन निर्माण की परवाह नहीं करते, वे अपने कर्त्तव्य की चोरी करते हैं । माँ-बाप का कर्त्तव्य है कि वे लड़के-लड़कियों के कार्यों

पर पूरी-पूरी निगाह रखें । उन्हें सभ्य और सौन्दर्यी बनाने के लिए सुंदर का जीवन पवित्र बतावें । अगर यह है कि इस और माता-पिता म्याम नहीं देते । बाइको को अच्छी शिक्षा देना तो बुरा रहा, फटी बुरी शिक्षा देते हैं । पहले-पहल तो 'हाऊ भाबा, भाबा भाबा' आदि कह कर उनके कामकाज रूप को समझा देता है । हममें उपोद्वेग और कायरता के बीज डाल देते हैं । भाइयो और बहिनो ! बाइको को कायर क्यों बनाते हो ! उन्हें शूरवीर और निर्भीक बनाने में तुम्हारा क्या बिगड़ता है ?

बहुत से लोग बात-बात में अपने मुँह से अपराध बोध करते हैं । साधारण बातचीत करते समय भी उनके मुँह से गंदी गालियाँ निकलती हैं । जिन लोगों को यह अस्वभाव प्रकृत आदत पड़ गई है, वे सभ्य और शिक्षा समाज में बैठे पोस भी नहीं रहते । उन्हें बोझ का मान नहीं आता । मैं बहिन और भेटी के सामने भी वे अश्लील शब्दों का प्रयोग करने से नहीं हिचकते तो बाइको के सामने क्यों हिचकने लगे ? वे समझते हैं कि बाइक माया और नासमझ है, अगर सब पूछो तो वे स्वयं ही नादान और नासमझ हैं । बाइक उनके शब्दों को सीखता है और अच्छी भी बुरी ही आदत हो जाती है । अतएव अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी संस्तान सभ्यतापूर्ण बनी तो बुरा सीख ठा पहले तुम स्वयं सभ्य बनो । बच्चों को अच्छे रिवाज मत सिखाओ ।

अगर तुम्हारा बाइक सुधरा होगा तो तुम्हारे ऊँच को सम्मान कर देगा । वह अपनी भी इज्जत बढ़ाएगा और तुम्हारी भी इज्जत बढ़ाएगा । तबकी सुधरी होगी तो जिस घर में जायगी,

उस घर के भी लोग तुम्हारे गुण गाएँगे । कहेंगे कि अमुक घर की लड़की ने आकर हमारे घर में उजेला कर दिया । इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी । मगर यह सब तभी होगा जब तुम अपने कर्त्तव्य की चोरी करना छोड़ोगे ।

इस प्रकार जो मनुष्य व्यापक चोरी का विचार करके उसे त्याग देगा, जो प्रामाणिकता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा, उसमें सभी सद्गुण आकर निवास करेंगे । जो चोरी नहीं करेगा वह कपट भी नहीं करेगा, झूठ भी नहीं बोलेगा, परस्त्री की तरफ निगाह भी नहीं करेगा, खून भी नहीं करेगा और दूसरे घुरे कामों से भी बच जायगा ।

भाइयो ! याद रखना, जो चोरी करता है वह तो चोर है ही, परन्तु जो मदद करे वह भी चोर, चोरी का माल ले वह भी चोर, औजार देवे वह भी चोर और चोर को घर में छिपावे वह भी चोर । यह सब चोर हैं । इसलिए कभी भूल कर भी ऐसे काम नहीं करने चाहिए । भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि—प्रभो ! मुझे सुमति मिले, कभी चिन्त में कुमति का उदय न हो । मेरी कुबुद्धि मिटे और सुबुद्धि जागे । जब कभी भगवान् से प्रार्थना करो, यही करो कि मेरी भावना पवित्र हो । भगवन् ! चाहे सम्पत्ति हो या न हो, सम्पत्ति अवश्य हो । ऐसी प्रार्थना करने से जीवन पवित्र होगा—ऊँचा बनेगा ।

भाइयो ! चोरी की आदत बढ़ी ही अहितकर है । ज्यों ज्यों यह आदत बढ़ती जाती है त्यों-त्यों दुःख भी बढ़ता जाता है । दुःख बढ़ने पर आदमी रोता है कि हाय, हमने क्या पाप किये हैं जिससे दुःखी होगये । जीवन के अन्त में चोरी करने वाला

मर कर मिट्टारी होता है, खरित्री होता है। बह करी मोंगले बापणा तो कसे भील देने की भी दावा की नीबल मही होगी। कोई कइता है मुझ का मोंगले पर भी कुछ मही मिश्रता है ! पर माइ, मिले कइसे ! तू बहुत पाप करके आया है। बस पाप का प्रायश्चित्त तो तुम्हें करना ही पड़ेगा। अगर यह हासल तुम्हें पसंद मही है तो अब सावधान हो जा। आगे ऐसे पाप न करने का निश्चय करके।

बारी को संस्कृत में 'अदत्तादान' कहते हैं। अदत्तादान का अर्थ है—बिना ही बलु प्रदत्त करना। इस दृष्टि से बिहार किवा बाय तो बोरी बहुत बारीक वस्तु बन जाती है। रास्ते में से एक ककर कटा सेना, नदी अथवा ठाकाब में से पानी छे सेना, पेड़ से शठेन काट सेना रात कुचरन के लिए सूखा तिमका कटा कना, आदि भी अदत्तादान है। मुनि वन इससे अदत्तादान का भी त्याग कर देते हैं। अगर साधारण गृहस्थों के लिए ऐसा करना संभव मही है। फिर भी अतिना संभव हो अदत्तादान का त्याग करना आवश्यक है। कम से कम वंस मूख अदत्तादान का त्याग तो करना ही चाहिए, जिसे बुनिया भीटे छौर पर बोरी समझती है, जिससे जोक में मिया होती है और रास्य बड़ बेठा है। माइबो ऐसी मोटी बारी का मत करा जिससे इहे पर्व और सेल की हवा कानी पड़े। अगर आपने इतना त्याग कर दिया तो भी आपका जीवन पवित्र बन जाएगा और आपके किए दिव्य सम्पदा के द्वार खुल जायेंगे।

बम्बूकुमार की कथा

बम्बूकुमार के घर में भी बार घुस पड़े। बम्बूकुमार बारी के सरदार ब्रमन का समझा रह है कि बुनिया की नातेदारी की

कोई कीमत नहीं है। एक जन्म में एक ही व्यक्ति के साथ अठारह नाते किस प्रकार हो सकते हैं, यह बात समझाने के लिए जम्बू कुमार एक कथा कहते हैं। वह इस प्रकार है —

मथुरा नगरी में एक अत्यन्त रूपवती वेश्या थी। वह धन के लोभ में फँस कर अपने धर्म को भूल गई थी। तन और यौवन को नष्ट कर रही थी। एक बार वसन्त ऋतु में अच्छे कपड़े और गहने पहन कर वह हवाखोरी के लिए निकली। बग़ी में बैठकर वह बाग में गई।

उसी समय किसी सेठ का लड़का भी वहाँ पहुँच गया। दोनों की निगाहें एक हुईं। सेठ का लड़का वेश्या की निगाहों से विंध गया। वह लड़का भी बदचलन था। उसे माँ-बाप की जैसी शिक्षा मिलनी चाहिए थी, वैसी नहीं मिली थी। उसकी तकदीर भी उलटी थी। इन सब कारणों से वह वेश्या के फदे में फँस गया। धीरे धीरे सम्पर्क बढ़ते-बढ़ते ऐसी स्थिति आ पहुँची कि वह रात-दिन वेश्या के पास ही रहने लगा।

दोनों के सयोग से वेश्या गर्भवती हुई और समय पूरा होने पर एक लड़का और एक लड़की का युगल उत्पन्न हुआ। लड़के का नाम कुवेरदत्त और लड़की का नाम कुवेरदत्ता रखा गया। बालकों की परवरिश करने में ऐश-आराम में बाधा पहुँचती है, ऐसा समझ कर वेश्या ने उनके नाम की मुद्रिका बनवा कर और लकड़ी की एक पेटी बनवा कर और उसमें मखमल की गद्दी बिछाकर दोनों को उसमें सुला दिया और यमुना नदी में बहा दिया। वेश्या फिर ऐश-आराम में मस्त हो गई।

पेटी बहती-बहती सौरीपुर तक पहुँची। वहाँ वसुन्ध क
 भिनारे लड़े से सड़ों की नज़र उस पर पड़ी। उन्होंने वह पड़ी सरी
 से बाहर निकलवाइ। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि पेटी में जो
 को निकलेगा वह आधा-आधा बॉट लेंगे। पेटी खोली गई। रेल
 तो उसमें एक लड़का और एक लड़की निकली। दोनों को बड़ा
 विस्मय और विचार हुआ। उन्होंने सोचा यह बाइक में मासूम
 किसके होंगे? इनकी जाह-पॉठ का क्या पता है? मगर वह
 विचार अधिक समय तक नहीं ठहरा। उनमें से एक ने कहा-मार्ह
 बाइकों की क्या जाति होती है? इनकी जाति तो मनुष्य जाति
 ही है। बाइक हर हाज़र में पवित्र है। फिर वह तो मनुष्य की
 रक्षा का साधन है। हम लोग कीड़ों-मकोड़ों की भी रक्षा करते हैं
 तो क्या हम बाइकों की रक्षा करने में हिचकिचाएँ? नहीं। ऐसा
 करता उचित नहीं। इनकी रक्षा करना ही हमारा धर्म होता
 बाहिये। दूसरे सेठ को यह बात पसंद आ गई। दोनों में से एक
 ने लड़की और दूसरे ने लड़का ले लिया। उनके नाम की सुनि-
 काएँ भी लीं।

धीरे धीरे दोनों बाइक बड़े हुए। मूल से जब दोनों मार्ह-
 बहिन का विवाह हो गया और दोनों पति-पत्नी के रूप में साथ-
 साथ रहने लगे। एक दिन दोनों बीपड़ लेता रहे थे। कुंभरदण की
 दृष्टि अपनी बी की अंगूठी पर पड़ी। दोनों अंगूठियाँ एक-सी थीं।
 साफ़ मासूम हो गया कि यह दोनों अंगूठियाँ एक ही कारीगर की
 बनाई हुई हैं। उन्हें कुछ संशय उत्पन्न हो गया।

कुंभरदण ने नीचे आकर अपने पिता से इस बारे में प्रश्न
 किया। पिता ने सदा-सदा इत्तान्त बतला दिया। इत्तान्त सुन-

कर लड़के के दिल में भारी उथल-पुथल मची । उसने उस दिन भोजन तक नहीं किया । वह चुपचाप मथुरा की तरफ रवाना हो गया । लड़की को यह बात मालूम हुई तो वह रोने लगी । उसे घोर पश्चात्ताप हुआ । वह कहने लगी-हाय, मेरा जीवन भ्रष्ट हो गया । मैं ने पूर्व-जन्म में न जाने क्या पाप किया था कि उसका फल इस रूप में भुगतना पड़ा ।

कुवेरदत्त मथुरा नगरी में रहने लगा और व्यापार करने लगा । कुवेरदत्ता वहीं रहती रही । एक धार ४ज्ञान के धारक एक मुनिराज से उसकी भेंट हुई । उसने मुनिराज से निवेदन किया, महाराज ! मेरा एक संशय दूर कीजिये । और उसने पिछली बातों के संबंध में प्रश्न किया ।

मुनिराज बड़े ज्ञानी थे । उन्होंने कहा-तुम दोनों इस भव में भाई-बहिन हो और पूर्वभव में पति-पत्नी थे । तुमने मुनि का उपदेश सुनकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया था । मगर तुम्हारी एक पड़ोसिन खराब थी । उसने धीच में पड़ कर तुम्हारे व्रत को खण्डित करा दिया था । इस कारण वह मर कर मथुरा में वेश्या हुई और तुम दोनों उसकी कुंख से भाई-बहिन के रूप में उत्पन्न हुए हो । वेश्या ने पेटी में बंद करके तुम्हें नदी में छोड़ दिया । आगे का हाल तुम लोगों को मालूम ही है कि किस प्रकार तुम्हारा पालन-पोषण और विवाह हुआ ? विवाह करते समय तुम्हारे पालन-पोषण करने वालों को भी ध्यान नहीं रहा । उन्होंने पूरी तरह जौंच-पड़ताल नहीं की और तुम दोनों का विवाह कर दिया । मगर भीतरी कारण तो यह था कि पूर्व जन्म के पाप के कारण भाई-बहिन होकर भी तुम्हें पति-पत्नी का सवध भोगना पड़ा है ।

मुनिराज आगे जोस-बहिम ! अज्ञात दशा में बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं। उनके लिए शाक पश्चात्ताप और परिताप करत-करत बैठ रहने से कोई प्रयाजन सिद्ध नहीं होता। पश्चात्ताप करना चाहिए आगे के सुधार के लिए। यदि सबकुछ तुम्हें अपना पिछला जीवन पसंद नहीं है और अगला जीवन सुधारना है तो कम की शरण में आओ। अस्वस्थ मध्यमवर्ग पातने की प्रशिक्षा करो। प्रशिक्षा क्षेत्र से परस अपनी शक्ति को पूरी तरह से लेस लो। अपनी भावना को मल्लीभाति परस लो। आगे की सोच लो पीछे की सोच लो। फिर पक्के संकल्प के साथ प्रशिक्षा करो। प्रशिक्षा करने के बाद जादे इजाजे बिम आवें, ताप्ये बापाय सामने लड़ी हो आवें, करोड़ों मसोमन कपस्थित हों मगर उन सब को जीत कर प्रशिक्षा का अवरस प्राप्त करो। जीवन यह तो अच्छी बात है और यदि न यह सक्ता हो तो न रहे, मगर की हुई प्रशिक्षा अवरस रहनी चाहिये। जो मर या मारी लोक बाज से प्रशिक्षा पाने के बिचार से ऊपर दिस स प्रशिक्षा लेते हैं, वे अठिमाई आवें पर जससे भ्रष्ट हो जाते हैं और फिर दुररे पाप के मागी बनते हैं।

कुछ लोगों का समाल है कि जिस व्रत का पातन करना है उसका पातन करे, किन्तु प्रशिक्षा के पद्वि में क्यों कैसे ? पर उनकी भूल है। इस कर्म के पीछे कमजोरी द्विपी हुई है। अगर व्रत पर दृढ़ रहने की पक्की भावना है तो फिर प्रशिक्षा से पच राने की क्या जरूरत है ? प्रशिक्षा लना संकल्प की दृढ़ता का सूचक है। प्रशिक्षा से आगे के लिए भी दृढ़ता प्राप्त होती है। इसलिए प्रशिक्षा ग्रहण करना आवश्यक है।

खास तौर से पुरुषों को पर-स्त्री त्याग और स्त्रियों को पर-पुरुष का त्याग करने की प्रतिज्ञा तो अवश्य ही लेना चाहिए । जो पुरुष परस्त्रियों को माता-वहिन समझता है और जो स्त्री पर-पुरुषों को पिता एवं भाई के समान समझती है, उसमें ब्रह्मचर्य का एक अंश आ जाता है । वे बहुत से पापों से घब जाते हैं । इस प्रकार की प्रतिज्ञा न लेने से कभी कभी दडे-वडे अनर्थ हो जाते हैं । इसका एक उदाहरण लो —

एक व्यापारी सेठ था । व्यापार में घाटा हो जाने के कारण वह दरिद्र हो गया । दूसरों का देना भी उसके माथे पर था । सेठ ने अपनी पत्नी से कहा या तो मैं मर जाऊँगा या दूसरे देश में कमाने जाऊँगा । पत्नी समझदार थी । उसने सान्त्वना देते हुए कहा—सच्चे मर्द कभी मरने का विचार नहीं करते । धन तो हाथों का मैल है । कभी आ जाता है, कभी चला जाता है । आप धनवान् से निर्धन हो गये तो क्या निर्धन से धनवान् नहीं हो सकते ? अवश्य हो सकते हैं । आप भले परदेश जाइए और व्यापार कीजिए, मगर मरने का विचार उत्पन्न ही न होने दीजिए । जीवन के लिए धन है, धन के लिए जीवन नहीं ।

सेठ व्यापार के लिए परदेश चला गया । वह जय परदेश गया तो उसकी पत्नी गर्भवती थी । सेठ किसी व्यापारिक नगर में गया और कमाने लगा । इधर उसकी पत्नी ने कन्या को जन्म दिया । धीरे-धीरे वह बड़ी हो गई । कन्या रूपवती थी । विवाह के योग्य हो गई थी ।

सेठ की पत्नी ने सेठ को पत्र लिखा कि लड़की बड़ी और विवाह के योग्य हो गई है । आकर उसका विवाह कर दीजिए ।

मगद सेठ ने बचर दिया—मैं व्यापार में उलझा हुआ हूँ। अभी छोट नहीं सकता। विवाह के लक्ष के लिए रुपये भेजता हूँ। भास पास के गाँव में कोई अच्छा-सा घर देव कर कच्चा का संरक्ष कर देना। सेठ के आदेशानुसार पत्नी ने लक्ष्मी का विवाह कर दिया। अच्छा कपड़ा रहेव दिया। लक्ष्मी सुसराव चली गई।

कुछ दिनों बाद सेठ हाथ-पार छाल रुपया कमा कर घर की तरफ खाना हुआ। वह रात में एक रात वही गाँव में ठहरा, जिसमें उसकी लक्ष्मी ब्याही गई थी। रात के समय गर्मी के कारण सेठ को नींद नहीं आ रही थी। लक्ष्मी के सुसराव का घर नखीक ही था पर उसे पता नहीं था। दोनों मकानों की छत मिली हुई थी। आसानी से ऊपर से बचर आना-जाना जा सकता था। लक्ष्मी अपने छत पर सो रही थी। रात काफी बीत गई थी। सर्वत्र सन्नाहता था। वह लक्ष्मी केने समय लक्ष्मी के लिए बठी। उसके पैरों की आइट से व्यापारी सबग हो गया।

एकान्त स्थान में, सुकसान रात्रि के समय में, लक्ष्मी की की देख कर सेठ का मन एकदम पापमय बन गया। उसके चित्त में वृत्त की भावना जाम बठी। वह बीरे से उठा बीर दबे पाँव उस की क पास पहुँचा।

बचर उस की के हृदय में भी क्रोध की भाग समक बठी। उस भाग में उसका बिबेक मरम हो गया। उसने अपने शीर्ष लक्ष्मी अनमोह दल की अपेक्षा सेठ के गले की मोठियों की भावना

को अधिक कीमती समझी । उसने आत्मा के आभूषण को गँवा कर शरीर का आभूषण ग्रहण कर लेना पसंद कर लिया । दोनों अपने-अपने धर्म से भ्रष्ट हो गये ।

सवेरे उठकर सेठजी अपने गाँव में आ गये । कमाया हुआ माल देख कर सेठानी बहुत खुश हुई । फिर सेठानी ने कहा अमुक गाँव में लड़की व्याही है । उसे आपने आज तक नहीं देखा है । अब जल्दी बुलवा लीजिये । सेठजी बोले-अरे, रात तो मैं उसी गाँव में ठहरा था । मुझे पता होता तो मैं अपने साथ ही लेता आता । फिर सेठ ने लड़की को बुलवाया । लड़की आई । उसके गले में वही मोतियों की माला देखकर सेठ के आश्चर्य का पार न रहा । उसने मन ही मन सोचा-यह माला तो वही है, जो मैंने दी थी । हाय यह तो घोर अतिघोर दुष्कर्म हो गया । अरे, इस अनर्थ का कोई ठिकाना नहीं है ।

उधर लड़की भी सारा भेद समझ गई । उसने पहचान लिया कि उस रात को मेरे पिताजी ही मिले थे । उस ही ग्लानि का पार नहीं रहा । मुँह दिखलाने का उसमें साहस नहीं रहा । लज्जा, मनोवेदना और सताप को वह सहन नहीं कर सकी । उसे जिंदा रहना दूभर हो गया । अतएव वह मकान के चौथे मंजिल पर गई और फासी लगा कर मर गई । उधर सेठ भी ऊपर गया । उसने अपनी लड़की की यह दशा देखी तो उससे भी न रहा गया । उसने भी उसी रस्सी से फाँसी लगा कर प्राण त्याग दिये । इस प्रकार दोनों की जिंदगी बर्बाद हो गई ।

भाइयो ! यदि सेठ ने परस्त्री सेवन का त्याग किया होता अथवा उसकी लड़की ने परपुरुष-सेवन का प्रत्याख्यान किया

झाता तो क्या यह भीषत आती ? इस प्रकार का त्याग न करने से त्रिषंगी भट्ट हो जाती है । अतएव शीत व्रत को पारण करो । शीतव्रत पारण न करने से भू-गुहस्था जैसे बड़े-बड़े पापों के सेवन करने का भी प्रसंग आ जाता है । एक जन्म में, एक देश प्रसवने का पावन करने से भी क्लृपाय हो जाता है ।

इतना उपदेश सुनाने के पश्चात् मुनि ने कुबेरदास से कहा 'पुत्री ! रोने और बिलकने से कोई लाभ नहीं उकटी इति होती है । यह आर्त-भ्रान है और आत्मभ्रान भी पाप-बन्ध का कारण है । पाप से पाप का शमन नहीं हो सकता । पापों के घन का नाश धर्म है । तुम धर्म का सहारा लो । धर्म का सहारा लेकर बड़े पापी भी तिर जाते हैं । मृत्यु से लक्ष्य कपका मृत्यु से नाश नहीं होता पानी से शक होता है । इसी प्रकार पाप से पाप का नाश नहीं होता किन्तु धर्म से पापों का नाश होता है ।

मुनिराज का वह उपदेश सुनकर कुबेरदास ने संयम बर्गी-कार कर लिया । वह लेखे-लेखे का पारण करने लगी । तपस्वा के प्रभाव से उस अभयिज्ञान प्राप्त हो गया । अभयिज्ञान का वह योग बगाने पर उसे माधुसूदना हुआ कि मेरा भाई मधुरा पहुँचा है और मेरी माँ का साथ भट्ट हो रहा है । हमने गुहलीग्री में आया माँगने हुए कहा-‘बड़ा अन्ध है । मैं पापियों का उद्धार का रास्ता दिखाना चाहती हूँ । आपकी आज्ञा हो तो मैं जाऊँ ।’

गुहलीग्री की आज्ञा प्राप्त करके साथी कुबेरदास मधुरा में आई । वह कुबेरमंदा बरबा के घर भी पहुँची । कुबेरदास वहाँ मौजूद था । बरबा ने साध्वीग्री की देखकर कहा-‘आपका क्या

क्या काम है ? माध्वी और वेश्या एक जगह नहीं रह सकती, चोर और साहूकार, हिंसक और दयावान्, व्यभिचारी और ब्रह्मचारी, लाल मिर्च और नेत्र एक साथ नहीं रह सकते ।

साध्वीजी ने बहुत मधुर और शान्त स्वर में कहा—आप फिक्र मत करो । मैं डाक्टरनी हूँ और आपको नीरोग करने आई हूँ ।

भाइयो ! श्रमण भगवत महावीर स्वामी षडे वैद्यराज थे । उन्होंने आत्मा के तथा मन के सब रोगों के नुस्खे बतलाये हैं, जो शास्त्रों में लिखे हुए हैं । उन्हीं को देख-देखकर हम लोग आज भी आध्यात्मिक रोगों एवं मानसिक रोगों का इलाज किया करते हैं । कोई कहता है—‘मैं जुल्मी हूँ ।’ हम कहते हैं—‘इतने उपवास कर छालो ।’ रोगी कहता है—‘महाराज ! मेरे मन में अमुक रोग घुसा हुआ है ।’ तब हम उसे चिकित्सा बतलाते हैं—‘इतना स्वाध्याय करो, इतने आश्रित करो ।’ इस तरह हमारे पास सभी रोगों के नुस्खे हैं—व्यभिचार, भूठ, चोरी वगैरह सभी दोषों के नुस्खे हैं । जिसे नीरोग होना है, आवे, दवा खावे और स्वस्थता प्राप्त करे । जो हमारी दवा खाएगा उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा ।

स्थान—जोधपुर ।
ता० २५-८-४८ }



राग-द्वेष की आग

स्तुति.—

कल्पान्तश्चसपवनोद्धतवाह्निधरम्

दाशान्तं न्वसितमुन्मत्तमुत्फुल्लिगम् ।

विश्वं त्रिपस्तुमिव सम्मुखमापतन्तम्,

हृष्ट्वा मय भवति नो भवदाभितानाम् ॥

भगवान् आपमदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महा
राज परमाते ई-दे सचछ, सर्व परीं, अनन्तरादिमात्र, पुरुषी
सम आपमदेव ! आपकी क्यों तक स्तुति की जाय ? भगवान् !
आपके क्यों तक गुण गाये जाय ?

भगवान् क नाम में अरुमुक्त रहति है । मान हीअपि,
कोई पुरुष कार्यकरा किसी गौद को आ रहा है । रास्त में बहा

भारी जगल आता है। उस जगल में दावानल सुलग रहा है। वायु ऐसी प्रचल चल रही है मानों प्रलय कालीन वायु हो। उस वायु के झुकोरों से आग और भी बढी हुई है। उसमें से चिन-गारियाँ और ज्वालाएँ निकल रही हैं। आग ऐसी मालूम होती है, मानों सारे ससार को भस्मसात् कर देने के लिए तैयार हुई है। वह आग चारों ओर फैली हुई है। राहगीर उसमें फँस गया है। कहीं भी निकलने का रास्ता नहीं है। ऐसी परिस्थिति में वह राहगीर सोचता है—अब जिंदा रहने का कोई उपाय नहीं है। वह और सब उपायों को छोड़ कर एक मात्र प्रभु की शरण ग्रहण करता है। ऋषभदेव भगवान् का स्मरण करता है। यह स्मरण करते ही वह भीषण दावानल पानी के समान धन जाता है। राहगीर का कुछ भी बिगाड नहीं होता और वह सकुशल अपने गाँव पहुँच जाता है। यह भगवान् ऋषभदेवजी के स्मरण की महिमा है। ऐसे महामहिमा मण्डित महाप्रभु ऋषभदेव को हमारा धार-धार नमस्कार है।

भाइयो ! आप लोग स्थूल चीज को जल्दी समझ लेते हैं, मगर सूक्ष्म चीज को नहीं समझ पाते। बाहर की आग आँखों से दिखाई देती है और स्पर्शान्द्रिय उसका अनुभव कर लेती है। इसलिए आप उसे जल्दी समझ जाते हैं और उससे ध्वने की कोशिश भी करते हैं। मगर आपके अन्तरंग में एक ऐसी भयानक आग धू-धू करके जल रही है, जो क्षण भर के लिए भी कभी शान्त नहीं होती। उसे आप पहचानते हैं ?

वह आग है राग-द्वेष की आग । राग और द्वेष की आग में यह सारा जगत् जल रहा है। स्थूल अग्नि तो स्थूल जगत् को ही

बढ़ाती है, मगर वह भीतरी भाग आत्मा के मङ्गलों को विनष्ट करती है या विकृत करती है। स्वर्ण अभि एव ही जन्म में सार सञ्चली है मगर राग-द्वेष की अभि जन्म-जन्मान्तर में आत्मा का सहाया करती है। यह पड़ी बिनाशकारी अभि है। राग और द्वेष में से एक न एक तो इरादम बढ़ाती पर सवार रहता ही है। राग नहीं तो द्वेष की भाग में ही लोग उलझा करते हैं। द्वेष का काम बड़ा ही खतरनाक है। जिस आत्मी के शरीर में द्वेष होना स्व में रहता है, उसका मूल जल जाता है। यह अन्ध-मन्य पीष्टिक भाव काब तो भी दुष्टका ही बना रहता है। द्वेष से मनुष्य को भार हाँसि उठती पड़ती है। द्वेषी मनुष्य स्वयं तो हाँसि उठता ही है, पर दूसरों की भी हाँसि करता है। यह दूसरों को संकट में डालने के लिए स्वयं संकट में पड़ता है। अन्तःकरण में जब द्वेष का आविर्भाव होता है तो मनुष्य ऐसा भ्रमा बन जाता है कि उसे अपना भी भला-बुरा नहीं सुझता, वह दित-भ्रित का विचार करने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है।

द्वेष के कारण ही सीता कैसी बर्ज्य-शीला सती को बर्ज-वास के बस भोगना पड़े; क्योंकि सीता की बड़ी भारी महिमा हो रही थी और किन्हीं-किन्हीं को यह महिमा सहन नहीं हुई। उन्होंने कहना शुरू किया और फिर सीता को झूठा कलंक लगा दिया। द्वेष करने वाले के हाथ में ज़रा आता-जाता है। फिर भी वह निष्कारण द्वेष करता है। द्वेष करने से आत्मा के किसी गुण का विकास होता हो मंद मीठा हाँस हो तब तो द्वेष करने में मौ सार है। मगर ऐसा कोई भी काम तो होता नहीं है, फिर द्वेष करने वाले क्यों द्वेष करते हैं? वे अपनी पूरी आवृत्त ल जाँचते हैं।

उनका काम स्वयं जलना और दूसरों को जलाना है ।

घर में पहले-पहल सास-बहू इकट्ठी रहती हैं । वे चाहें तो हिल-मिल कर, एक दूसरी को प्रेम की मिठास देती हुई, बड़े आनन्द के साथ रह सकती हैं । उनके ऐसा करने से उन्हें भी शान्ति प्राप्त हो सकती है और कुटुम्ब के लोगों को भी शान्ति मिल सकती है । पर यह सत्यानाशी द्वेष उनके बीच में आडा आ जाता है । उसका फल यह होता है कि उनमें दिन-रात कलह मचा रहता है । सास, बहू को और बहू, सास को दुश्मन-सी प्रतीत होती है । एक दूसरी को बदनाम करने का मौका खोजती रहती है । कई घर तो द्वेष का परिणाम इतना भयानक होता है कि एक दूसरी के प्राण ही ले बैठती है ।

इन्दौर की घटना है । एक सासू ने अपनी बहू के हाथ-पैर बाँध दिये, उस पर तेल छिड़क दिया और आग लगा दी । आग लगाकर और किबाड़ बंद करके वह चल दी । जब धुआ निकला तो लोगों ने किबाड़ तोड़े और देखा तो बहू की यह दुर्गति हो गई है । आखिर वह मर गई ।

कई लोग माधु-सतों को देखकर ही द्वेष करने लगते हैं । एक गाँव में साधु पहुँचे तो लोगों ने कहा—तुम हमारे गाँव में आये ही क्यों ? ऐसे लोगों को साधु भी काले साँप के समान दिखाई देता है । अब कोई उससे पूछे कि भाई, साधु तुम्हारा क्या बिगाड़ते हैं ? वे तुम्हें या दूसरों को क्या गलत रास्ते पर चलने की प्रेरणा करते हैं ? क्या तुम्हारी भलाई में बाधा डालते हैं ? नहीं, तो निष्कारण द्वेष करने से क्या लाभ है ? अगर

कोई साधु शीघ्रहिंसा करने में धर्म बतलाय, मूठ बोलने का रूप देता है, चोरी करने की प्रेरणा करे, आपस में लड़ान-मिड़ाने की बातें करे तो कदाचित् उससे द्वेष भी किया जाय मगर वह ऐसा कोई काम नहीं करते। वे स्वयं सदाचारमय जीवन यापन करते हैं और दूसरों को सदाचारी बनाने की शिक्षा देते हैं, फिर क्यों दुष्टा जन पर द्वेष करते हो ?

अगत् में बितने भी महापुरुष हुए हैं प्रायः सभी के द्वेषी भी थे। अगस्त्यस्य महाबाहू महावीर पर भी द्वेष करने वालों का अभाव नहीं था। राजा को न, राम का दुरजन रावण का कृष्ण का दुरजन कंस था, गांधी के प्रणु होने वाला गोखले था, इस प्रकार कोई व्यक्ति चाहे कितने ही ऊँचे व्यक्तिव से सम्पर्क क्यों न हो और मझे ही उसका अन्तःकरण में प्राणी मात्र के प्रति दया और प्रेम का मरता बहता हो, फिर भी कोई न कोई बसन्त द्वेषी मित्र ही जाता है। इससे पता चलता है कि संसार में द्वेष की दुर्भावना अस्तिभी व्यापक है।

✓ द्वेषी के दिव में कृष्ण खेरया रहती है। उसमें रौद्रभाव आ जाता है और वह अनर्मरंज का बड़े से बड़ा पाप करने को तैयार हो जाता है। करांची में द्वेष के कारण हो चार्यसमाज के नेता बरानानन्दजी का हुरा मीका गया था, अज्ञानन्दजी को पिस्तौल की गोली का शिकार बनाया गया था। इनके प्रताप से ही लखनऊ में विप्लव जैसे पावन-आत्मा संत को जहर देकर मार डाला गया था। वास्तव में दिव में जब द्वेष आगता है तो मनुष्य को कुछ भी मत्ता नहीं छूटता।

हिन्दुस्तान के इतिहास पर नजर डालो तो पता चलेगा कि आपसी ईर्ष्या-द्वेष के कारण ही मुख्य रूप से इसका पतन हुआ। राजा लोगों के चित्त में द्वेष उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने विरोधी को गिराने के लिए अपने कर्त्तव्य का कुछ भी खयाल न करके विदेशियों की सहायता की। जयचन्द को भारत कैसे भूल सकता है ? पर भारत में एक नहीं, सैकड़ों जयचन्द हुए हैं। कहा तक उनकी नामावली गिनाई जाय ? उनकी बदौलत देश को शताब्दियों तक पराधीनता भोगनी पड़ी।

द्वेष के दो रूप हैं—क्रोध और मान। मतलब यह है कि द्वेष या तो क्रोध के रूप में प्रकट होता है या अभिमान के रूप में प्रकट होता है। क्रोध के सवध में पहले एक दिन कहा जा चुका है। क्रोधी मनुष्य पागल के समान बन जाता है। वह अपनी मलाई-चुराई को भी नहीं सोच सकता। वह घड़े से घड़ा अनर्थ कर डालता है।

एक नवयुवक था। पढा-लिखा विद्वान् था। उसने न्याय-तीर्थ की परीक्षा दी थी। वह एक बार सुमराल गया। सास ने कोई कारण बतलाते हुए उसकी पत्नी को उस समय भेजने में असमर्थता प्रकट की। वह ले जाने का आग्रह करने लगा। बात बढ़ गई। नवयुवक ने कहा—अगर इसी समय पत्नी को नहीं भेज देती तो मैं दूसरा विवाह कर लूंगा और फिर कभी तुम्हारी लडकी का मुँह भी नहीं देखगा। सासू को भी तैश आ गया। उसके मुँह से निकल गया—ऐसा करोगे तो मैं समझ लूँगी कि मेरी धिटिया विधवा हो गई है। वस यह शब्द सुनना था कि उस नवयुवक के क्रोध का पार न रहा। उसने कहा—‘तो अच्छी बात है, मैं

हुन्दारी लकड़ी का बिपचा बनाकर ही छोड़ेंगा ।' इतना कह
का वह उसी समय सुसराक म चल दिया और कुँप में डूब मरा ।

भाइया ! इस विज्ञान मनुष्यक की मनोवृत्ति पर बरा
विचार कीजिए । वह निम्नलिखित सत्य पठना है । दूसरों का अहित
करने के लिए अपने प्राण भी द देना क्या सामान्य मूल्यता है ?
पर लोभी के लिए वह सामान्य बात है । बसने अपनी सास स
बढ़का लेने के लिए अपनी जान दे ही । लोभ के कारण आने
रित म जाने कितनी ऐसी-मेसी पटनायें हुआ करती हैं । इसलिये
लोभ का उत्कार ही चित्त में नहीं रखने देना चाहिए ।

हिय का हमरा रूप अमिमान है । अमिमान भी कहा
मरकर दुर्गुण है । अमिमान के कारण मनुष्य दूसरे के सद्गुणों
को नहीं देख सकता, उनकी प्रशंसा नहीं कर सकता उन्हें अपमान
की तो बात ही पूर रही । जाति का अमिमान, कुल का अमिमान
वक् का अमिमान रूप, पन कुटुंब-परिवार आदि का अमिमान
और ज्ञान का अमिमान मनुष्य के पतन का कारण बनता है ।
अमिमानी मनुष्य ज्ञान जैम पवित्र गुण को भी जहर के समान
अहितकारी बना होता है । अमिमानी दूसरों को छोटा और
अपन को बड़ा समझता है, मगर मारी दुमिबा उस गुण्य और
भूयित समझती है ।

जहाँ अमिमान है वहाँ विमय नहीं और जहाँ विमय नहीं
वहाँ विवेक नहीं मुक्ति नहीं लक्षता नहीं पहुँचा नहीं, गुण
प्राप्तता नहीं । इस प्रकार विचार करने से विरहित होगा कि
अमिमान प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप म सब सद्गुणों को नष्ट करने
वाला है । वह अनेक अनर्थों का मूल है ।

जाति के अभिमान के कारण भारतवर्ष में क्या-क्या अर्थ हुए हैं, यह बात आज सभी को मालूम हो चुकी है । अछूतों का वर्ग इसी अभिमान के कारण उत्पन्न हुआ । बल और सत्ता के अभिमान ने रावण की कैसी दुर्दशा करवाई ? कहाँ तक कहें, अभिमान से होने वाली व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय हानियों का पार नहीं है ।

भाइयो ! अगर आप अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बनाना चाहते हैं तो द्वेष का परित्याग करें । द्वेष की आग में अपने आपको जलाना तनिक भी बुद्धिमत्ता नहीं है । द्वेष का दुर्गुण आपको पतन के गहरे गड़हे में गिराने वाला है । द्वेष की आग आपके समस्त सद्गुणों को जलाकर भस्म कर देगी । उससे आपका जीवन निष्फल हो जायगा ।

दूसरी आग राग की है । यह आग द्वेष की आग से भी सूक्ष्म है । द्वेष की आग अपेक्षाकृत जल्दी शान्त में जाती है, राग की आग देर तक बनी रहती है । 'रागी दोष न पश्यति' । जिसके अन्तःकरण में राग की प्रबलता है वह वस्तुओं के वास्तविक दोषों को भी नहीं देख पाता ।

एक सेठजी थे । वे दुकान से घर आये और सेठानी से बोले—जरा पसेरी उठा लाओ । कुछ सामान तोलना है । सेठानी सेठ के कहने से पसेरी उठा लाई । मगर पसेरी देने के बाद हाथ धोने और तेल मलने लगी । यह देखकर सेठजी ने पूछा—क्या हो गया ? सेठानी बोली—आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है; मगर पसेरी उठाने से मेरे हाथ में लचक (वायटा) आ गई है । अब

हो दिन तक यह हाथ अच्छा नहीं होगा। सेठ ने कहा-ओहो ! तुम्हें क्या कष्ट हो गया ! तब मुँह बिगाड़ती हुई सेठानी बोली- कुछ मत बुझिए ! मरा जी ही जानता है !

सेठजी विचार करने लगे-परीक्षा करनी चाहिए कि क्या वास्तव में ही यह इतनी मुश्किल है कि पसेरी छठाने में हाथ लचक गया है ? अथवा वह बहाना कर रही है ?

दूसरे दिन सेठजी अपनी दुकान में अर्धरात्रि सर सोना और कुछ अचानक लेकर सुनार की दुकान पर गये। उन्होंने सुनार को बहुत बढ़िया द्वार तैयार करने का आदेश दिया। साथ ही सूचना दी कि द्वार के बीच में फूल की बगल एक ऐसा पाना रखना कि वसमें पसेरी रखी जा सके। एक पैर रख देना जिससे वह पाना मुक सके और बंद भी किया जा सके।

सेठजी की हिदायत के अनुसार सुनार ने द्वार तैयार कर दिया। सेठजी ने उसे देखकर पसंद कर लिया और सुनार को आदेश दिया कि अब मैं घर पर मौजम करके आऊँ, इसे पर लाना। इस आदेश के अनुसार सुनार द्वार लेकर घर पहुँचा। वसने आवाज दी-सठ साहब ! आपका बेबर-तिहार है, मैं ले आया हूँ। सुनार भी आवाज सुनकर सेठजी से सठानी से कहा- सुनार से कह दो कि बेबर दुकान पर ही रेलेंगे।

सठजी का बचर सुनकर सेठजी तमक कर बोली-क्यों ? क्या मैं लाये जाती हूँ ? घर में बचर बने-धीरे मुझे रखने को भी मसीब न हो मला यह भी कोई बात है ?

सठ-इसमें बचन बहुत है। तुम उसे सहन नहीं कर सोगी।

सेठानी—यह कहिए न कि आप मुझे पहनाना ही नहीं चाहते ! नहीं तो क्या कारण है कि दूसरी कोई स्त्री उसे पहन सकती है और मैं नहीं पहन सकती ? क्या मैं मोम की घनी हूँ और दूसरी औरतें पत्थर की घनी है ? मैं उसे लाती हूँ और पसन्द आ गया तो मैं पहनूंगी भी ।

सेठ—तुम पहन सको तो भले पहनो । मुझे क्या ऐतराज है ? मगर वजन ज्यादा है । हाथ में लेते ही हाथ लचक जायगा तो तुम जानो ।

सेठानी आखिर हार ले आई । उसने गले में पहन लिया । काच में मह देखा तो फूल कर कुप्पा हो गई । सेठजी के पास आकर बोली—पसेरी कितनी भारी थी । उसके सामने यह फूल-सा हलका है । इसके बाद सेठानी अड़ौस पड़ौस में गई और अपनी सहेलियों को नया आभूषण दिखा आई । हार में रही हुई पसेरी धड़ाधड़ छाती में लग रही थी, लेकिन आभूषण के प्रति राग होने के कारण सेठानी ने तनिक भी कंष्ट अनुभव नहीं किया । जो मिला उसी को उसने अपना नया हार दिखलाया और अपने सौभाग्य पर अभिमान किया ।

सुना है, आजकल शहरों की औरतें हर महीने एक 'नया' फैशन निकालती हैं । वे दूसरी औरतों को दिखलाती हैं । वे देख और घर जाकर अपने-अपने पति से झगडती हैं कि हमारे लिए भी नये फैशन का जेवर बनवाओ ।

हाँ, तो सेठानी उस हार को पहन कर सब को दिखलाती फिरती है । सेठ उससे कहता है कि इसे उतार कर रख दो,

तुम्हारी गद्म दुकाने बगी होगी इस द्वार को तो कमला पार की तगड़ी बियाँ ही पहन सकती हैं, तो सेठानी नाराज होती है। यह कहती है—तुम तो मुझ से द्वार चीन्ना चाहते हो !

पों करत-करते इस-यन्त्रह दिन हो गये । मूँसे में इतना बोझा बटकाये रहने के कारण सेठानी की छाँसी में दर्द होने लगा । यह बहुत दुखती हो गई । मगर यह द्वार नहीं छोड़ना चाहती । सेठ कहता भी है तो यह कहती है—भरी, मैं दुखी नहीं हूँ । मैं तो मोटी हो रही हूँ ।

एक दिन सेठ ने कहा—इपर आधो तुम्हारा द्वार क्यों ।

सेठानी—भरी आप छे लेंगे तो फिर मैं क्या पहनूँगी ?

सेठ—भरी, द्वार नहीं लूँगा । इसका पाना बेसना है ।

सेठानी भारी । सेठ ने उसके पाने का पेंच ओझा और भीतर से पसरी निकाल कर कहा—यही है यह पंसेरी, जिसे तान में तुम्हारा हाथ लपक गया था । अब तुम्हें यह बजन्दार नहीं लगती ?

सेठानी—अरे राम ! मार डाला मुझे ! तभी तो मैं सोचा करती थी कि इस द्वार में इतना बज्जन क्यों है ? आपने गल्लब कर दिया । अब मैं इसे नहीं पहनूँगी ।

सेठ बोले—पंसेरी पर तुम्हें राग नहीं था और द्वार पर राग था । इसी कारण पसरी मारी माहूम हुई और बार-बार बजने पर भी द्वार का भार तुम्हें माहूम ही नहीं हुआ । यह राग की महिमा है । ठीक ही कहा है—'रागी दोष न परगति ।'

तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब रागान्ध हो जाता है तो उसे गुण-दोष नहीं सूझते । राग इस जीवन में व्याप्त होकर रहता है । धन-सम्पत्ति के प्रति, कुटुम्ब-परिवार के प्रति, भोगोपभोग की सामग्री के प्रति तथा अन्य मनोज्ञ प्रतीत होने वाले पदार्थों के प्रति मनुष्य के अन्तःकरण में राग का भाव विद्यमान रहता है । मगर यह राग भी द्वेष की ही तरह कर्मबन्ध का कारण है । अतएव जिम्न प्रकार राग त्याज्य है, उसी प्रकार द्वेष भी त्याज्य है । दोनों आत्मा में विकार उत्पन्न करते हैं । दोनों के कारण आत्मा में विभाव परिणति उत्पन्न होती है । जब तक आत्मा में राग और द्वेष का सद्भाव है आत्मा अपने असली स्वरूप को पूरी तरह नहीं देख पाता । गौतम स्वामी कितने ज्ञानी और महामुनि थे । मगर भगवान् महावीर के प्रति सूक्ष्म रागाश होने के कारण उन्हें केवलज्ञान नहीं हो रहा था । जब वह राग हटा तभी केवलज्ञान प्रकट हुआ । तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म राग भी आत्महित में बाधक ही होता है । ऐसी स्थिति में जिनके हृदय में स्थूल राग भरा पड़ा है, उनका कल्याण किस प्रकार हो सकता है ? अनन्तानुबन्धी राग के होते हुए तो सम्यग्दर्शन की भी प्राप्ति नहीं हो सकती । इसी कारण सर्वज्ञ भगवान् ने फरमाया है कि राग-द्वेष मनुष्य को नीच गति में ले जाने वाले हैं । दोनों ही कर्म बन्ध के कारण हैं । राग के कारण कभी-कभी आदमी मर भी जाता है ।

दो छियां पानी भरने गईं तो क्या देखती हैं कि जलाशय के तीर पर हिरन का एक जोड़ा मरा पड़ा है । यह देख कर एक ने दूसरी से पूछा—

नहीं पापी नहीं पारपी, नहीं कोई सागा बाध ।

मैं तुम्हें पूछूँ हे सखी ! क्या क्यों कर छाव्या प्राण ?

अर्थात्—यहाँ न कोई हतारा है न पारपी है और न इनको कहीं बाध का पाव ही लगा दिखाई देता है। फिर वह दोनों किस प्रकार मर गये ? तब दूसरी स्त्री ने कहा—सुन बहिन !

जब थोड़ा तिरपा बखी लगा प्रीति का बाण ।

तू पी तू पी कह मरे, एस छत्र के प्राण ॥

देखो, इस ललाच में पानी बहुत बोझा है और इस दोनों में प्रीति बहुत गाढ़ी थी। एक ने दूसरे से कहा—पहले तुम पापी पीओ। दूसरे ने पहले से कहा—सखी ! पहले तुम पीओ। दोनों प्यास में क्याकुत्र थे मगर पहले किसी ने पानी नहीं पीया। इस प्रकार राग क बरा होकर दोनों ने प्राण गँवा दिये।

स्नेह दुनिया में ऐसी ही चीज है। स्नेह के कारण भी कइयों को प्राण गँवा देने पड़ते हैं। राम और लक्ष्मण का स्वादरस कौन नहीं जानता ?

इन्द्रकोक में एक बार शङ्खुजी ने राम और लक्ष्मण की पारस्परिक प्रीति को सराहना करते हुए कहा—इन दोनों भाइयों में जितना स्नेह है, उतना कहीं अश्वत्थ नहीं दिखाई देता। दोनों भाइयों दो शरीर एक प्राण हैं। अर्थात् दोनों में इतना प्रगाढ़ प्रेम है कि एक के बिना दूसरे का जीवन रहना ही कठिन है।

शङ्खुजी की बात सुनकर एक रेश को संदेह हुआ। इसने दोनों भाइयों के प्रेम की परीक्षा करने का विचार किया।

वह अयोध्या में आया। जब रामचन्द्रजी कहीं बाहर गये थे तो देव ने विक्रिया से उनके कपड़े बना लिये। उन कपड़ों को खून से लथपथ करके वह लक्ष्मण के पास ले आया। उसने कहा—‘दुःख है कि रामचन्द्र का देहान्त हो गया है। मैं उनके कपड़े जगल में से उठा लाया हूँ।’

यह शब्द सुनते ही लक्ष्मणजी के मुख से एक चीख निकल पड़ी। उन्होंने उसी समय प्राण त्याग दिये। रामचन्द्रजी लौटकर आये और लक्ष्मण के प्राणान्त का समाचार सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो गये। अपने प्रियतम आता के वियोग में बावले होकर वे छह महीने तक लक्ष्मण का मुर्दा शरीर लिये फिरते रहे। देवताओं ने बड़ी कोशिश की तब कहीं उन्होंने लक्ष्मण के शव का परित्याग किया। मगर वे गृहससार में नहीं रह सके। विरक्त होकर साधु बन गये। तपस्या करने लगे।

अनेक स्त्रियाँ अपने पति की मृत्यु के पश्चान् स्नेह से प्रेरित होकर प्राण त्याग देती हैं। कभी-कभी तो एक के पीछे कई कुटुम्बी मर गये, ऐसे समाचार भी आते हैं। मतलब यह है कि जब राग प्रचल होता है तो विवेक नष्ट हो जाता है। विवेक नष्ट हो जाने पर मनुष्य कुछ भी अनर्थ करने में नहीं हिचकता।

भाइयो ! अगर आपको स्नेह ही करना है तो परमात्मा से स्नेह करो। परमात्मा के प्रति अगर प्रगाढ़ प्रीति करोगे तो मासारिक पदार्थों सबकी प्रीति हट जायगी और उसमें आत्मा का उत्थान और कल्याण होगा। परमात्मा से प्रेम न करके जो लोग मसार की वस्तुओं से प्रेम करते हैं, वे अपने लिए नरक का

द्वार खोलते हैं। इसी भय में वे अनेक अनर्थों के शिकार होते हैं। देख लो—

राग से फँदे पकड़ दे मत कोई करियो मोंठ ।

प्राप्त बिधाया राग स, हिरन सुन-सुन कर गीत ॥

इन्द्रिय के विषय पर राग करने के कारण हिरन को प्राप्त गँवाने पड़े। रात्रि व समस्त हिरनों की सोयी जंगल से बह कर शहर के नजदीक आ जाती है। एक दिन पिछली रात्रि के समय किसी बुढ़ियाने बखी पीसना शुरू किया। वह पीसती-पीसती हाकरा गीत गाती थी। एक दिन वह गीत सुन कर मोहित हो गया। दिन निकल आया। गीत से मस्त हुए हिरन को समय का भान ही नहीं रहा। घूमर हिरन माग गये मगर वह बड़ी मस्ती में मूँमता रहा। उधर एक शिकारी आता है और निशाना ठाक कर तीर मारता है। हिरन बायब हो जाता है और चूँटा है—

बिधाया था सा बिध गया मखबिध्या इपन्ठ ।

गाथा माता हाकरा, अब लग मान रहन्त ॥

मैं बाध से बिध गया हूँ और मर चुका हूँ। मगर ये बुढ़ी माँ अब भक मरे तन में प्राण है तब तक हाकरा गाये जा ।

यह है राग का माहात्म्य । राग और द्वेष दोनों ही कम बंध के कारण हैं। इनके प्रभाव से मन और आत्मा की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। इसी कारण शास्त्र में इन्हें कमों का बीज कहा है। राग और द्वेष-दोनों मिश्र कर ही कयाब चूकाते हैं। कोप

और मान द्वेष में तथा माद और लोभ राग में गिने जाते हैं । *
कषाय भाव ससार परिभ्रमण का कारण है । अतएव जो आत्मा
का कल्याण करना चाहते हैं उन्हें राग-द्वेष को निरन्तर घटाने
का ही प्रयत्न करना चाहिए । उन्हें अधिक न अधिक समभाव
की वृद्धि करनी चाहिए ।

सिर्फ परलोक में ही नहीं, बल्कि इस लोक में और इस
जीवन में भी जो जितना समभावी होगा, वह उतना ही सुखी
होगा । जो विवेकवान् पुष्ट सुख मिलने पर हर्ष नहीं मानता,
वह दुःख आ पड़ने पर शोक करने से बच जाता है । इष्ट संयोग
होने पर हर्षविभोर हो जाने वाला, इष्ट वियोग या अनिष्ट संयोग
के अवसर पर शोकमग्न हुए बिना नहीं रहता । अतएव ज्ञानवान्
जनों को चाहिए कि वे प्रत्येक परिस्थिति में समभाव धारण करें ।
कहा भी है —

होकर सुख में मग्न न फूले,
दुःख में कभी न घबरावें ।

तात्पर्य यह है कि राग और द्वेष से बचने का तथा
जीवन में शान्ति प्राप्त करने का एक मात्र मार्ग समभाव है ।
समभाव का फल बतलाते हुए कहा है —

समभावभावियप्पा लब्धं सुखं न संदेहो ।

अर्थात्—जिसकी आत्मा समभाव से युक्त है उसे मोक्ष
की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह के लिए कोई अवकाश नहीं है ।

अम्बुदुमार की कथा

आज अम्बुदुमार के अन्तःकरण में राग और द्वेष के विकार भाव बहुत पतले और इन्के पक्के गये हैं। जगत् के पदार्थों के प्रति समभाव जाग्रत हो गया है। जब विवाहिता सुन्दरियों में एक राग नहीं है और घर में बोरी करने के लिए आधे रुप्र प्रमद और पर द्वेष नहीं है। वे सबको समान भाव से देख रहे हैं। प्रमद से बहोने बहा-मार्ग। अन्तर्दि काष्ठ से यह जीव कुटुम्ब बसाता बसा आ रहा है। जगत् के समस्त जीवों को अमन्त-अमन्त पार इसने अपना कुटुम्बी बनाया है। मगर उनके सर्वत्र से न इस जीव का प्राप्ति हुआ और न इस जीव के निमित्त से बनका प्राप्ति हुआ। कुटुम्बी होने के कारण कोई किसी को जन्म मरणा के दुःख से नहीं बचा सकता। ऐसी स्थिति में इस जन्म के कुटुम्बी मेरा क्या निःस प्रचार कर सकेंगे? और मैं भी उनका क्या प्रचार कर सकूंगा? नाते रिस्ते शरीर के निमित्त से होत है और जब शरीर छूट जाता है तो सब रिस्ते समाप्त हो जात हैं। एक ही जन्म में एक दो, चार नहीं अठारह नाते तक हो जात हैं। यह बात मैं तुम्हें क्या द्वारा समझता हूँ।

कुम्भेरवत्ता आर्या बरपा के पास गई। उसने कहा—मैं तुम्हें नीरोग कर दूँगी। मैं तुम्हें दुःख पहुँचान नहीं, शान्ति पहुँचाने के लिए आई हूँ।

बरपा ने कहा—आम्मी कहीं दूसरी जगह जाकर पूजती दिखाया। यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है।

माम्मी—तुम्हें पोखी देर छहरने दो। मैं तुम्हारी शानि करी रहूँगी। कुछ कायदा ही पहुँचाऊँगी।

वेश्या — अच्छा एक काम करो । यह बच्चा रोता बहुत है । अगर इसको तुम खेला सको तो ठहर सकती हो ।

कुवेरदत्त के सयोग से वेश्या के उदर से एक पुत्र उत्पन्न हो गया था । साध्वीजी को, उसी बालक को खेलाने का काम वेश्या सौंप रही थी ।

साध्वीजी ने पतित आत्माओं को बोध देकर उनका उद्धार करने के निमित्त यह काम भी स्वीकार कर लिया । साध्वी का भाई कुवेरदत्त और वेश्या एक कमरे में चले गये और साध्वी बच्चे को हालरिया सुना कर कहती है —

भोले बच्चे ! चुप हो जा । मैं तुम्हें गीत सुनाती हूँ । मत रो बच्चे । मेरे-तेरे छह नाते हैं । तू मेरा देवर, भाई, काका, लडका, भतीजा और पोता लगता है । हम दोनों एक ही जननी से जनमे हैं, इस कारण तू मेरा भाई है । तू मेरे पति का छोटा भाई होने के कारण देवर है । मेरी सौत का लडका होने से तू मेरा लडका है । मैं तेरे बाप की बहिन हूँ इस कारण तू मेरा भतीजा है । हम दोनों (तेरी माँ और मैं) सौते हैं और तू मेरे लडके का लडका है, अतः तू पोता है । तू अपने बाप का भाई होने से काका भी है । दोनों की एक ही माँ होने से तू भाई भी है ।

साध्वी ने बच्चे के साथ जो रिश्तेदारियाँ बतलाई, उन्हें सुनकर कुवेरदत्त बोला—तू यह अटसंट क्या बक रही है ? पागल तो नहीं है ?

साध्वी ने मुस्किराते हुए कहा—नहीं, मैं पागल नहीं हूँ । इसी कारण ऐसा कहती हूँ । पागल को कहाँ ऐसी बातों का ख्याल

भी हो सकता है ? इस बच्चे के साथ ही नहीं, तुम्हारे साथ भी मेरे बह रिखे हैं—

तुम और मैं एक ही माता से जन्मे हैं अतः तुम मेरे भाई हो। तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ है, इस कारण तुम मेरे पति हो। यह बच्चा मेरा काका है और तुम इसके पिता हो। इस बच्चे तुम मेरे बाबा भी हो, मेरी माँ के पति होने के कारण तुम मेरे सुसरही हो। माँ के पति होने से तुम्हारे साथ मेरा पिता का भी संबंध है। साथ ही तुम सौत के बेटे होने से मेरे भी बेटे हो।

साम्बी की बात सुनी तो बरबा कुबेरसेना अंदर से जग कर भाई और बोर से बिस्ता कर बोली—क्या फिर तू बातें बक रही है ? भाग जा यहाँ से ! बरा क्या तो सही कि कैसे, वह पति का द्वारा है !

साम्बी शान्त रही। उसे सनिक भी आघेरा नहीं आया। पहले कहा—तुमने जज्जामे कितनों को भरक में भेज दिया है। अब तुमने क्यों माराब छोटी हो ? कटुक बचन मह बोली। तुम्हारे साथ भी तो मेरे बह रिखे हैं। तुम मुझे जन्म देने वाली मेरी माता हो। तुमने हम दोनों को पेटी में बंद करके कहा दिया था। क्या यह बात मूल गई हो ? वह मेरे भाई हैं और तुम मेरे भाई की पत्नी होने के कारण मेरी भावार्थ हो। तुम मेरे बाप की माँ होने के कारण मेरी दादी भी हो। इसके सिवाय तुम्हारे साथ मेरा सौत का भी संबंध है, क्योंकि हम दोनों का पति एक ही है। फिर तुम मेरी सासू भी तो हो क्योंकि तुम मेरे पति की माता हो। एक तरह से मैं तुम्हारी सासू भी हूँ। इतने रिक्त होने पर भी तुम मुझ अकसे भर से मगा रही हो ?

भाइयो ! अठारह नाते ब्रतलाकर साध्वी ने उस वेश्या से कहा—जरा सोचो, समझो, विचार करो । नखरे मत करो । यह नखरे यहीं खत्म हो जाएँगे । यह वैभव यहीं धरा रह जायगा । यह आभूषण पड़े रह जाएँगे । तुम्हें अनन्त काल तक यहीं नहीं रहना है । परलोक से आई हो और थोड़े ही दिनों में फिर परलोक जाना पड़ेगा । पहले किया सो अब भोगा है और अब जो कर रही हो सो आगे भोगना पड़ेगा । अभी थोड़ा समय है । चेतना हो तो चेत जाओ । बाजी हाथ से निकल जाने पर फिर पछताना पड़ेगा और पछताने से भी कोई लाभ नहीं होगा । तुमने अपने जीवन को अभी तक भ्रष्ट बना रक्खा है । तुमने अपने बेटे के साथ भी दम्पती का संवध बनाया है । इससे बढ़कर भ्रष्टा और क्या होगी । तुम्हारी आत्मा घोर पतन की ओर चली गई है । हे सयानी, अब तो समझ, सोच और हित का विचार कर ।

साध्वी का यह प्रतिषेध सुन कर वेश्या की अकल ठिकाने आ गई मोह का उन्माद दूर हो गया । और जब मोह का उन्माद दूर हो गया तो उसकी आँखें खुल गईं । आँखें खुल गईं तो अपने पिछले जीवन पिछले जीवन पर उसने दृष्टिपात किया । उसका हृदय कराहने लगा । दिल तड़प उठा । पश्चात्ताप की ज्वालाएँ धधक उठीं । वह फूट फूट कर रोने लगी । कुबेरदत्त भी लज्जा से मानों गड़ गया । उसकी संगी यहिन सामने खड़ी है और दोनों के साथ वह भ्रष्ट हो गया है । इससे बढ़ कर लज्जा की बात दूसरी क्या हो सकती है ? कुबेरसेना और कुबेरदत्त दोनों सोचने लगे—धरती, तू फट जा । मुझे जगह दे तो मैं उसी में धँस जाऊँ । हाय रे मोह ! तूने मेरी जिंदगी बिगाड़ दी ।

भाइयो ! जब तक अज्ञान का कासा परां बुद्धि पर पड़ा रहता है, तब तक अन्धकार-धुरारें दित अदित कुछ भी नहीं समझता । किन्तु जब कोई निमित्त पाकर भीतर के दीप प्रकट हैं तब वास्तविकता का पता चलता है ।

एक उस्ताद था । उनके पास गरीब और धमीर दोनों तरह के लड़के पढ़ने आते थे । उस्ताद ने लड़कों से एक दिन कढ़ा-सुमे शाक बनाने में बेरी हो जाती है । इसलिए तुम लोग बारी-बारी से एक-एक दिन शाक ले आया करो । ऐसा करने से मैं अपनी निपट आया करूँगा और तुम्हें क्या पढ़ाऊँगा । लड़कों ने यह बात संभ्रम कर ली । ब बारी-बारी से शाक लाने लग । एक दिन गरीब लड़क की बारी आई । उसने अपनी माँ से शाक बेन के लिए कहा । मगर उसकी माँ बोली-क्या बेना शाक तो हमें भी नसीब नहीं होता । कमी बनाएंगे तो मेज होंगे ।

लड़का मरगसे गया । उसने उस्तादजी से यह बिना-शाक तो हमें भी नसीब नहीं होता । कमी मेरी माँ बनाएंगी तो अन्न ले आएँगा । उस्ताद बोले-तालापक ! अच्छा कमी ख आना ।

एक दिन बाकक की माँ न कमी बनाई । कमी की बापक-बार कती मगर हुआ था कि बड़किस्मती से ऊपर से एक छिपकली उसमें आ पड़ी । पकड़ ही वह सर गई, क्योंकि उस समय कमी गरम थी । माँ ने देखा तो कहा-गलब हो गया ! उसे निकाल कर फेंक दिया गया । मगर माँ न कहा बैठा । अपने ने आँकों रेल किया है छिपकली का पकड़ा अतएव अपने कमी नहीं लाएंगे । तुम्हारे उस्तादजी शाक माँगते हैं न ? आज यह कमी कमी के लिए लेंते आओ ।

उसने एक ठीकरे में कढ़ी डालदी और ऊपर से एक चीथड़ा ढँक दिया । लडका कढ़ी लेकर उस्तादजी के पास गया । बोला— मैं आज कढ़ी लाया हूँ । उस्ताद बहुत प्रसन्न हुए । कहने लगे— लाओ वेटा ।

लडके ने कढ़ी का ठीकरा उन्हे पकड़ा दिया । उस्तादजी भोजन करने बैठे । उन्होंने कढ़ी चखी तो बोले—वाह वाह ! बड़ी बढ़िया ज़ायकेदार कढ़ी बनी है । इतनी बढ़िया कि जी चाहता है, उगली भी खा जाऊँ । अरे छोकरे ! तेरे घर ऐसी कढ़ी बनती है और कहता है कि मेरे यहाँ शाक ही नहीं बनता ?

लडका बोला—उस्तादजी ! यह तो किसी कारण से आ गई है । उस्ताद ने कारण पूछा । लडका बेचार भोला-भाला ठहरा । जो बात बीती थी वही उसने साफ-साफ बतलादी । बात सुनते ही उस्तादजी का पारा एकदम गरम हो गया । छोकरे को फटकारते हुए बोले—नालायक ! बेईमान कहीं का ! मेरे लिए छिप-कली की कढ़ी लाया है । और गुस्से से घावले होकर कढ़ी का ठीकरा लडके को दे मारा ।

लडके को चोट नहीं लगी थी, मगर वह सिसक-सिसक कर रोने लगा । उसे रोते देख उस्तादजी ने पूछा—अबे नालायक, रोता क्यों है ? क्या सिर में घाव हो गया है ?

लडका बोला—इधर तो आपने मारा और उधर मेरी माँ मुझे मारेगी । उस्तादजी—क्यों तेरी माँ क्यों मारेगी ?

लडका—यह ठीकरा जो फूट गया है ? माँ इससे मेरे छोटे

मार्ग की दृष्टि साफ़ किया करती थी। अब-बढ़ करेगी-नू ज़ेबरा पंख काया !

बस्ताइती मन ही मन मोथने लग-यह तो बिगाड़ी में थी बिगाड़ी !

माइनों ! अब तक मनुष्य को सच्चाई का पता नहीं लगता, तब तक वह ऊपरी बातों में मग्न रहता है। अब सच्चाई का पता लग जाता है, अन्तःकरण में बिबक आग छूटता है तो भ्रम मार्ग जाता है। तब वह पाप को देख और पुण्य को उप-देख समझने लगता है।

बेरबा का जीवन भी बिगाड़े में बिगाड़ा साबित हुआ। जब उसे साप्सी के कर्ज पर सच्चाई का पता लगा तो उसका भ्रम दूर हो गया। वह उन्मादाप की आग में बुरी तरह लपके लगी।

मैंने एक दिन कहा था कि मनुष्य का जीवन एक बीराहा है। बीराहे पर प्रकार-स्तंभ लगा रहता है और इस प्रकार में चारों ओर आने वाले गस्ते दिखाई देते हैं इसी प्रकार मनुष्य जीवन से चारों गतियों के लिए रास्ते जाते हैं। मनुष्य चाहे तो बेवगति का रास्ता पकड़ सकता है चाहे तो मनुष्य गति का मार्ग पकड़ कर सकता है चाहे तो तिर्यक-गति की तरफ़ भी कदम बढ़ा सकता है और नरक-गति का भी मेहमान बन सकता है। शास्त्र और सन्तुष्ट ह-नी प्रकार इस बीराहे पर मौजूद है। चारों गतियों का मार्ग इस प्रकार में देखा जा सकता है। आप वह भी जान सकते हैं कि किस गति में जाने से क्या हासल होगी ? जिन्हें सुकमय हासल प्राप्त करनी है उन्हें बेवगति और मनुष्यगति

की राह पकड़नी चाहिए, अर्थात् धर्म-कर्म करना और पापों से वचना चाहिए। पाप पहले मले लगते हैं पर अन्त में बहुत बुरे साधित होते हैं। बौद्धग्रन्थ में कहा है —

पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति ।

यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥

भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति ।

यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति ।

अर्थ—जब तक पाप का फल नहीं मिलता तब तक पापी पाप को कल्याणकारी मानता है—पाप ही उसे अच्छा जान पड़ता है, पर जब पाप का फल मिलता है, तब उसे पाप का असली स्वरूप दिखाई देता है। मगर पुण्य के विषय यही बात उलटी है। पुण्य-आत्मा को जब तक पुण्य का फल नहीं मिलता तब तक उसे पुण्य बुरा लगता है। और जब पुण्य का फल प्राप्त हो जाता है तब उसे पुण्य का असली-सुखमय-स्वरूप प्रतीत होने लगता है।

इस प्रकार साध्वीजी से प्रतियोध पाकर वेश्या रोने लगी। साध्वीजी ने कहा—रोना भी पाप है। हाँ, अगर तुम्हारे अन्त-करण से यह आँसू निकल रहे हों और अन्त-करण का मैल इनसे धुल गया हो तो पिछली बातों को भूलकर आगे का विचार करो। 'गई सो गई अथ राख रही को।' अगर तुम अपने भविष्य को सुधारने में लग जाओ तो तुम्हारा रोना-सार्थक हो सकता है। रोते रहने से या क्षण भर रो कर फिर वही रास्ता अख्तियार

कर सन सं कुछ भी काम नहीं है, बरिष्ठ छलटा पाप का ही बंध हाता है।

आदिग कुबरसना बरया साप्पी बन गई। कुबरसना ने भी संयम धारण कर लिया। बान्ध ने अपने जीवन की मसीनता को संयमरूपी अक्ष से धा बाता। दोनों अथ पवित्र जीवन व्यतीत करने लग। माइयो, सुषह का मूचा शाम तक पर आ जायता भूना ही कहलता। हलुर्मी जीव अन्ही सुपर खाते हैं। उत्तम पुइयो का यही फलफ है। जीवन में कमी-कमी बड़ी रिषम परिस्थितियों लड़ी हो जाती हैं। अज्ञान के कारण ममानक मूहो हो जाती हैं। मगर ज्ञान हाते ही कन्ध पीरन सुधार खने में ही कुप्रसता है।

साप्पी कुदेरसता, बेरया को अपनी गुदणी के पास ले आई। वहाँ पहुँच कर बसने अस्त-करण से अपने पापों की आलोचना की और अपने हृदय को निर्मल बना लिया। फिर यथाविधि दीक्षा धारण कर ली।

माइयो ! कारीगर कितना ही कुछ कर्मों न हो, अगर मिट्टी अच्छी न हो तो वह अच्छी चीज़ नहीं बना सकता। कारीगर भी अच्छा हो और मिट्टी भी अच्छी होतो चीज़ भी अच्छी बन सकती है। बेरया को अच्छा निमित्त मिल गया और स्वयं हलुर्मी की अठ उसमे सहज ही अपना जीवन सुधार किया।

अबूझार प्रमथ जोर से कहते हैं—प्रमथ माई ! संसार के माते-रिस्त इस प्रकार के हैं। कोई एक भी प्राणी तो ऐसा

तर्ही हैं, जिसके साथ अनन्त नाते न हो चुके हों । फिर किस-किस के साथ प्रीति करे और किस-किस से न करे ? किसको अपना समझे और किसे पराया माने ? ऐसी स्थिति में सर्वश्रेष्ठ यही है कि सब प्राणियों पर समान भाव रखना चाहिए । सब पर समान भाव वही रख सकता है जो पूर्ण संयम का पालन करे । प्राणी मात्र के प्रति अस्मीयता की भावना रखने के लिए पूर्ण अहिंसा का पालन करना अनिवार्य है और पूर्ण अहिंसा का पालन करने के लिए साधुपना स्वीकर करना अनिवार्य है । क्यों कि बड़े से बड़ा धर्मात्मा गृहस्थ भी पूरी तरह हिंसा से नहीं बच सकता । इस तरह विचार करने से मालूम होगा कि मैं अपने सबधियों का त्याग नहीं कर रहा हूँ, वरन् जिन सबधियों को अभी त्याग रक्खा है, उनसे फिर सबध स्थापित कर रहा हूँ । अर्थात् अभी तक कुटुम्ब के थोड़े से आदमियों को ही अपना सात रहा था, अब मैं जगत के एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के समस्त प्राणियों को अपना समझूँगा । मैं आत्मीयता की भावना का चरम विस्तार करना चाहता हूँ । इसमें किसी को कोई भी हानि नहीं है । कुटुम्ब-परिवार की इन सकीर्ण भावनाओं को त्याग कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदार भावना को अपनाना चाहता हूँ ।

जम्बूकुमार का यह कथन सुनकर प्रभुव बहुत प्रभावित हुआ । वह कहने लगा—वस, मैं समझ गया । कुटुम्ब-परिवार की सकीर्ण भावना झूठी है और दुर्ज्ञिया झूठी है । मगर एक सशय मन में अब भी घुसा है ।

जम्बू०—कहो, वह भी कहो ।

प्रमथ-जिसके पुत्र नहीं होता, उसे स्वर्ग नहीं मिलता है ।
क्या भी है—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च ।
तस्मात्पुत्रद्वयं हर्षा, स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ॥

मैंने कई विद्वानों के मुँह से सुना है कि जो मनुष्य निपूठा
मर जाता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती है । पुत्र का सुख देकर
जेने के बाद ही मनुष्य स्वर्ग पात है ।

हे कुमार ! अगर वह सिद्धान्त सच और सच्चा है तो अभी
दीक्षा लेने से आपको स्वर्ग नहीं मिल सकेगा । इसलिए एक पुत्र
का जन्म होने दीजिए । उसके तत्पश्चात् आपकी वैसी इच्छा हो,
कीजिए ।

अम्बुदुमार की पत्नियाँ लड़ी-लड़ी सोचती हैं—यह हमारी
तरफ से अच्छा बहीर पड़ा हो गया है । हमारा धरना भी यही
है कि एक बड़का पुत्र का अकस्मिक होने के पश्चात् आप मोक्ष
को जोरकर अधिराज बनना ।

अम्बुदुमार ने कहा—प्रमथ ! तुम कहते हो कि निपूटे को
स्वर्ग नहीं मिलता । मगर मैं कहता हूँ—

अमेघानि सहस्राणि कुमारव्रजचारिणाम् ।
दिदं यतानि विप्रायामकृत्वा कुसुम्यतिस्मि ॥

हमारे—लाखों मनुष्य बिना पुत्र के, व्रजचारी रह कर स्वर्ग
में चले गये हैं । तुम्हें यही के जैन-सा लड़का बा ! तो क्या वे

नरक में गये हैं ? और राजा श्रेणिक के कई लडके थे, लेकिन वह नरक में जाने से नहीं बच सके । वास्तविक बात तो यह है कि पुत्र या कुटुम्बीजन किसी को स्वर्ग नहीं दे सकते । प्रत्येक जीव को अपनी करणी का फल भोगना पडता है । जो नरक के योग्य कर्तव्य करेगा उसे स्वर्ग नहीं मिलेगा । जो स्वर्ग में जाने योग्य कर्तव्य करेगा वह नरक में नहीं जायगा । अपने किये पुण्य-पाप के अनुसार ही सब जीवों को शुभ और अशुभ फल प्राप्त होता है । दूसरों के देने से स्वर्ग और नरक मिलता हो तो अपनी करणी क्या काम आएगी ? फिर तो शुभ-कर्म का और अशुभ-कर्म का कोई फल ही नहीं होगा ! आचार्य फरमाते हैं —

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ॥

अर्थात्—इस आत्मा ने शुभ या अशुभ—जैसे भी कार्य पहले किये हैं, उनके अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है ।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं ।
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥

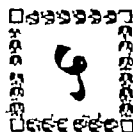
अगर जीव दूसरे के दिये भले-बुरे फल को भोगने वाला हो तो अपने निज के किये कर्म निरर्थक हो जाएँगे ।

प्रभव ! जरा विचार तो करो कि जो मनुष्य जीवन पर्यन्त पापकर्म में लगा रहा है, जिसने कभी कोई सुकृत नहीं किया, जिसकी भावना निरन्तर मलिन ही बनी रहती है और जो दया दान, परोपकार, क्षमा, सतोष, शील, प्रभुमजन-आदि कोई भी

युम कल्प नहीं करता, वह सिर्फ पुत्र पैदा करके जैसे स्वर्ग पा सकता है ? इसके विपरीत जिसने जो जीवन ब्रह्मचर्य जैसे महान् प्रवृत्ति का वास्तव किया है जिसने पोर तपस्या की है, जिसने समस्त कामनाओं से अतीत होकर लक्ष्मी भेदी की साधना की है, क्या वह सिर्फ पुत्र न होने का कारण लेकर का पात्र बनेगा ? नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता । ऐसी व्यवस्था मान ली जा परिणाम यह होगा कि संसार से सदाचार की प्रतिष्ठा ठेठ जायगी और दुष्टाचार का बीरबीर हो जायगा । जब लोग समझ लेंगे कि ईसा ही दुष्टाचार का पुत्र पैदा करने से स्वर्ग सिद्ध जायगा, तो वे सदाचार को तिर्य्योक्ति लेकर पुत्र पैदा करके ही स्वर्ग चाहने लगेंगे । फिर संसार के सभी धर्मशास्त्रों में और नीति के शास्त्रों में सदाचार का जो उपदेश दिया है, उसे कौन पूरेगा ? कौन उसे अपनाएगा ? इसलिए, प्रमथ ! इस गलत धारणा का परित्याग कर देना ही बेमरक है । स्वर्ग-मरक की प्राप्ति अपने युम अशुभ कर्तव्य से ही होती है । चेठा बलि 'का कोई ब्रह्मचर्य नहीं कर सकता । इस अर्थ में ही जब बाप बीमार होता है तो चेठा उसके कष्ट को नहीं मिटा सकता तो परलोक का कष्ट कैसे मिटा सकेगा ?

हे प्रमथ ! जो इस प्रकार विचार कर युम अनुग्रह में प्रवृत्ति करता है, वह आत्मन् ही आत्मन् पाता है ।

स्वाम-ओषपुर }
ता० २६-८-४८ }



सत्संगति



स्तुतिः—

रक्तेक्षणं समर्दकोकिलकण्ठनालिम् ।

क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमोपतन्तम् ॥

आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक ।

स्त्वन्नाम नागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ? प्रभो ! आपके नाम की महिमा का कहाँ तक बखान किया जाय ? जिस पुरुष के हृदय में आपका नाम रूपी नागदमनी औपधि है, वह लाल-लाल आँखों वाले,

मत्तयात्री कोयल क कंठ के समान कासे, श्लेष्म स चट्ठन, चम्प
छेबा उठाकर सामन आने बसत मयानक सोंप को भी, निर्मल
होकर सोंप जाता है । आपके नाम के शोभोत्तर प्रमाण से बसका
दुष्ट भी नहीं बिगड़ सकता ।

प्रमा ! महापूबक आपके नाम का पाप करने से मरकर
से मरकर विप्रेक्ष सरे का भी विप बेवसर हो जाता है । इ भारि
मय ! आपके ही हमारा बार-बार ममस्कार है ।

माह्यो ! भगवान् भूपमदेव क नाम में अपूर्व शक्ति है
मगर आपके अन्तःकरण में भगवान् के प्रति भक्ति शक्ती बाह्य।
तभी वास्तविक फल की अभिव्यक्ति होती है । अपनी भक्ति के
बिण धिक् ईश्वर की शक्ति से हमारा निस्तार नहीं हो सकता ।
सूर्य प्रकाश पैठाता है, चन्द्रमा अपने सौम्य प्रकारा से अन्त को
आलोकित कर देता है, वीपक भी अपनी शक्ति क अनुसार धंध
कार को दूर करता है, मगर इन सब प्रकारों का काम नहीं उठा
सकता है जिसके नेत्र झुके हों । धिक् के बिण यह सब प्रकारा
व्यर्थ हैं । वह इनसे कोई काम नहीं उठा सकता । मत्तयात्र यह
है कि सूर्य का प्रकारा पद्यि अंधकार को नष्ट कर देता है,
फिर भी अपने नेत्रों को तो कोकमा ही पड़ेगा । इसी प्रकार
भगवान् के नाम की शक्ति अपरिमित फल प्रदान करने वाली है
फिर भी भक्ति तो हृदय में होनी ही बाह्य। भक्ति के बिना फल
की प्राप्ति नहीं हो सकती । भगवान् का नाम सोंप के जहर को
भी दूर कर देता है । यह कोई अहमुक्त बात नहीं है । क्योंकि
भगवान् की शक्ति इसमें भी बहुत बढ़ कर है । भगवान् का नाम
अपने से पाप हरी जहर की जो जन्म-जन्मान्तर में मारने वाला

है, नष्ट हो जाता है। साप का विष एक ही जन्म में वेसुध बनाने वाला और प्राणों का अन्त करने वाला है, परन्तु पाप का विष न मालूम कितने भवों तक प्राणघातक कष्ट दिया करता है। जब भगवान् के नाम स्मरण से पाप का विष भी दूर हो जाता है तो साप का विष दूर हो जाय, यह कौन बड़ी बात है ?

यों तो पाप और पुण्य मन, वचन और काय—तीनों योगों द्वारा होता है और तीनों योगों से होने वाले पाप का त्याग करना चाहिये, मगर विचार करने पर साफ मालूम हो जाता है कि इस त्रिपुटी में मन की प्रधानता है। मन राजा है और वचन तथा काय उसके अनुचर हैं। वचन और काय मन्के अधीन हैं। मन उन्हें जो आदेश देता है, उसी का वे पालन करते हैं। इसी-लिए कहा गया है —

मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयोः ।

अर्थात्—वध का कारण भी मन ही है और मोक्ष का कारण भी मन ही है।

यहाँ एकान्त मन को ही वध-मोक्ष का कारण बतलाया है, इसका आशय यही समझना चाहिए कि मन वध-मोक्ष का प्रधान कारण है। सब से पहले मन में कोई विचार उत्पन्न होता है। वही विचार फिर वचन और तन को प्रेरित करता है। मन चलाने वाला है और वचन तथा काय चलाने वाले हैं। अतएव सब से पहले मन को साधना आवश्यक है। मन के सध जाने पर वचन और काय को साध लेना सरल हो जाता है।

मन, बचन और काव की प्रवृत्ति को पूरी तरह रोक देना प्रत्यक्ष के लिए संभव नहीं है। आप हाथ-पैरों को बिना दिक्कतों के हलके हलके दर रह सकते हैं, बिना कोठ भी रह सकते हैं, अगर मन की इच्छा को नहीं रोक सकते। मन तो प्रतिपक्ष व्येकपुन में लगा ही रहता है। ऐसी हादस में आपको क्या करना चाहिए, इस प्रश्न का व्यावहारिक उत्तर यह है कि आप मन, बचन, काव का पूर्ण निरोध करने का आश्रय अपने सामने रखिये। अगर जब तक बन्धन पूरा निरोध नहीं हो पाता तब तक कभी अशुभ प्रवृत्ति को रोक दीजिए। शुभ प्रवृत्ति में लगाये रहने से कभी अशुभ में प्रवृत्ति रुक जायगी। फिर किसी समय ऐसी ऊँची भूमिका भी आप प्राप्त कर लेंगे जब पूरी तरह प्रवृत्ति रुक जाय। इसलिये सदैव सावधान रहो और अपने की चौकसी जारी करते रहो। वधमें कभी विकार रूपी चोर न घुसने पावे। कभी हठानु प्रवेश कर भी जाय तो विवेक रूपी दीपक को लेकर उसे कोशे और ठक्का बाहर निकाल दो।

साहबो ! पुरे विचारों में मन की प्रवृत्ति मल होम दो। इससे निरर्थक ही पाप का बोझ कम जाता है। अगर आप अपने मन में सद्बिचार ही रखेंगे तो आपकी जीभ स्वयं दिव्य और सधुर भाषा ही बोलेंगी और आपका शरीर अच्छे काम में ही लगेगा। इस तरह तीनों योगों की शुभ प्रवृत्ति से आपका जीवन ऊँचा चलेगा। जब आपका जीवन ऊँचा उठ जायगा आपका मन पवित्र बन जायगा और आपके संशय में दिक्कत आ जायगी तो आपका संसार निराका रूप धारण कर लेगा। श्रीमद् आचार्यसूत्र में कहा है—

जे आसवा ते परिसवा,
जे परिसवा ते आसवा ॥

जिसका मन पूरी तरह वश में हो गया है, उसके लिए आस्रव के कारण भी निर्जरा के कारण बन जाते हैं। जिनका चित राग-द्वेष आदि कषायों से कलुषित है, उसके लिए निर्जरा के कारण भी आस्रव के कारण बन जाते हैं।

आस्रव के कारण किस प्रकार निर्जरा के कारण बन सकते हैं ? यह जानना हो तो राजा सयती की घटना पर विचार करो। सयती राजा शिकार खेलने के लिए जंगल में गया था। उसने हिरन को तीर मारा। यह आस्रव का ठिकाना था। मगर वहाँ मुनिराज का अचानक समागम हो गया तो आस्रव की जगह सवर हो गया।

जीवन में सगति का बहुत गहरा असर पड़ता है। नीति में कहा है —

संसर्गजा दोष-गुणा भवन्ति ।

अर्थात् कोई व्यक्ति जन्म के साथ गुणों और दोषों को लेकर नहीं आता, वरन् संसर्ग के कारण ही उसमें दोष और गुण उत्पन्न हो जाते हैं। कंसार्ज के घर पैदा होने वाला बालक संसर्ग-दोष से ही निर्दय, निष्ठुर और क्रूर हो जाता है। धर्म-निष्ठ श्रावक का बालक बचपन से ही दयालु, कोमल-हृदय होता है। इसका प्रधान कारण सगति ही है। सत्-संगति से अनायास ही दोष नष्ट हो जाते हैं और सद्गुणों का विकास होता है। असत्संगति

समस्त सद्गुणों का संहार करने वाली और दोषों का पोषण करने वाली है।

विरोपतया साधु-संतों की संगति से हो मन्दा काम जाता है। कहा भी है—

चन्दनं शीतलं शोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः ।

चन्द्रचन्दनयामभ्ये, धीतसा साधुसंगतिः ॥

चन्दन शीतल होता है और चन्द्रमा की अपेक्षा दिन भर सूर्य की प्रकाश किरणों से संतप्त मनुष्यों के लिए चन्द्रमा की अप्सृतमयी किरणों और भी शीतल मान्य होती है। मगर साधु दोनों की संगति चन्द्रमा और चन्दन से भी अधिक शीतल होती है। इसका कारण यह है कि चन्दन और चन्द्रमा सिर्फ शारीरिक संताप को ही मिटाते हैं, मगर साधुसमागम अस्तित्व के ताप को भी निवारण करता है। साधु-संगति से तीन ताप गह हो जाते हैं। राग-द्वेष आदि से उत्पन्न होने वाला दुःख आध्यात्मिक ताप कहलाता है, मृत विराज दुर्दैव, शक्ति आदि के हाथ होने वाला दुःख अधिदैविक ताप कहलाता है और राज, कंटा आदि के कानने से होने वाला कष्ट अधिमायिक ताप कहा जाता है। इन तीन तापों को दूसरे राज्यों में शारीरिक और मानसिक दुःख भी कह सकते हैं। साधुभा के समागम से इन सब कष्टों का भन्त आ जाता है। दूसरे नीतिकार कहते हैं—

आर्घ्यं दद्याद्दत्तिं सिञ्चति दाने सत्यं,

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

सत्पुरुषों की सगति करने से बुद्धि की जड़ता चली जाती है, वाणी में सत्य आ जाता है, मान-सम्मान की वृद्धि होती है, पाप दूर हो जाता है, चित्त में प्रसन्नता पैदा होती है, चारो ओर कीर्ति फैलती है, अरे सत्सगति करने से क्या-क्या नहीं होता ? सत्सगति से सभी मनोरथ पूरे हो जाते हैं । इसके विपरीत कुस-गति से आत्मा में अनेक दोषों की उत्पत्ति होती है और सद्गुणों का विनाश होता है —

पात्रमपात्रीकुरुते, दहति गुणं स्नेहमाशु नाशयति ।
अमले मलं नियच्छति, दीपज्वालेय खलमैत्री ॥

अर्थात्—दुष्ट जनों की सगति से सुपात्र भी अपात्र बन जाता है । वह समस्त सद्गुणों को भस्म कर डालती है । स्नेह को शीघ्र ही नष्ट कर डालती है और निर्मल को भी मलिन बना देती है । खल जनों की मित्रता सचमुच ही दीपक की ज्वाला के समान है । दीपक की ज्वाला भी पूर्वोक्त सभी कार्य करती है ।

सगति अमोघ है । प्रायः उसका फल मिले बिना नहीं रहता । सत्सगति पाकर भी अगर कोई नहीं सुधरता तो समझना चाहिये कि वह बड़ा ही अभाग है और कुसगति में रह कर भी यदि कोई नहीं बिगड़ता तो समझ लीजिए कि वह अत्यन्त भाग्यशाली है ।

संगत पा सुधरे नहीं, जाका बड़ा अभाग ।
या कुसंग बिगड़े नहीं, ताका बड़ा सुभाग ॥

वेलिए, स्फूर्ति भद्र महाराज बरवा भी संगति में यह, जानबूझ कर उसक पर में यह, फिर भी बतका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि वे बिगड़े नहीं। उन पर वेरवा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा मस्तुत बरवा ही उनसे प्रभावित हुई। जिनके चित्त पर पापियों का रंग नहीं बढ़ता बल्कि जो अपना रंग पापियों पर बढ़ा देते हैं, उनसे बढ़कर भाग्यशाली और भैरव होगा। कई लोग जिनका व्यक्तित्व प्रबल होता है और जिनके सद्गुण बहुत गहरे होते हैं। दुरे संग में यह कर भी नहीं बिगड़ते। इस विषय में कहा जाता है—

सखे सद्गुरु मित्र गये, कहा करै कुसंग ।

बेदन विष व्यापै नहीं छिपटे रहें मुसंग ॥

देखो, जन्म के बूझ पर सप लिपटा रहता है, फिर भी जन्म बूझ उसके विष को ग्रहण नहीं करता है। कई अच्छे व्यापारी कुसंग पाकर भी नहीं बिगड़ते हैं। कुसंग और सुसंग पर पौराणिक श्रिक है—

मधुरा नगरी में एक राजा था। उनका नाम कमसेन था। राजा कमसेन एक दिन जंगल में शिकार खेलने गये। वहाँ उन्हें एक तपस्वी महात्मा मिल गये। राजा ने उन्हें आगले दिव अपने वहाँ भोजन करने का निर्मंत्रण दिया। महात्मा ने कहा—कल भी कल से इसी आगली। हम आज, कल का निर्मंत्रण नहीं मानते।

दूसरे दिन महात्मा राजा के महल में गये। उनके मास-कमण का पारखा था। जब महात्माजी वहाँ पहुँचे तो देखा कि राजा वहाँ मौजूद नहीं है। बर दूसरे काम में लगा हुआ था।

और महात्माजी के आने का उसे खयाल नहीं रहा था। महात्मा लौट आये। उन्होंने नियम ले रक्खा था कि एक महीने वाद ही पारणा करेंगे और भिक्षा के लिए सिर्फ एक ही घर जाएंगे। वहाँ भिक्षा मिल गई तो मिल गई, न मिली तो दूसरे घर भिक्षा के लिए नहीं जाएंगे।

उक्त महात्मा को जब राजा के घर भिक्षा न मिली तो वह वापिस लौट गये और दूसरे महीने की तपस्या का उन्होंने प्रत्याख्यान कर लिया। राजा फिर उनके पास गया। उसने अपनी गलती के लिए पश्चात्ताप किया, क्षमा-प्रार्थना की और फिर अगले पारणे के दिन राजमहल में पधारने की प्रार्थना की। महात्माजी लगातार दो महीने के अनशन-तप के पश्चात् फिर राजा के यहाँ पहुँचे। मगर रोज मौके पर वह फिर किसी दूसरे काम में लग गया। महात्मा फिर लौट आये और उन्होंने तीसरे महीने की तपस्या का पञ्चखाण कर लिया।

अब की बार राजा को और अधिक पश्चात्ताप हुआ और साथ ही तपस्वी को भी क्रोध उत्पन्न हुआ। तपस्वी सोचने लगा राजा मेरे साथ निन्द्यता-पूर्वक खिलवाड़ करता है। कितनी क्रूर खिलवाड़ है यह। उसे मालूम है कि मैं एक महीने के वाद सिर्फ एक ही घर में पारणा करने के उद्देश्य से प्रवेश करता हूँ। वहाँ भिक्षा न मिले तो दूसरे घर में नहीं जाना। यह जानता हुआ भी राजा इतनी उपेक्षा करता है। पहले धामत्रण देता है, फिर भूल जाता है। वह मेरी जिंदगी के साथ मखौल करता है। मेरे प्राणों के साथ खेल खेलता है।

तपस्वी इस प्रकार सोच ही रहें थे कि राजा फिर आर्य ब्रह्म देन आ पहुँचा । तपस्वी ने अपने दुर्बल शरीर की बाह-बाह धौलें निकालते हुए कहा—बड़, इट आ यहाँ से । मैं तेरा विरहग्रस्त म मूर नहीं करता । यदि मरी तपस्वा का कोई पक्ष हो तो मैं तेरे विष दुग्ध का कारण बनूँ । ठीक ही कहा है—

श्लेष से तपस्वी की तपस्वा चक्षु में होय विनाशनी ।

तपस्व करते हुए समामात्र पाण्डु करने से बड़ा धम होता है । मगर अकसर एका जाता है कि तपस्वी में जमा होना दुःख है ।

बड़ तपस्वी श्लेष करके मर गया भीर राजा जमसेन की रानी की कूक में उत्पन्न हुआ । जब रानी का गर्भ तीन महीने का हुआ तो गर्भस्थ जीव के प्रभाव से कई मर्ममें काँधी हो गई । जमसेन के चित्त को बलेश पहुँचाने वाले कई कारण तपस्वित हो गये । धीरे-धीरे नौ महीने पूरे हुए । पुत्र का जन्म हुआ तो उसका नाम कंस रक्खा गया । एक काँधी भी उत्पन्न हुई । उसका नाम सत्यमाता हुआ । कंस पूर्व जन्म का तपस्वी हूँ भीर पिता का हँपी है । अग्नि तपस्वा के प्रभाव से तेजस्वी है । बड़ बचपन से ही बड़ा धम बरह भीर बलेशविष है ।

श्लेष करते हुए मरने से यही इच्छा होती है । श्लेष बहुत बुरी चीज है । भाइयो श्लेष में कोई मत मरना । सुतु के समय लूँ शान्ति और लूँ सहभाव दाम्य चाहिये । कंस सत्यमत महात्मक भीर प्रबल शत्रु है । क्या है—

कोहो पीइ पणसेइ, माणो विणयनासणो ।

माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सन्नाविनासणो ॥

--दश० अ० ८, गा० ३८

जब अन्त करण में क्रोध की आग सुलगती है तो उसमें प्रेम-प्रीति का सर्वथा अभाव हो जाता है। स्नेह का समस्त सद्भाव भस्म हो जाता है।

कस बड़ा हो गया। वह वसुदेवजी के सब कामों में अगुवा बन गया। कस के काका की एक कन्या थी, जिसका नाम देवकी था। कस ने सोचा—अगर वसुदेवजी के साथ देवकी का सबध बैठ जाय तो इनके साथ मेरा और भी घनिष्ठ सबध हो जायगा। यह सोचकर उसने यथोचित उपाय करके दोनों की सगाई तय कर दी। वसुदेवजी की एक पत्नी रोहिणी थी। अब दूसरा विवाह देवकी के साथ हो गया। देवकी के पिता का नाम देवक था। देवक ने जब देवकी का विवाह किया तो अच्छा खासा दहेज दिया। दहेज में राजा नद को भी दे दिया और दस गोकुल भी दिये। नद अहीरों में मुखिया था और यमुना के परले पार गोकुल गाँव उसी के कब्जे में था। नद वसुदेव का बड़ा प्रेमी था।

कस का विवाह उस समय के प्रतापी राजा जरासंध की लड़की जीवयशा के साथ हुआ। जब हथलेवा छोड़ने का समय आया तो उससे पूछा गया—क्या चाहते हो ?

इस समय कस के हृदय में अपने पिता उग्रसेन के प्रति द्वेष जाग उठा। पूर्वजन्म का बदला लेने की भावना उसके मन

तपस्वी इस प्रकार सोच ही रहे थे कि राजा फिर धर्म प्रण बन आ पहुँचा । तपस्वी ने अपने दुबल शरीर की ठाढ़-ठाढ़ ओंखें निकालते हुए कहा—बल, हट आ यहाँ से । मैं तेरा विरगण्य न करूँगी । यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं तेरे लिए दुःख का कारण बनूँ । ठीक ही कहा है—

क्रोध से तपस्वी की तपस्या चर में होय विनाशनी ।

तपस्या करते हुए कमामाव धारण करने से बड़ा बल होता है । मगर अकसर ऐसा आता है कि तपस्वी में कम होना शुरू हो ।

यह तपस्वी क्रोध करके मर गया और राजा कमसे कम रानी की कूँज में उत्पन्न हुआ । जब रानी का गम तीन महीने का हुआ तो गर्भस्थ बीर के प्रभाव से कई संस्रों लड़ी हो गई । कमल के बिज को कबोरा पहुँचाने वाले कई कारण उपस्थित हो गये । धीरे-धीरे नौ महीने पूरे हुए । पुत्र का जन्म हुआ तो हमका नाम कंस रखता गया । एक लड़की भी उत्पन्न हुई । उसका नाम सत्यमामा हुआ । कंस पूरा जन्म का तपस्वी है और पिता का द्वेषी है, लेकिन तपस्या के प्रभाव से तेजस्वी है । यह वचन से ही बड़ा कम लड़क और कबोराधिय है ।

क्रोध करते हुए मरने से बड़ी दाखल होती है । क्रोध बहुत बुरी बीज है । माइया क्रोध में कोई मत मरना । सृष्टि के समय सृष्टि शक्ति और सृष्टि सत्मा हीवा चाहिए । क्रोध अत्यन्त मरणात्मक और प्रवृत्त शक्ति है । कहा है—

कोहो पीड पणासेइ, माणो विणयनासणो ।

माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविनासणो ॥

—दश० अ० ८, गा० ३८

जब अन्त करण से क्रोध की आग सुलगती है तो उसमें प्रेम-प्रीति का सर्वथा अभाव हो जाता है। स्नेह का समस्त सद्भाव भस्म हो जाता है।

कंस बड़ा हो गया। वह वसुदेवजी के सब कामों में अगुवा बन गया। कंस के काका की एक कन्या थी, जिसका नाम देवकी था। कंस ने सोचा—अगर वसुदेवजी के साथ देवकी का सबध बैठ जाय तो इनके साथ मेरा और भी घनिष्ठ सबध हो जायगा। यह सोचकर उसने यथोचित उपाय करके दोनों की सगाई तय कर दी। वसुदेवजी की एक पत्नी रोहिणी थी। अब दूसरा विवाह देवकी के साथ हो गया। देवकी के पिता का नाम देवक था। देवक ने जब देवकी का विवाह किया तो अच्छा खासा दहेज दिया। दहेज में राजा नद को भी दे दिया और दस गोकुल भी दिये। नद अहीरों में मुखिया था और यमुना के परले पार गोकुल गाँव उसी के कब्जे में था। नद वसुदेव का बड़ा प्रेमी था।

कंस का विवाह उस समय के प्रतापी राजा जरासंध की लड़की जीवयशा के साथ हुआ। जब हथलेवा छोड़ने का समय आया तो उससे पूछा गया—क्या चाहते हो ?

इस समय कंस के हृदय में अपने पिता उग्रसेन के प्रति द्वेष जाग उठा। पूर्वजन्म का बदला लेने की भावना उसके मन

में उत्पन्न हुई। यद्यपि वह जानता नहीं था कि पूर्व जन्म में क्या पटना पड़ी थी फिर भी अज्ञात सरकार अपना काम कर रहे थे। सो कंस ने हयग्रीव में मथुरा का राज्य माँगा। जरासंध यह माँग सुनकर चकित रह गया। उसने कहा—भाप क्या माँग रहे हो? मथुरा का राज्य तो भापका ही है। भापके पिता ही तो मथुरा का राजा हैं।

कंस ने कहा—कब वह बूढ़ा मरगा और जब मुझे सिंहासन मिलेगा। मुझे अभी राज्य चाहिए।

जरासंध ने मथुरा का राज्य लेना स्वीकार कर दिया। बरात की विवाह के साथ ही साथ जरासंध की विराट् सभा भी मथुरा की ओर बिदा हुई। धीरे-धीरे के साथ कंस मथुरा में आया। उसने अपने पाप को पकड़कर जेलखाने में लोहे के पींजरे में बंद कर दिया और कुछ राजा बन बैठा। वह पूर्वजन्म के रूप का प्रताप है। जो भी कार्य होता है, उसका प्रत्यक्ष कारण बहिर्दिक्कार म व मगर कारण होता अचरित है। बिना कारण कोई कार्य हो ही नहीं सकता। उपसेन ने तपस्वी की निर्मल्य देकर भूखा रक्खा था। किसी पाप का फल आज उन्हें भोगना पड़ा इसलिये माइने। किसी किसी को मीठा देकर भूखा मत रक्खा। किसी को बाकी पर से मत छानना। नहीं तो तुम्हारी भी पत्नी ही बरा होगी।

कंस का वह व्यवहार समुद्रविजय को अच्छा नहीं लगा। और न्यायप्रिय लोगों ने भी इस दुर्व्यवहार के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। मगर उसका प्रतीकार कोई नहीं कर सका। प्रतीकार करने का साहस ही किसी को नहीं हो सका, क्योंकि कंस को

जरासंध का बल प्राप्त था और जरासंध बड़ा जघर्षस्त तथा शक्तिशाली राजा था । वह तीन खड्ग का सम्राट् था—अर्ध चक्रवर्ती था । जिसके पास कलदार ज्यादा होते हैं या जिसके हाथ में हुकूमत होती है, उसके सामने कोई नहीं बोलता, मन में भले ही सौ-सौ गालियाँ देते रहें । लेकिन वही काम जब कोई गरीब कर लेता है तो उसकी बहुत बुरी दशा हो जाती है ।

देख लो, कस मथुरा का मालिक घन बैठा और बाप को कारागार में बंद कर दिया । मगर किसी की ताकत नहीं कि कोई चू भी कर सके । मन ही मन कस को कोसने वाले बहुत हैं, मगर सामना करने वाला कोई नहीं है । कस गर्व के साथ कहता है—

मैं हूँ मथुरा का बाका राजवी मेरा नाम कस है ।

मेरा सामना कौन कर सके, किस जननी ने जाया ।

स्वर्ग नरक मैं कुछ नहीं मानूँ, करूँ सदा मन चाया ॥

कस के पास गर्व करने के सभी साधन मौजूद थे । मथुरा का राज्य उसे मिल ही गया था, ससुर बड़ा प्रतापशाली राजा था, जवानी आ गई थी और खजाने से धन की कमी नहीं थी । अथ तो राजा कस को त्रिदोष की बीमारी मानो हो गई । कहा है—

एक जवानी पैसा पल्ले,
राम चलावे तो रस्ते चले,
लेना कठिन मलाई है,
सब यौवन की मस्तई है,

कना चाहिए कि इनकी मीठ पास आ गई है। मुनिराज बोले-बाई भिक्षा का समय है। तुम भिक्षा मन्दी देना चाहती हो न सखी। मुझ जान दो। मगर जीबपरा ने कहा-मन्दी, लड़े रहो। परस यह बताओ कि हमें मुनिदा क सामन शर्मिंदा क्यों करत हो? मुनिराज न एक बार, दो बार, तीन बार यह दिया, लेकिन वह नहीं मानी। तब आगले हा—

अति शीतलता क्या करे, दुश्मन की बहु लाग ।

पिसते-पिसते होत है, चंदन मुख पर भाग ॥

चंदन स्वभाव से ही शीतल होता है, लेकिन क्यादा पिसा जाय ता उसमें भी भाग पैदा हो जाती है। मुनिराज को भी तेजी आ गई। उन्होंने ज्ञान का प्रयोग करके कहा-बाई मुनिदा मन्दी है, यह तो फना होगी। राजपाट सब बितरकर है। इसका प्रसंग नहीं करना चाहिए। पाव रखा—

मन मगस बघावयो ।

कर रखा आपसो आपसो ॥

जो नासी सो नहीं आवयो ।

बसकादार पुहो दीसे पामयो ॥

सुन मोझाई, गर्व न कौबे न समि छेह साधु तजो ।

तुम मुनिवाशरी के रिस्ते से मरी भौझाई हो पर मैंने सब रिस्तेवारियों त्याग दी हैं। जो बात जीरों से कहता हूँ, वही तुम्हें बतलाता हूँ। इस संसार में कोई अज्ञ जमर होकर नहीं आया

है। प्रत्येक व्यक्ति कहीं से आया है और कहीं जायगा, इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है। क्या कोई भी प्रतापशाली सम्राट् या शूरवीर इस धरती पर नजर आता है जो अनादि काल से अब तक जीवित रहा हो ? नहीं तो फिर अब कोई सदैव कैसे जीवित रह सकेगा ? जीव्यशा, प्रत्येक जीव को जाना होगा, अवश्य जाना होगा। और यह भी जान लो कि किस प्रकार जाना होगा ? जीव जैसा आता है वैसा ही जाता है। न कुछ साथ में लेकर आता है और न साथ लेकर जायगा। दुनिया की दौलत दुनिया में ही रहेगी और जीव उसे यों ही त्याग कर चला जायगा। जीव नगा आता है और नगा ही जायगा। आज तुम मेरे साधु बन जाने के कारण लज्जा का अनुभव करती हो, परन्तु जाते समय अपनी लाज रखने के लिए एक हाथ का चीथड़ा भी अपने साथ नहीं ले जा सकोगी।

जीव्यशा ! मैं ने साधु बन कर कोई पाप नहीं किया है, जिससे तुम्हें लज्जित होने का अवसर मिले। मैं तो महापुरुषों के महान् मंगलमय मार्ग का एक नगण्य-सा मुसाफिर हूँ। यह गौरव की बात है, लज्जा की बात नहीं है। अगर तुम सचमुच ही लज्जा-शील हो, लाज-शर्म का थोड़ा-सा हिस्सा भी तुम्हारे हृदय में हो तो अपनी और अपने पति की करतूतों पर लजाओ। अपने बुरे विचारों के लिए और बुरे व्यवहारों के लिए लज्जित होना चाहिए। लज्जा के योग्य कामों के लिए लज्जित न होना और गौरव मानने योग्य कामों के लिए लज्जा का अनुभव करना ही तो अविवेक है। इस अविवेक को त्यागो। अविवेक को त्याग दोगी तो विवेक का प्रकाश तुम्हारे नेत्रों के सामने फैल जायगा। फिर तुम दुनिया की असलियत को भली-भाँति देख पाओगी। तुम समझ जाओगी

एक तो अज्ञान अवस्था, दूसरे कलवार और तीसरे दुःख हो तो वह साधुओं की भी शिक्षा नहीं सुनता है। बरे मेंढरे। थोड़े दिन टर्र टर्र कर लो। बर्षा खुनु का शीम ही अन्त का आबगा और तुम्हारी टर टर्र खत्म हो जायगी। हे अमिमाती। तू माँ, बाप, माई बहिन, गुरु और मित्र की मझाई की बात नहीं सुनता है। धर्म की बात पर कान नहीं देता है और गहर में बुर रहता है पर पाद रज्जना, एक दिन बरसाती मेंढक को छरह नीलाम बोले आयगा !

कंस को ऐसा ही अमिमान हो गया था। वह कहता था—कौन मेरा सामन्य कर सकता है ? पुण्य पाप और ईश्वर को मैं नहीं मानता। वह अपनी समा में ठकवार निकाल कर करता है—इसी में पुण्य पाप और ईश्वर रहता है। यही लोगों के भाव का फैसला करने वाली परम सत्ता है। कंस इस प्रकार का प्रज्ञाप कर रहा था।

एक दिन उसकी समा में ज्योतिषी आये हुए थे। ज्योतिषी कहते करते अचानक ही वह पूज बैठ-गुम मविष्य की बातें बतलाते हो तो अपनी मीन, मय मकर, कुंभ लगाकर बतलाओ कि मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी ? मैं अपनी स्वामात्रिक मृत्यु से मरूँगा या मुझ कोई मारेगा ?

ज्योतिषियों ने कहा—हम कुछकही देकर बतलाते हैं धृष्णीयाव !

कंस का छोटा माई अतिमुक्तक कुमार अपने माई की बदबता देकर बीम्ह उठा। कंस की बात-बात बसे पसर बीं आई। वह पर त्याग कर बहा गया और साधु बन गया। भग-

वान् नेमिनाथ का चेला बन गया। एक-एक महीने की तपस्या करने लगा। तपस्या करते-करते और प्रामाण्यम विचरते-विचरते सयोग वश वह मथुरा में आया। जिस समय कस समा में बैठा अपना भविष्य पूछ रहा था, उसी समय वह भिक्षा के लिए राज-महल में पहुँचा। उस वक्त जीवयशा कस की पत्नी देवकी के बाल जमा रही थी। मुनिराज भीतर पहुँच गये, फिर भी आहार देने का खयाल नहीं आया। उसने मुनिराज का जरा भी सत्कार-सन्मान नहीं किया। उलटे, हाथ फैला कर वही खड़ी हो गई और कहने लगी—आप मेरे पति-मथुरानाथ के छोटे भाई हो कर भी पातरे हिलाते फिरते हो। भीख माग-माग कर अपना पेट भरते हो। इससे हम लोगों को कितनी लज्जा भोगनी पड़ती है। क्यों इस प्रकार हमें नीचा दिखलाते हो ?

जाया एक ही मातरा, क्षत्री कुल जादव जात रा,
थारे लिख्या कर्म में पातरा,
सुनो देवरजी ! संयम छोड़ी ने महल पधारजो ॥

जीवयशा कहती है—आपने यादव-वंश में जन्म लिया है। क्षत्रिय कुल में पैदा होकर क्यों हमें लजाते हो ? फैंक दो यह पात्र और चले आओ महलों में। आपके भाई के महल बहुत विशाल हैं। उनके किसी भी कोने में आपको जगह मिल सकती है।

मुनिराज समझ गये कि यह गरूर में चूर है। इसे अपने पति की प्रभुता का घमंड हो गया है। लोक में कहावत है—घमंडी का सिर नीचा। आशय यह है कि जिसमें घमंड आ जाता है, उसका पतन अवश्य होता है। चींटियों के पख उगते हैं तो समझ

जाना चाहिए कि इसकी मौत पास आ गई है। मुनिराज बोले-बाई मिथा का समय है। तुम मिथा मही बेना चाहती तो म सही। मुझे आने दो। मगर जीवपशा ने कहा-मही, रुके रहो। पहले यह बताओ कि हमें मुमिया के सामने शर्मिंदा क्यों करते हो? मुनिराज ने एक बार, दो बार, तीस बार कह दिया, लेकिन वह नहीं मानी। तब जानत हो:-

अति शीतलता क्या करे, दुश्मन की बहुत लाज ।

पिसव-पिसवें होठ दे, चदन मुख पर भाग ॥

चंदन स्वभाव से ही शीतल होता है लेकिन ज्यादा पिसा जाय तो वस्त्रमें भी भाग पैदा हो जाती है। मुनिराज को भी तेजी आ गई। उन्होंने ज्ञान का प्रयोग करके कहा-बाई मुमिया मूली है, यह तो फना होगी। राजपाठ सब विनयर है। इसका पसंद नहीं करना चाहिए। पार रखो—

मन मंगल बधाइयो ।

कर रक्षा आपसो आपसो ॥

जो आसी सो नहीं आइयो ।

बलकादार खुदो हीमे पानयो ॥

धुन मोझाई, गर्व न कीये न सीमे छेह साधु तयो ।

तुम मुमियादारी के रिस्ते से मेरी भीखार्ह हो पर मैंने सब रिस्तेदारियों त्याग दी हैं। आ बात चीरों से कहता हूँ, वही तुम्हें बतलाता हूँ। इस संसार में कोई अजर अमर होकर कहीं आया

है । प्रत्येक व्यक्ति कहीं से आया है और कहीं जायगा, इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है । क्या कोई भी प्रतापशाली सम्राट् या शूरवीर इस धरती पर नजर आता है जो अनादि काल से अब तक जीवित रहा हो ? नहीं तो फिर अब कोई मदैव कैसे जीवित रह सकेगा ? जीवयशा, प्रत्येक जीव को जाना होगा, अवश्य जाना होगा । और यह भी जान लो कि किस प्रकार जाना होगा ? जीव जैसा आता है वैसा ही जाता है । न कुछ साथ में लेकर आता है और न साथ लेकर जायगा । दुनिया की तैलत दुनिया में ही रहेंगी और जीव उसे योंही त्याग कर चला जायगा । जीव नगा आता है और नगा ही जायगा । आज तुम मेरे साधु बन जाने के कारण लज्जा का अनुभव करती हो, परन्तु जाते समय अपनी लाज रखने के लिए एक हाथ का चीथड़ा भी अपने साथ नहीं ले जा सकोगी ।

जीवयशा । मैं ने साधु बन कर कोई पाप नहीं किया है, जिससे तुम्हें लज्जित होने का अवसर मिले । मैं तो महापुरुषों के महान् मंगलमय मार्ग का एक नगण्य-मा मुसाफिर हूँ । यह गौरव की बात है, लज्जा की बात नहीं है । अगर तुम मचमुच ही लज्जा-शील हो, लाज-शर्म का थोड़ा-सा हिस्सा भी तुम्हारे हृदय में हो तो अपनी और अपने पति की करतूतों पर लजाओ । अपने बुरे विचारों के लिए और बुरे व्यवहारों के लिए लज्जित होना चाहिए । लज्जा के योग्य कामों के लिए लज्जित न होना और गौरव मानने योग्य कामों के लिए लज्जा का अनुभव करना ही तो अविवेक है । इस अविवेक को त्यागो । अविवेक को त्याग दोगा तो विवेक का प्रकाश तुम्हारे नेत्रों के सामने फैल जायगा । फिर तुम दुनिया की असलियत को भली-भाँति देख पाओगी । तुम समझ जाओगी

कि जिस राज्य और जन के पीछे तुम मतवाली हो रही हो, वह सदा साथ देने वाला नहीं है। बेवसी नहीं हो, जो पूरा लिखता है वह कुम्हलाप बिना नहीं रहता। तुम्हारा यह सुभाग, जिस पर तुम इतरा रही हो, सोने की बिनो का पाहुना है। तुम जिसके बाह बसा रही हो उसी के दर से ज्वल होने वाला एक प्रतापी पुत्र तुम्हें दुनियायी बना देगा।

इतना कह कर मुनिराज राजमहल से बाहर चले गए।

जब राजसभा में ज्योतिषियों ने कंस की कुंछरी देस कर कहा—भाप आप स्वामाधिक मृत्यु से नहीं मरेगे। आप को मारने वाला पैदा होगा और वह बड़ा अव्यस्त होगा। महान् शक्तिशाली होगा। वह कुम्हलन और गोशुल को बढ़ाएगा मन्त्रों के मद का मर्दन करेगा हाथी के दाँत उखाड़ेगा पृथमा के प्राण लगे गोवधन पर्वत को उठाएगा और इ राजा ! बड़ी आपका बप करेगा।

वह सुन कर कंस का पीछाही हृदय भी एक बार काँप उठा। अपनी मृत्यु का मन्त्रिज सुनकर उस पोर सब ज्वल हुआ। फिर कंस ने पूछा—वह कहाँ जन्म लेगा ? ज्योतिषी बोले—देवकी रानी का गर्भ और बसुन्धरा का फलज देव हारिका मापी को बसाएगा और बड़ी आपका बप करेगा।

कंस सोचने लगा—आह ! यह तो पर में ही पैदा होगा ! कावे में ही अगर अफिर पैदा हो जायगा तो सुसप्तमानी क्यों उठेगी ? कंस इस प्रकार सोच विचार में पड़ गया। उसने ज्योतिषियों को बिदा किया। बिदा करत समय उसने पैसा

दिखावा किया, मानों उसे तनिक भी भय नहीं हुआ है। मगर उसके हृदय में जो भारी उथल पुथल मच गई थी, उसने चेहरे पर अपना प्रभाव अंकित कर दिया था। कस का चेहरा पीका पड़ गया था।

ज्योतिषी जब चले गये तो कंस भी राजसभा में से चल दिया। अब उसकी एक मात्र चिन्ता यही थी कि किस उपाय से आत्मरक्षा का प्रवध करूँ ? आखिर उसे एक उपाय सूझ गया। उसने विचार किया—किसी तरह वसुदेवजी को कब्जे में करके देवकी का गर्भ माँगलूँ। इस उपाय से काम चल जायगा।

इस प्रकार सोचते-सोचते कस राज महल में पहुँचा। उसने देखा कि जीवयशा पड़ी-पड़ी रो रही है। वह रानी के पास गया और बोला—मैं तो अपने कर्मों को रो रहा हूँ, तू क्यों रो रही है ? आखिर जीवयशा ने मुनिराज के आने और भविष्य की बात सुनाने का जिक्र किया। यह सुन कर कंस की घबराहट चौगुनी बढ़ गई। उसके पाँवों तले की जमीन खिसक गई। फिर भी वह कहने लगा—तुम्हें महात्मा को आहार-पानी देना चाहिए था। मैं ज्योतिषी की बात तो मिटा सकता हूँ, मगर महात्मा की बात को कैसे झूठ कर सकता हूँ ? खैर, चिन्ता मत करो। मैं उपाय सोचता हूँ।

शेखशादी साहब कहते हैं—

तकबुर अजाजील रारवार कर्द ।

वजिन्दा न लानत गिरफ्तार कर्द ॥

अर्थात्—पमरह न वहाँ वहाँ को कैदखान में बालिश किया है। बाद रक्तों लफ्फपुर बहुत दुरी बीज है। अब वह पमरही कंस वसुदेवजी के पास गया। पहले इधर उधर की बातें बनाकर उसने सुधा खेतने का प्रस्ताव रक्खा। वसुदेव मोझे और सीपे भावमी न। कंस की बातों में आ गये। आपस में छप हो गया कि शौच पर भी के साथ गर्म रक्त जाएँ। वो भीत बाप वह पतका चाहे सो करे। वसुदेवजी वह बात भी मंजूर करके सुधा खेतने बैठे। हान्धार की बात है कि वसुदेवजी सातों ही शौच हार गये। वसुदेवजी को हरा कर कंस कूड़ा नहीं समाया। वह सीपा अपने मरुत में आया। उधर वसुदेवजी भी अपने मरुत में गये। वसुदेवजी ने देवकी को सुप में डार जाने और अपने बचनवद्व शोन की बात कही। शानों को इससे बिन्ता हो बहुत हूँ फिर भी सोचा—हरेरिध्या बलीबसी।

भरिहपुर नामक एक नगर था। बहुत है, आबकक मेकसा कहलाता है, वही पुराने जमाने में भरिहपुर कहलाता था। उस नगर में एक सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुकसा था। उसे नेमिचक्राओं में बल्लावा था कि तेरी कृप स कन्दे हो होंगे नगर सब मरे हुए होंगे। तब सुकसा ने तपस्वा करके हरिणगम्भी देवता का स्मरण किया। देवता आया तो सुकसा ने वसम कहा—मरे बिना बाकक होना चाहिए।

देवता ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया। उसे यादस हुआ कि देवकी के पदों को बाकक अपम होने वाले हैं, उन्हें कंस मार बाकने का विचार कर रहा है। अगर सुकसा और देवकी के बाककों में अद्वत-वद्व कर ही जाय तो शोन का ही

महान् उपकार होगा और एक घोर हिंसाकाण्ड भी बच जायगा। यह सोचकर देवता ने सुलसा से कहा—जब तू अपने लड़कों को देखेगी तो जिंदा ही देखेगी। चिन्ता मत कर। इतना कह कर देवता चला गया।

इधर एक रात में देवकी ने सिंह का सपना देखा। उसने वसुदेवजी से स्वप्न का वृत्तान्त कहा। वसुदेवजी बोले—तुम भाग्यवान् और पराक्रमी पुत्र को उत्पन्न करोगी।

देवकी का गर्भ जब तीन मास का हुआ तो कस ने पहरा धिठला दिया। समय पूरा होने पर पुत्र का जन्म हुआ तो देवता ने सुलसा के मृतक पुत्र को देवकी के पास पहुँचा दिया और देवकी के जीवित पुत्र को सुलसा के पास पहुँचा दिया। इस अदल-बदल में देवता को ज्यादा विलम्ब नहीं लगा।

कस बड़ी व्यग्रता के साथ देवकी के प्रसव की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे ज्यों ही पुत्र के प्रसव का समाचार मिला त्यों ही उसने अपनी दासी को भेजकर पुत्र मगवा लिया। दासी मृतक पुत्र लेकर आई तो कस का अभिमान फिर ताजा हो गया। वह अहंकार की चोटी पर चढ़ गया। सोचने लगा—कोई देखो मेरे प्रताप को। मेरे ढर के मारे देवकी के मरा हुआ छोरा जनमा है। क्या यही मरा छोरा मुझे मारेगा ?

इसी प्रकार धीरे-धीरे देवकी के छह बालक सुलसा सेठानी के यहाँ पहुँचा दिये गये और सेठानी के छह मृतक बालक देवकी के पास रख दिये गये। कस अपने भाग्य की सराहना करने लगा। सातवीं बार कौन आते हैं ?

भीकृष्ण सरारी मगडे मरतारी यादव बंस में ।

जब पुरुषोत्तम भीकृष्णबन्धुजी पधारने हैं । माइयो !
पहाड़ को देखकर हाथी बिपाइता है कि यह सुम्ने ऊँचा क्यों
है ? और फिर वह पहाड़ की तरफ़ रौंड़ता है कि इसे गिरा दूँ ।
मगर मतीजा क्या होता है ? हाथी जिन बातों से पहाड़ को
गिराने का प्रयत्न करता है, उसके बड़ी बातें टूट जाते हैं और
पहाड़ का कुछ भी नहीं बिगड़ता है । बाइनी तभी तक खिचकी
रहती है जब तक सूर्य का उदय नहीं होता । मेंढक तभी तक
पुनकता फिरता है जब तक उसे साँप दिखाई नहीं पड़ा । और
हिरन जब तक सिंह को नहीं देखता तभी तक चरसता है । इसी
प्रकार कंस का परमंड तभी तक कायम है जब तक भीकृष्ण नहीं
पधारे हैं । क्या है—

उजो सो ही आयमे और फूले सो हुम्हसावे रे ।

सदा एक सी नाँव रहे, हानी फरमावे रे ॥

माया दुनिया की है मूँझी मनवा क्यों समजावे रे ॥ भुवानी

माइयो ! जिसका उदय होता है उसका अस्त अवश्यमायी
है । जो पुष्प खिलता है वह कुम्हसाय बिना नहीं रह सकता ।
प्रकृति का यह अटका विधान है इसका कर्त्तव्य करने को समझता
न किसी में है और न हो सकती है । जिसका उदय हुआ है वह
सदा बहिर नहीं रहेगा और जो शाय खिलता है वह सदा खिलता
नहीं रहेगा । किसी की स्थिति सदा काह एक सी नहीं रही । यह
हानी पुरुषों का कथन है । वह कथन कदापि भ्रम्यता नहीं हो
सकता । देखो न—

सूबह जो तरबत शाही पर बड़े सजधज से बैठे थे,
दुपहरे वक्त में उनका हुआ है वास जंगल का ।
मुसाफिर ! क्यों पड़ा सोता भरोसा है न पल भर का ॥

रामचन्द्र के राज्याभिषेक की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं, पर ऐन वक्त पर उन्हें वनवास के लिए खाना होना पड़ा । मतलब यह है कि प्रकृति के विधान को कोई टाल नहीं सकता । मगर कंस में इतना विवेक कहाँ है ? वह समझता है कि मेरा उदय शाश्वत है । मेरा सौभाग्य-सूर्य अनन्त काल तक एक समान चमकता ही रहेगा । वह अपनी मौत से लड़ कर विजयी होना चाहता है ।

आप कह सकते हैं कि क्या मनुष्य अपनी मौत को नहीं जीत सकता ? मृत्यु अगर प्रकृति का नियम है तो अमरता आत्मा का स्वभाव है । फिर क्यों आत्मा कभी मृत्यु पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता ? आपका कहना सही है । प्रकृति की शक्तियाँ अगर असीम हैं तो आत्मा की शक्तियाँ भी अनन्त हैं । आत्मा अपने प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करता आ रहा है और करता रहेगा । वह मौत को जीत कर अमर बन सकता है, 'मृत्युञ्जय' की महान् महिमा से मण्डित हो सकता है । मगर मृत्यु को जीतने का उपाय वह नहीं है, जिसे कस काम में ला रहा है । मृत्यु को वही जीत सकता है जो मृत्यु से डरता नहीं है और जो जीवन और मरण को समान भाव से अपनाने के लिये तैयार रहता है । मृत्यु को वह जीत सकता है जो छोटे-बड़े समस्त प्राणियों की अपने निमित्त से होने वाली

मृत्यु से बचता रहता है। जो स्वयं मर कर भी दूसरों की मृत्यु को बचाता है वही मृत्युविजेता बन सकता है। कंस जैसे कायर पुरुष जो स्वयं जिम्मा रहने के लिए अशोष शिशुओं की हत्या करने के लिए तैयार हो जात हैं, कदापि मृत्यु को नहीं जीत सकते। मौत की कल्पना से ही कौपमे वाला कब मौत से बच सकता है? जो अपने माणों की रक्षा के लिए दूसरे के प्राण हरक करता है वह अपनी मौत को म्योता देकर निकट हुआता है। उसे एक बार नहीं बार-बार मौत का शिकार बनना पड़ता है।

कंस मन ही मन सोचता है—अब एक का ही काम तमाम करना बाकी रहा है। और वह सोचकर उसके आत्मन् का पार नहीं रहता। मान्ने सचमुच ही वह अपनी मृत्यु को जीत चुका हो।

परन्तु तब सज्जनों के दुःख को दूर करने वाले दुर्जनों का दमन करने वाले, पाप को हटाने वाले श्रीकृष्ण महराज प्रकट हो रहे हैं। इस दुष्ट राजा कंस ने सब को ठगझीक ही है। यहाँ तक कि अपने बाप को भी पीछरे में डाल रक्खा है। वह म्हात्माओं का अपमान करता है। उसकी कर्तूतों के कारण सर्वत्र जादि-जादि की पुकार मची हुई है। जब सूर्य की गर्मी बहुत बढ़ जाती है तो बरसात होती है। इसी प्रकार जब दुनिया में दुःख बढ़ जाते हैं तो उन्हें दूर करने के लिए किसी रात्रि का जन्म होता है। यानी देवकी ने एक रात्रि में सात स्वप्न देखे। पहले स्वप्न में देखा कि आकाश से एक सिंह बका बा रहा है और वह उसके पेट में घुस गया है। दूसरा स्वप्न सूर्य का, तीसरा हाथी का, चौथा प्यवा का पाँचवाँ भूम-रहित अग्नि का, छठा बीरसागर का और सातवाँ देव विमान का स्वप्न देखा।

देवकी ने यह सात शुभ स्वप्न देख कर अपने पति में कहा—छह पुत्रों के समय तो एक-एक स्वप्न दिग्वार्ध दिया था, लेकिन इस धार तो सात स्वप्न आये हैं। वसुदेवजी ने कहा—इस बार तुम बड़े ही पुण्यशाली पुत्र को जन्म दोगी।

देवकी - नाथ ! आपने मेरे छह बेटे तो मरवा दिये हैं। अब यह सातवाँ आया है और वह भी सात स्वप्न लेकर आया है। मगर इससे मुझे लेश मात्र भी प्रसन्नता नहीं हो पाती। यत्कि हृदय में एक टीस उठती है, वेदना के कारण हृदय तडफ-तडफ कर रह जाता है। न आप जुआ खेलते, न यह दुःख उपस्थित होता। मगर होनहार बलवान् है। कस कोई उपाय खोज रहा था। इस उपाय में उसे सफलता न मिलती तो वह निश्चय ही कोई और उपाय करता। वह हमारे बच्चों के लिए यमराज के रूप में जनमा है।

वसुदेव—सही कहती हो देवकी ! तुम्हारे हृदय की असीम वेदना को मैं समझ रहा हूँ। पर विवश हूँ। कुछ भी जोर तो नहीं चलता।

देवकी—प्राणनाथ ! आपको पता ही है कि बिना नमक के भोजन फीका और बिना पुत्र के घर सूना होता है। कस ने छह बालकों को तो खा लिया है, लेकिन इस बार के बालक को बचाने का कोई प्रयत्न करना पड़ेगा। अगर एक भी बालक रह गया तो आपका नाम रह जायगा।

वसुदेव—देवकी ! प्रिये ! यद्यपि मैं वचनबद्ध हूँ, फिर भी यत्न करूँगा कि किसी उपाय से इस बालक की रक्षा कर सकूँ।

मधुरा के समीप के गोकुल गाँव के मन्द अहीर की पत्नी यशोदा के माथ देवकी का गाढ़ा प्रेम था। एक बार यशोदा, देवकी से मिलने आई। दोनों बस ममब गर्मवती थीं। बातों ही बातों में, दोनों में यह सच हो गया कि यशोदा के गर्म से जो उत्पन्न होगा वह यहाँ मेज दिवा जायगा और देवकी के गर्म की सम्मान यशोदा के पास पहुँचा ही जायगी। यशोदा क्वापि जानती थी कि मेरी सम्मान की यहाँ मेजने पर क्या इम्कत होगी मगर देवकी की अत्यन्त दयनीय दशा को देख कर और मगबाएँ पर मरोसा करके उसने यह बात मंजूर करली। उसने कहा—देवकी रात्री ! चिन्ता मत करो। लड़का या लड़की, जो भी होगा, मैं तुम्हारे पास मेज दूँगी। मरा एक बाळक मर भी जायगा तो क्या हुआ। तुम्हारे बाळक की रक्षा तो हागी। मैं तुम्हारे इस बाळक को ही अपना सम्झूँगी। जैसे तुम्हारा और मेरा इत्थन अभिन्न है वही प्रकार हमारा-तुम्हारा बाळक भी अभिन्न होगा। फिर मुझे चिन्ता पड़े की ?

इस प्रकार भारबासन देकर यशोदा अपने घर चली गई। एक-एक दिन बीतते-बीतते तीन मास व्यतीत हो गये। देवकी के मन पर गर्म का प्रभाव पड़ा। एक बार देवकी ने बसुरेव की लक्ष्मण अपने हाथ में उठा ली और वह रौद्र रूप धारण करके, दुर्गा की तरह, बैठ गई। बसुरेवजी आये। उन्होंने कहा—देवकी ! यह क्या कर रही हो ? किस परिस्थिति में हो सते, मत भूलो। लक्ष्मण यहाँ की यहाँ रम ना। हमारी रक्षा लक्ष्मण से नहीं पर्य स होगी।

देवकी बोली—मुझे मत रोको। मैं समा में जाऊँगी और ब्रह्म को मखा बजाऊँगी।

मगर वसुदेव ने किसी तरह समझा-बुझाकर देवकी को शान्त किया। कभी देवकी को अच्छे कपड़े पहनने का, कभी अच्छे भोजन करने का और कभी वर्ग की घातें सुगने का विचार आने लगा। कभी क्रोध आ जाता तो कहती—मैं कंस का ध्वंस किये बिना नहीं मानूँगी। मैं उसके सिर का मुकुट तोड़ डालूँगी। इस प्रकार देवकी के मन पर गर्भ का असर पड़ने लगा। वह असर जाहिर भी होने लगा। कहा है—

खैर खून खांसी खुशी, वैर प्रीति मदपान ।

रहिमन दावे ना दबै, जाने सकल जहान ॥

जहाँ हितैषी होते हैं वहाँ अहितैषी भी होते हैं। ससार में सज्जन हैं तो दुर्जनों की भी कमी नहीं है। किसी ने कंस को सूचना दे दी कि इस बार बड़ा खतरा है। पक्का प्रयत्न कर लो। राजा कंस तो पहलेही चौकन्ना था, यह चेतावनी सुनकर अधिक सजग और सावधान हो गया। अब की बार उसने मिहों के पहरे लगवाये। हनुमानसिंह, पर्वतसिंह, हेमसिंह, ऐमसिंह आदि के पहरे बैठे। जादोराय, टोडरराय, आदि-आदि रायों ने भी अपनी सजगता दिखलाने का उपक्रम किया।

देवकी प्रवध की यह कठोरता देख कर घबराती है। मगर वह पंच परमेष्ठी का ध्यान करके अपना समय व्यतीत करती है। उसके हृदय के किसी कोने से एक आवाज उठा करती है—घबराने की आवश्यकता नहीं है। संसार में दानवीय शक्ति ही सब कुछ नहीं है देव-शक्ति भी है और वह दानवीय शक्ति को परास्त किये बिना नहीं रहती। अदृश्य शक्ति का यह आश्वासन पाकर देवकी

का तसल्ली मिहती है। वह शान्त माद म फिर धर्मभ्यान करने लगती है।

इधर दबकी की सत्रियां भी उसे मरैव साम्बना दिया करती हैं। कहती हैं—बिम्बा क्यों करती हो रानी ! बिम्बी के कहने से दीका नहीं टूटता। गर्म का जीब बड़ा ही प्रतापशाली और प्रभावशाली है। वह कंस का शिखर कदापि नहीं होगा। अब वह बम्ब सेगा तो बिम्बी का कामों कान लवर नहीं पड़ेगी। तुम निश्चिन्त रहो। मसन्न रहो।

धीरे-धीरे गर्म के दिन पूरे हुए। मातृपद महीने की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि आ पहुँची। आधी रात के समय मूसलधार पाणी बरसने लगा। बिजली बमझने लगी। प्रबल धौंधी बहने लगी। और वर्षा की सर्र सर्र से सारा भूमंडल व्याप्त हो गया। पड़ो ही कृष्ण पक्ष तो आ ही, सपन बाइको और वर्षा के कारख और अंधकार झा गया था। ऐसा मासूम होने लगा कंस के अत्याचारों से सम्पूर्ण प्रकृति डुब्य हो खड़ी है और वह अत्याचारों को शान्त करके ही शान्त होगी।

माइयो ! धर्म जिसका सहायक हो उसका कौन क्या बिगाड़ सकता है ? धर्म के प्रताप से सभी कुछ अनुकूल हो जाता है। तबलुहार देवकी के तयाम पड़ोहारों को गाड़ी नीह आ गई। सब के सब झुपड़े मर कर सोने बगै, मानों ऐसी माया ने उन्हें बेहोश कर दिया हो। ऐसे मरुत्त्वपूर्ण समय में क्या होता है—

मथुरा में आकर बम्ब छिपा देखो तब बंदी बसे ने।
और कंस की भूमि ही परा, देखो तब बंदी बांठे ने छुरा

थी अर्ध निशा अंधेरी बह, घन घोर घटा थी छाया रही ।
तनु-तेज से कीना उजियाला. देखो तब वंशी वाले ने ॥

जब श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने जन्म लिया तो उनके शरीर के तेज से घोर अधकार में प्रकाश हो गया । देवकी ने वसुदेवजी को आवाज दी और कहा—इस बालक को गोकुल लेकर जाइए और यशोदा को सौंप दीजिए । उसके बालक को यहा ले आइए ।

कर-कमलों में बसुदेवजी, उठा चले निज नन्दन को ।
फिर यमुना के दो भाग किये, देखो जब वंशी वाले ने ॥

वसुदेवजी जब बालक को अपने हाथों में लेकर रवाना हुए तो देखते हैं कि तमाम पहरेदार गाड़ी नींद में सोते पड़े हैं । वे धीमे-धीमे पाँवों से आगे चले और नगरी के दरवाजे पर पहुँचे । देखा तो दरवाजे में ताला पड़ा था और ऊपर से वर्षा हो रही थी । उस समय —

भवन से आई उतरचा हेठा,
द्वार के ताला जड्या सेंठा,
कस'का पहरा बाहर बैठा ।
निकल जाने का नहीं रास्ता,

दोहा:-चरण अंगुष्ठ लगावियो, गोविन्द को तिण बार ।
सरइड़ ताला टूट पड़ा और सरइड़ खुले किवार ॥
अखण्डित निकल गया बिहारी ॥

गुरुपोषम प्रकटे अबतारी
अगत् में महिमा विस्तारी ॥

घोर अंधेरी रात में बसुदेवजी भाग-बीछ की साथे बिना किसी उपाय से पुत्र के प्राण बचाने के लिए चल पड़े। बाजारों और गलियों में होते हुए वे मगरी के फाटक पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर देखा कि फाटक पर बड़े-बड़े मखमूठ लाले लगे हुए हैं। मगर जब धर्म सहायक होता है तो कौन-सी प्रकृत बाधा भी दूर नहीं हो जाती? तालों को जो ही छप्याजी का भंगड़ा छुवाया गया, ताछे तकासड़ टूट पड़े, किबाड़ झुल गये।

बसुदेवजी ने आवाज सुन कर पूछा—कौन है? बहदेवजी ने उत्तर दिया—व्यापक्ये बंधन स छुड़ाने वाला आया है। इसका बाव क्या होता है—

निकल मधुरा से मोड़ल जाये,
उपर यमुनाजी पूर आवे;
निकलवा मारग नहीं पावे
बिबिध मिसुलत मन में आवे ।

हो:—पग परस्या गोपाल का, यमुना हुई हो माय ।

बसुदेवजी तुरत निकल गये दुखस्यो दियो अघाग ।

मोड़ल में पहुँचे गिरिधारी ॥

बसुदेवजी की राह की एक बड़ी रुकावट दूर हो गई। फाटक झुल गये और वे मगरी से बाहर निकल गये। मगर बीच में यमुना

नदी आड़ी आ गई। यमुना के एक पार मथुरा थी और दूसरे पार गोकुल गाँव था। गोकुल तक पहुँचने के लिए यमुना को पार करना पड़ता था। मगर पार करने का उपाय क्या है? भादाँ महीने की यमुना और तिस पर पूर में थी। अकेले ही पार करना समभव नहीं तो तत्काल जनमे घालक को गोदी में लेकर कैसे पार किया जा सकता है? वसुदेवजी के सामने फिर एक विकट समस्या खड़ी हो गई। पर अब की बार उन्हें चिन्ता नहीं हुई। बालक के चमत्कार को वे देख चुके थे। अतएव साहस करके वे यमुना में घुस पड़े। बालक का अगूठा छूते ही यमुना के दो भाग हो गये। आधा पानी ऊपर की ओर, और आधा नीचे की ओर सिकुड़ गया। बीच में रास्ता बन गया। वसुदेवजी निश्चिन्त हो कर यमुना पार करके गोकुल में दाखिल हुए। उन्होंने नंद का दरवाजा खटखटाया। यशोदा समझ गई कि वसुदेवजी आये हैं। उसने नद से कहा—आप चुपचाप आराम कीजिए। आपको धोतने की आवश्यकता नहीं है। मैं सब समाल लूगी।

इतना कह कर यशोदा द्वार पर आई। किवाड़ खुले और वसुदेवजी कृष्ण को लिये अन्दर दाखिल हुए। उन्होंने श्रीकृष्णजी को यशोदा के सिपुर्द किया। यशोदा के गर्भ से लड़की का जन्म हुआ था। उसे वसुदेवजी ने अपने हाथों में ले लिया।

नन्दजी को इस अदला-बदली के सबध में कुछ मालूम नहीं था। वे इस लेन देन का मर्म नहीं समझ पाये। बोले-यह क्या कर रही है। तब यशोदा बोली—बुरा क्या है? मैंने सौदा अच्छा ही किया है। लड़का लेकर लड़की दी है।

लड़की को साथ लेकर वसुदेवजी वापिस लौट गये और

जमना पार करके फिर अपनी जगह जा पहुँचे। लड़की को देखी के पास मुला दिया। दादी भी कोयल घालिका अभी तक चुपचाप थी। देखी के पास सात ही 'प्याऊँ-प्याऊँ' करके रोने लगी। जालिका के रोने की आवाज सुन कर पदरेदारों की सीर टूटी। उन्होंने कस को सूचना दी कि देखी रामी न पुत्री का प्रसव किया है।

कस की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वह मन ही मन सोचने लगा—मैं ने ज्योतिषी और जागी-दानों की भविष्यवाणी मिथ्या साबित नहीं की तो फिर क्या किया? मुझ से बढ़ कर मरा प्रताप काम कर रहा है। मर प्रताप का ही तो फल है कि देखी के लड़का नहीं हुआ। बेचारे कस का क्या पता है कि उसके मान को मर्दन करने वाला पृथ्वी पर था पहुँचा है।

कस ने उस लड़की को अपने पास कुतबाबा और उसकी जाक पर निराम करके उसे बापिस मंत्र दिया। कहीं-कहीं ऐसा भी उल्टेबा है कि कस ने उस लड़की को संकर पकाइ दिया। मगर लड़की बीच में से ही कस के हाथ से बूट गई। वह आकार में बढ़ गई और बिजली बन गई।

उपर कृष्णजी को पाकर परीक्षा के हय की सीमा खींची। सारा-गाऊँच गॉब प्रसन्नता से माना नाच पड़ा। क्या है—

मात यश्चादा प्रमत्तं दुर्ह

और नन्द न महोत्सव खूब किया।

धर-धर में आमन्द मना दिया

देखो तब बछी बाहे ने ॥

नन्द के घर आनन्द के बाजे बजने लगे । सब ग्यालिने मिल कर नाचती हैं, तालियाँ बजाती हैं और मंगलगीत गाती हैं । इस प्रकार सारे गोकुल में आनन्द ही आनन्द फैल रहा है । तमाम ग्रामवासी ऐसे प्रसन्न हैं मानों उन्हीं के घर पुत्र का जन्म हुआ हो ! धीरे-धीरे बारहवाँ दिन आ पहुँचा । अशुचि का निवारण किया गया । माता बच्चे को हालत सुनाती है और प्यार करती है । इस तरह एक मास भी व्यतीत हो गया ।

उधर गोकुल में सर्वत्र आनन्द-मंगल छाया हुआ है और इधर देवकी रानी, यद्यपि पुत्र की प्राणरक्षा का उपाय निकल आने से और उसके कुशल-समाचार मिलते रहने से सतोप का अनुभव कर रही हैं, फिर भी उनका मातृ-हृदय कभी-कभी मचल उठता है । पुत्र के विद्वोह से उनका दिल दुःख का अनुभव करने लगता है । एक दिन देवकी सोचने लगी—मुझे पुत्र को देखे एक मीहना हो गया है । इस एक महीने में उसकी सूरत कैसी हो गई होगी ! वह तड़पने लगी । वसुदेवजी से कहा—मैं तो बच्चे को देखने के लिए गोकुल जाऊँगी । तब वसुदेवजी बोले—प्रिये ! अधीर मत होओ । शत्रु को पता चल गया तो बालक के प्राण सन्नट में पड़ जाएँगे । धीरज रखो । बालक आनन्द में है, इतना जान कर ही सतोप मान लो ।

मगर देवकी का दिल नहीं माना । कहा—आज बत्स-बारस का त्यौहार है । त्यौहार के बहाने गोकुल चली जाऊँगी । किसी को पता ही नहीं चलेगा ।

वसुदेवजी सहमत हो गये । अब तो बच्चे के लिए भगला, टोपी, खिलौने वगैरह साथ लेकर देवकी गोकुल पहुँची । निगाह

पुराकर सीधी यशोदा के घर में दारिद्र्य हुई। कृष्ण को गेह में लेकर बित्ताने लगी। पुत्रकारने कापी और चूमने कापी। देवकी के मुख से निकल पड़ा—

अरी यशोदा ! तू बड़मागिन !

हे सखी यशोदा ! तू एकान्त माम्बरालिनी है कि तुझे बड़ बाकक मिला है। मैं माम्बरालिनी होती हुई भी अमागिनी हूँ और अमागिनी होती हुई भी माम्बरालिनी हूँ। मैं तेरी बरा बरी नहीं कर सकती।

माइयो ! कृष्ण का चरित बहुत बम्बा है। पूरा सुनाने का समय नहीं है। मैं सत्संग और कुसंग पर दृष्टान्त बड़ रहा बा। कुसंगति के कारण कंस का इतना पतन हुआ कि अन्त में कृष्ण के द्वारा उसे अपने प्राण देने पड़ा। अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो कुसंगति से बचा और संतों का समागम करो। संत-समागम से आपके हृदय में काम का प्रकाश उत्पन्न होगा और आपका इहलोक तथा परलोक सुख जायगा। आप जहाँ चली रहेंगे आनन्द ही आनन्द होगा।

स्याम-बोधपुर ।
ता २७-५-४८]



काँई रे गुमान करे आपनो !



स्तुतिः—

वल्गत्तुरङ्ग गजगर्जितभीमनाद—

माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।

उद्यद्दिवाकरमयूखाशिखापाविद्ध,

त्वत्कीर्चनात् तम इवाशु भिदाम्भुपैति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाए ?

कोई आदमी किसी सग्राम में गया हुआ है । सग्राम में हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों की मलमलनाहट

और पैदल सेना की सनसनाहट हो रही है। अनेक बलवान राजाओं की विराजित सेनाएँ इकट्ठी हुई हैं। इन सेनाओं पर अथ शत्रुओं द्वारा विजय प्राप्त करना कठिन है। ऐसे प्रसंग पर का पुरुष सेना और शत्रुओं के बल के अविमान को छोड़कर आपका कीर्तन करता है—आपके असाधारण गुणों की स्तुति करता है और इस रूप में आपकी शरणाग्र करता है, इसके सामने से वह विराजित सेनाएँ उसी प्रकार भाग जाती हैं, जैसे ज्वालामुखी की किरणों से अंधकार भाग जाता है। हे महर्षीकृष्ण ! हे नामिकुञ्जरुमकविवाकर ! आपके गुण-कीर्तन की अपरिमित महिमा है।

माधवा ! यहाँ आचार्य महाराज ने दुनियावी संग्राम का चित्र किया है। कभी-कभी दुनियावी संग्राम भी बड़ा क्रूर और भयंकर होता है। पर एक संग्राम हमारे भीतर भी सर्वत्र चलता रहता है। वह संग्राम बड़ा ही भीषण और उग्र है। उस संग्राम के काण की भी आवाज़ नहीं है। वह अनादि काक से चल रहा है, प्रतिपल चल रहा है कभी एक लक्ष के लिए भी चन्द नहीं होता।

वह संग्राम कौन-सा है ? उसके कई नाम दिये जा सकते हैं। आप उसे वेद-असुर संग्राम कह लीजिए। आत्मा की स्वभाव विभाव परिणति का युद्ध भी कह सकते हैं। उसे बेतमराम और मोहमल्ल की लड़ाई भी कह सकते हैं। इस युद्ध की भूमि आपका अन्तःकरण है। यह अन्तरांग-संग्राम बड़ा ही क्रूर एवंक है।

इस संग्राम में एक ओर बेतन है और दूसरी ओर माहर्षि है। चतुर्ध्व की सहायता करने वाले अनेक सुम्ह हैं और मोह की

न सा जाई न सा जोणी, न त ठाण न त कुल ।

न जाया न मुआ जत्थ, सँव जीवा अणंतसो ॥

तात्पर्य यह है कि यह आत्मा मोहनीय कर्म के प्रभाव से प्रत्येक जाति और प्रत्येक योनि में अनन्त-अनन्त धार उत्पन्न हो चुका है ।

यहाँ जाति का अर्थ वह नहीं है जिसे आप समझते हैं । ओसवाल, अग्रवाल, खडेलवाल, पोरवाड, परवार आदि जो जातियाँ आज लोक में प्रचलित हैं, वे वास्तव में जातियाँ नहीं हैं । शास्त्रों में जाति का अर्थ दूसरा है जाति-नाम-कर्म के उदय से एकेन्द्रिय आदि की जो स्थिति जीव को प्राप्त होती है, वह जाति कहलाती है । जाति पाँच प्रकार की है-एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय-जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पंचेन्द्रिय जाति । जिस जीव के सिर्फ एक स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है, वह एकेन्द्रिय जाति वाला जीव कहलाता है । इसी तरह जिसके स्पर्शन और रसना (जीभ) यह दो इन्द्रियाँ होती हैं वह द्वीन्द्रिय जाति वाला गिना जाता है । आगे भी इस प्रकार समझना चाहिए ।

शास्त्र के आधार पर विचार किया जाय तो विदित होता है कि समस्त ससारी जीव पाँच ही जातियों में बँटे हुए हैं । आज साधारण लोग मानव-जाति के जिन टुकड़ों को जाति मान रहे हैं और जिन टुकड़ों को लेकर मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवारें खड़ी कर रहे हैं, वे वास्तव में भ्रम में हैं । मनुष्य मात्र एक ही जाति में सम्मिलित है । और अकेला मनुष्य ही नहीं, पक्षि पशु-पक्षी आदि भी, जो पाँच इन्द्रियों वाले हैं, मनुष्य की ही जाति में-पंचेन्द्रिय जाति में ही है ।

मोह के सापी अन्ध कर्म भी आत्मा में बिहार उत्पन्न करत हैं मगर ब इमी की सहायता पाकर करत हैं। मोहकर्म बहु नष्ट हो जाता है तो जैसे मेनापति क मर जाने पर सेना माग छूटती है, उसी प्रकार सारे कर्म निबन्धने-म हो जाते हैं। फिर किसी का कोई बरा नहीं बकता। अनायास ही उन्हें यह किया जा सकता है।

मोहनीय कर्म के प्रभाव म ही आत्मा अपने अन्तर-अन्तर स्वरूप को बिसर कर जन्म-मरण-मरत्य का पात्र बन रहा है। भगवती सूत्र में उल्लेख आता है कि एक बार गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा—भगवान् ! साफ कितना बड़ा है ? भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम ! साफ बहुत बिराछ है—बौद्ध राज्य परिमित इसके अनन्तर गौतमस्वामी ने फिर प्रश्न किया—इतने लम्बे-चौड़े लोक में एक बात का समुदाय समाने बछी जगह भी क्या पसी है कि जहाँ बीच न जन्म-मरण न किया हो ? भगवान् बोले—नहीं गौतम ! इतनी-सी जगह भी बाकी नहीं है। इतना ही नहीं बाकाम परिमित स्वान भी पता नहीं है जहाँ बीच न अनन्त-अनन्त बार जन्म-मरण न किया हो।

भाइयो ! यह सब किसका प्रताप है ? आत्मा के अन्तर अन्तर रूप को बिगाड़ कर उसे जन्म-मरण के चक्र में कैसले वाला बौन है ? मोहकर्म !

संसार में कोई जाति पसी नहीं है जिसमें प्रत्येक जीव उत्पन्न न हो बुका हो। कोई योनि भी राप नहीं गयी जिसमें, जीव अनन्त अनन्त बार उत्पन्न हो मीठ का ठिकार न बन बुका हो। कहा भी है—

यह कार्य जिस वर्ग को सौंपा गया था, वह वैश्यवर्ग कहलाता था। फुटकल सेवा का कार्य जिस समूह के भिषुर्द किया गया, उसका नाम शूद्रवर्ण हो गया। यह सारी व्यवस्था समाज के लिए कल्पित की गई थी।

जैन धर्म ने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि मनुष्य-मनुष्य में कोई जातिगत वास्तविक भेद है। जैन धर्म यह भी नहीं मानता कि एक वर्ण जन्म से ही ऊँचा होता है और दूसरा वर्ण जन्म से ही नीचा होता है। जैन संस्कृति मनुष्य मात्र को समान अवसर प्रदान करने की हिमायत करती है। प्राचीनकाल में अनेक अन्त्यज कहलाने वाले व्यक्ति जैन धर्म की छाया में शान्ति प्राप्त करने के लिए आये थे। जैनसंघ ने उन्हें स्नेह के साथ अपनाया था और जब वे साधना के मार्ग पर अग्रसर होकर पवित्र हो गये, महात्मा बन गये, तो जैनसंघ ने उन्हें अपना पूज्य माना। मुनिवर हरिकेशी और मेतार्य आदि इसी प्रकार की विभूतियाँ हैं।

जन्म से जाति या वर्ण की कल्पना वाद में उत्पन्न हो गई। ब्राह्मण-वर्ग ने अपनी पवित्रता की मोहर लगाने के लिए जनता को समझाया कि जातियों का मवध जन्म से है। मगर जैन धर्म तो मनुष्य की एक ही जाति मानता है। असली जाति वही है जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त कभी बदल ही न सके। ब्राह्मण आदि वर्ण और अग्रवाल, ओसवाल आदि जातियाँ किसी भी समय बदल सकती हैं, अतएव यह सब कल्पित हैं, वास्तविक नहीं।

मोहकर्म के उदय से प्रत्येक जीव ने सभी जातियों में जन्म ग्रहण किया है। जीव कभी कहीं और कभी कहीं जन्म लेता

प्रश्न किया जा सकता है कि अगर सभी मनुष्य एक ही जाति के अन्तर्गत हैं तो भगवान् आपमरेबजी ने वर्ण-विभाग क्यों किया था ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि समाज का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए भगवान् ने वर्ण-व्यवस्था कायम की थी। एक परिवार में चार पुरुष होते हैं। वे सब एक ही काम में लगे रहते हैं। अपना-अपना काम अलग-अलग बँट क्षेत्र हैं, जिससे सब अपने-अपने उत्तरदायित्व को समझें और पूरा करें। अगर यह बँटवारा न किया जाय तो मतीबा बह होगा कि परिवार का कोई काम न ही पढ़ा रहेगा और किसी काम में आवश्यकता न होने पर भी सब कुछ जाएँगे। इससे परिवार की व्यवस्था बिगड़ जायगी। भगवान् ने मानव जाति को भी एक महा-परिवार के रूप में देखा था। इसके सभी काम ठीक तरह से पूरे हो जाएँ, कोई काम बिना किया न पढ़ा रहे और किसी में आवश्यक रूप से सब लगकर अपनी शक्ति को दूबा न करें, इस दृष्टि से वर्ण-विभाग कर दिया था। इस प्रकार भगवान् आपमरेबजी ने वास्तव में मनुष्य जाति के दुकने लगीं किये थे, सिर्फ सुचारु रूप से व्यवस्था की थी। किसी-किसी को पढ़ाने-लिखाने आदि का काम सौंपा गया था। वह ग्राह्य-वर्ग कहलाता था। किसी पर रक्षा का भार डाला गया था, जिसका नाम क्षत्रिय-वर्ग पड़ा। एक वर्ग का कार्य कृषि वाणिज्य-व्यवसाय आदि करना था। वह वर्ग मनुष्य की सुख-सुविधा के लिए वस्तुओं को उत्पन्न करता था और एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाता था। यही एक वस्तु उत्पन्न होती है, यही दूसरी वस्तु पैदा होती है। अगर आवश्यकता दोनों जगह दोनों की होती है। अतएव वह आवश्यक है कि आवश्यक वस्तुएँ इधर से उधर और उधर से इधर पहुँचाई जाएँ।

दया करो, सन्तोष रखो, चोरी मत करो, अनीति की राह पर मत चलो । हमारा यह कहा मानो —

हो म्हारी मानो मानो मानो मानो मानो मानो रे ।

हो डर आनो आनो आनो आनो आनो आनो रे ॥

भाइयो ! मेरी बात मानो । मैं बार-बार आग्रह करके कहता हूँ कि मानो, अवश्य मानो । परलोक से डरो, डरो । नहीं मानोगे तो पछताओगे ।

बोलो मेरा कहना मानना चाहते हो या नहीं ? क्या सलाह है ? याद रखो, अगर मेरा यह हित-कथन न माना तो इसी जन्म में ठोकरे खाते फिरोगे, परलोक में तो कहना ही क्या है ।

अरे भाई ! क्यों नखरे करते हो ? क्यों गुमान करके आसमान पर चढ़ते हो ? तुम्हारे पास गुमान करने योग्य क्या पड़ा है ? जिसे तुम अपना समझते हो, तुम्हारा नहीं है । पूर्व जन्म में दान दिया, शील पाला, तपस्या की और भावना भाई होगी, तभी आज लम्बे-चौड़े पसर रहे हो । मेरे इतने धगले और इतनी कोठियाँ हैं, इस प्रकार कह कर अपनी श्रीमंताई जतला रहे हो । मगर यह सब आया कहाँ से है ? पूर्व जन्म में कोई हमारे भाई मिल गये होंगे । उन्हीं के प्रताप से आज यह वैभव है । सेठानीजी आज गोखरू देख कर फूली नहीं समाती और घर पर कोई साधु सत पहुँच जाय तो आहार देने से भी कतराती हैं । मगर उन्हें क्या पता है कि यह गोखरू उनके पति ने दनवाये हैं अथवा उनके पुण्य ने दनवाये हैं ? और वह पुण्य

रहना है। धरे जीव ! क्यों घमण्ड करता है ! भरसे क बाँधे प
जाने क्यों व्यसन्न होगा ! कहा है—

कोई रे गुमान करे आपना,
मान केछा गुमान करेछा, तो नीच गति मारिं आय पड़ेया।

लोग मान-गुमान में मस्त हो रहे हैं। कोई बाँध का
अभिमान करता है, किसी के पास पैसा बहुत हो गया है। किसी
का शरीर सफल और स्वस्थ है तो वह सोचता है कि मैं दूसरों
का कचूमर भिड़ाऊँगा। किसी को ज्ञान का अभिमान है तो
वो अपने अपनी सुन्दरता के गस्तर में चूर है। मगर ज्ञानी जनों का
कहना है कि—क्यों घमण्ड करता है रे कचूर ! जन-सम्पत्ति, शरीर
और सुन्दरता कितने दिन की है ! इस घमण्ड के फल में तुम
एक दिन रोना पड़ेगा !

कई लोग अपनी इज्जत के लिए रोना करते हैं। वे कहते
हैं—कोई हमें पूछता नहीं है ! मगर उन्हें सोचना चाहिए कि
अब मोर के साथ कौन की तरह बचाया गया था तब तुम किमने
पूछा था ? हाँ हमारी बात सामान्य तो जरूर पूछ आयागे। हम
क्या कहते हैं ? अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी नहीं करते। हमें मंद
नहीं चाहिए, पूछा नहीं चाहिए। तुम्हारे हीरे और पत्ते हमारी
नजरों में पत्थर के टुकड़े हैं। तुम्हारे हारों और सने की साँझों
का हम पल का पन्दा समझते हैं। तुम्हारा साना और बोरी
हमारे लिए पैरों की बूझ के बराबर है। तुम जिस सम्पत्ति पर
हो हम उस विपत्ति मानते हैं इसलिए हमें हममें से किसी की
इच्छा नहीं है। हम तुमसे जो कुछ मतवाला चाहते हैं, वह तुम्हारे
ही बर्बाद के लिए है हमारे स्वार्थ के लिए नहीं। हम कहते हैं—

दया करो, सन्तोष रक्खो, चोरी मत करो, अनीति की राह पर मत चलो । हमारा यह कहा मानो —

हो म्हारी मानो मानो मानो मानो मानो मानो रे ।

हो डर आनो आनो आनो आनो आनो आनो रे ॥

भाइयो ! मेरी बात मानो । मैं बार-बार आग्रह करके कहता हूँ कि मानो, अवश्य मानो । परलोक से डरो, डरो । नहीं मानोगे तो पछताओगे ।

बोलो मेरा कहना मानना चाहते हो या नहीं ? क्या सलाह है ? याद रक्खो, अगर मेरा यह हित-कथन न माना तो इसी जन्म में ठोकरे खाते फिरोगे, परलोक में तो कहना ही क्या है !

अरे भाई ! क्यों नखरे करते हो ? क्यों गुमान करके आसमान पर चढ़ते हो ? तुम्हारे पास गुमान करने योग्य क्या पड़ा है ? जिसे तुम अपना समझते हो, तुम्हारा नहीं है । पूर्व जन्म में दान दिया, शील पाला, तपस्या की और भावना भाई होगी, तभी आज लम्बे-चौड़े पसर रहे हो । मेरे इतने घगले और इतनी कोठियाँ हैं, इस प्रकार कह कर अपनी श्रीमति आई-जतला रहे हो । मगर यह सब आया कहाँ से है ? पूर्व जन्म में कोई हमारे भाई मिल गये होंगे । उन्हीं के प्रताप में आज यह वैभव है । सेठानीजी आज गोखरू देख कर फूली नहीं, समाती और घर पर कोई साधु सत पहुँच जाय तो आहार देने से भी कतराती हैं । मगर उन्हें क्या पता है कि यह गोखरू उनके पति ने बनवाये हैं, अथवा उनके पुण्य ने बनवाये हैं ? और वह पुण्य

साधु-संतों की कृपा से तपाजन किया था या आसमान से टपक पड़ा था ? सुकसीदास कहते हैं—

सुकसी हरि के मलय बिन, मानुष पदरा दाब ।

रात-दिन स पड़ता फिरै पास न डाढ़े कोप ॥

बाहे राजा हो या रानी हो अगर मगधान् का मजन नहीं करेगा तो बसकी दुर्दशा ही होने वाली है । ईश्वर के मजन न करने पर भी गधी बन जायगी और मनुष्य गधा बन जायगा । गतिबों-नादियों मटकता फिरेगा और कोई चारा भी नहीं ढाढ़ेगा । रात-दिन भार होने की सुसीधत भी चठानी पड़ेगी ।

गाय कहती है—मैं गोमाता कहाती हूँ । लोग मेरा भावर-सम्मान करते हैं । मुझे देवता की तरह मानते हैं । मैं बहुत उपयोगी हूँ । अमृत सरीखा दूध देती हूँ । बंती आदि के लिए दूध देती हूँ । मरने के बाद मरी बसकी और इष्टिर्वा भी काम आती हैं । लेकिन अब मैं अपने स्वामी की इच्छा के विरुद्ध कहती हूँ, मुझमें देव भा जाता है तो मेरे गले में बसक बोध दिवा जाता है—ठगुर डाक दिया जाता है । तो माई, अगर तुम तीन लोक के स्वामी के विरुद्ध कहोगे और दोषों का अपने अस्त-करव में प्रभव दोगे तो क्या तुम्हारे गले में भी लकड़ी नहीं डाली जायगी ? राम होते ही तुम सफेद गध्नी का रास्ता लोगे, मरिच पाव करोगे और दूसरे दुष्कर्म करोगे तो किस प्रकार क्या किसे जाओगे ?

हे जगत् के जीवो ! मैं बार-बार बोहराता हूँ और तुम जान जोड़ कर सुनो । तुम्हारा पर यहाँ भरी है । तुम एक लम्बे

पथ के पथिक हों। तुम्हारी मजिल दूर-बहुत दूर है। अविराम गति से उसी ओर चलते-जाओगे तो लक्ष्य पर पहुँच जाओगे। इधर-उधर भटकोगे तो कहीं पता भी नहीं चलेगा। लक्ष्य-भ्रष्ट होकर कष्ट उठाओगे। तुम्हारे मार्ग में बड़े बड़े खदक हैं, नदी नाले हैं, सागर हैं, उन्हें-तुमको पार करना है। वीतराग देव ने तुम्हारे हाथ में प्रकाश-स्तम्भ दे दिया है। उसी की रोशनी में आगे बढ़ो। अगर तुम उस प्रकाश में न चले और अधकार में भटक गये तो कौन तुम्हारी रक्षा करेगा ? वह स्थिति बड़ी भयानक होगी ॥

आज तुम मनुष्य हो और ईश्वरत्व की ओर अग्रसर हो सकते हो। अगर पीछे पैर हटाया और नीचे की ओर खिसके तो खिसकते-खिसकते कहाँ पहुँचोगे, कौन कह सकता है ? एकेन्द्रिय की पर्याय तक भी पहुँच सकते हो। पत्थर और पानी के जीव भी बन सकते हो। पत्थर बनोगे तो लोग ठिया बनाकर शौचक्रिया करेंगे। जलकाय बनस्पति काय और अग्निकाय में जन्म ले लिया तो क्या जोर चलेगा ? पानी बनोगे तो लोग कुल्ला करके थुरे-थुरे करेंगे। अग्नि बनोगे तो कौन कह सकता है कि श्मशान की आग नहीं घन जाओगे ? भाई ! जब पतन का आरंभ होता है तो उसका अन्त आना कठिन हो जाता है। कवि ने कहा है—

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।

एक बार जिसने विवेक का परित्याग किया, उसका सौ-मुखी पतन हो जाता है। इसलिये मैं तुम्हें चेतावनी दे रहा हूँ कि समय रहते सावधान बनो। जरा विचार करो-तुम कौन हो ? तुम्हारा क्या स्वरूप है ? क्या लक्ष्य है ? लक्ष्य तक पहुँचने का

कौन सा माग है ? और कम माग पर ही बहन का हृद संकल्प
करे और बच्चा सो कम्पाउ होगा ।

बह लोग कहते हैं—परनाक डकसना है । इस परनाक
नहीं मानते । मैं एक लोगों से कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे दिन
में यह जा विचार उत्पन्न हुआ है, सो प्रश्न पाप का बरिदान
है । तुम्हारा दिन इसी में है कि रीति से रीति इस मिथ्या विचार
का पूरा कर दो । क्योंकि परनाक है और तुम्हारे न मानने से
मिट नहीं सकता । पागल कहता है—सरकार किस विधि
का नाम है, हम नहीं जानते । मगर जब वह चलाठ मचाठा है
तो पागलखान में बंद कर दिया जाता है और कोहों को मार
मार कर उसकी अकल दुल्लु की जाती है । जब उसकी अकल
टिखान जाती है तो वह मान सता है कि सरकार है । यही बात
तुम्हारे संकल्प में होगी । किसी ने कहा है—

सातस्य हि ब्रुव मृत्युः ।

जिसने जन्म लिया है, वह निश्चय ही मरण चाहा है ।
जब मरण चाहा है तो कुछ ही जन्म भी लगे चाहा है । मरण
परनाक न मान कर पानाचरण में रह दो आश्रय तो मीथ्य
संकल्पों में पड़ जायाग ।

कत मर के लिए कल्पना कर भी लो कि परनाक का हाना
और न हान्य निश्चित नहीं है तब भी जीवन को पवित्र बनाने का
प्रयत्न करने में तुम्हारी क्या हानि है ? वेसा करने पर बरि पर
त्यक्त हुआ तो सुखी हो जाओग । न हुआ तो बोर हानि की
संभावना तो है ही नहीं । इसक विरुद्ध परनाक नहीं है, वेसा

मान कर अगर पाप का आचरण करोगे और अगर परलोक हुआ तो क्या तुम्हारी दुर्दशा न होगी ? माइयों, धर्म और न्याय नीति का पालन करना किसी भी स्थिति में अहित कर नहीं हो सकता ।

धर्म से परलोक सुवरता है, यह सच है और इसमें लेश मात्र भी सदेह नहीं है । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि धर्म का इहलोक के साथ कोई संध नहीं है । यल्लि सत्य तो यह है कि धर्म का इहलोक में प्रत्यक्ष संध है और परलोक से परोक्ष संध है । अगर मानव जाति में से आज धर्म की भावना सर्वथा निकल जाय और सर्वत्र अधर्म ही अधर्म की प्रतिष्ठा हो जाय तो ससार की क्या दशा होगी ? राजा अपने धर्म का पालन न करे तो प्रजा की क्या स्थिति होगी ? माता अपने धर्म को भूल कर अधर्म का ही आचरण करने लगे तो क्या पुत्र जीवित भी बच सकेगा ? पति और पत्नी अपने-अपने धर्म को तिलाजलि देकर अधर्म में रत हो जाएँ तो क्या पल भर भी शान्ति मिल सकेगी ? माइयो, यह पृथ्वी धर्म के आधार पर ही टिकी है । धर्म के प्रसाद में ही प्राणी मात्र का जीवन है । अगर अधर्म ही अधर्म को आश्रय दिया जाय और हिंसा, मृड, चोरी और व्यभिचार के आधार पर ही जीवन यापन किया जाय तो क्या यह पृथ्वी नरक से भी बदतर नहीं बन जायगी ? सर्वत्र हत्या, मारपीट, लूटपाट की स्थिति में क्या पल भर जीवित रहना कठिन नहीं हो जायगा ?

यह धर्म की ही महिमा है कि आप सुख-चैन से जीवन व्यतीत कर रहे हैं । धर्म की इस प्रबल महिमा को कौन अस्वीकार

कर सकता है ? ऐसी स्थिति में संत पुरुष अगर धर्म की व्याख्या करने की प्रेरणा करते हैं तो क्या परबोध को मानने वाले आस्तिक के लिए और क्या परबोध न मानने वाले आस्तिक के लिए—दोनों के लिए वह प्रेरणा मान्य होनी चाहिए ।

हिन्दु आज बहुतेरे लोग हैं जो इतनी गंभीरता के साथ विचार नहीं करते । न जाने क्यों उन्हें धर्म से एक प्रकार की चिड़ हो गई है । उनमें ज्ञान तो पूरा होता नहीं फिर भी बातें पसी करते हैं मानों दुनिया की सारी अकल तन्हीं में आ बसी है । दुनिया में बड़े-बड़े महापुरुष हो गये हैं । आप हमली बात सभी मानेंगे या इन गणोर्ध्वसंकों की बात सभी मानेंगे । जिन्हें छूने और बैठने का भी पूरा तमीज नहीं है, वे कहते हैं हम परबोध नहीं मानते ! मानों वे जाकर बेस आये हों ! मत्र पुरुषों ! तुम्हें राज कृष्ण और महावीर की बात माननी चाहिये । उन्होंने बतलाया है कि जीव मरता है और जन्म लेता है और जब तक सृष्टि प्रलय नहीं होती यह चक्र सदैव चलता रहता है । महापुरुषों के ज्ञान के सामने इन लोगों की क्या अकल है ? अचूरी अंगरेजी पढ़ की और कुरखीब करने लग ! वह अचूरी अकल ही अनेक समयों को चपल करती है ।

गंभीर भी अंगरेजी पढ़ से पर वे अचकचरे नहीं वे । विद्वान् वे । कितने बड़े आदमी वे ! किन्तु कृष्ण की और रामों की बातों को सुनावा करते वे । वे धर्म की महिमा को पहचानते न । और इधर वे विगड़ी आपकी के लोग हैं जो कहते हैं कि हम परबोध नहीं मानते धर्म नहीं मानते ! ऐसे लोग मत्बर की सीढ़ के सामने हैं, जो आप दूबत हैं और दूसरों को भी डुबाते हैं ।

ऐसे लोग अपनी बुद्धि के अभिमान से चाहे कुछ भी कहे, आपको अपने हित के मार्ग पर ही चलना चाहिए । अभिमानी आदमी न स्वयं सही बात सोच सकता है और न दूसरों की बात मानता है । वह तुच्छ होता हुआ भी अपने आपको महान समझता है । एक मच्छर भैंसे के सींग पर बैठ गया । वह भैंसे से कहने लगा—क्यों रे पाडे । मेरा वजन तो तुम असह्य नहीं लगता ? भैंसा कहने लगा—वाह रे मच्छर । क्या तू भी किसी गिनती में है ? इसी तरह गाड़ी के नीचे-नीचे कुत्ता चलता है । वह समझता है कि गाड़ी मेरे महारे चल रही है । मैं ही गाड़ी का सारा बोझ उठाये हूँ । उसे नहीं मालूम है कि गाड़ी में बैठे जुते हैं और वह गाड़ी को चला रहे हैं ।

इसी तरह अभिमानी लोग अपने आपको सब कुछ समझ लेते हैं और दूसरों को कुछ भी नहीं समझते । वे औरों की तो बात ही क्या, ईश्वर को भी गालिया देते हैं और साधुओं को ढोंगी बतलाते हैं । मगर वे बेचारे क्या करें ? उन्होंने मद और मोह की मदिरा पी रखी है । इस कारण उन्हें सम्यक् का भान नहीं है । थोड़े से रुपये भिन्न गये, अच्छे कुल में जन्म ले लिया लोगों में प्रशंसा होने लगी तो फूँजा-फूँजा फिरता है । उसे नहीं मालूम कि ससार में एक से एक बड़कर धनवान और सम्पत्तिशाली लोग मौजूद हैं । वह क्या जाने कि कुल का अभिमान करने वाला अनन्त बार श्वान और श्वपच योनि में उत्पन्न हो चुका है और इस अभिमान के फलस्वरूप ऐसी ही निकृष्ट योनियों में फिर उत्पन्न होना पड़ेगा ।

अभिमान से कौन फूँजा-फूँजा है ? जिम्मे अभिमान किया

कर सकता है ? ऐसी स्थिति में संत पुरुष अगर धर्म की आराधना करने की प्रेरणा करते हैं तो क्या परलोक को मानने वाले वास्तविक के लिए और क्या परलोक न मानने वाले वास्तविक के लिए—दोनों के लिए वह प्रेरणा मान्य होनी चाहिए।

जिन्हु आज बहुतेरे लोग हैं जो इतनी गंभीरता के साथ विचार नहीं करते। न जाने क्यों उन्हें धर्म से एक प्रकार की विद्वेह हो गई है। उनमें ज्ञान तो पूरा होता नहीं फिर भी बातें पसी करते हैं, मानों दुनिया की सारी अक्ल उन्हें में आ बसी है। दुनिया में बड़े-बड़े महापुरुष हो गये हैं। आप उनकी बात सभी मामलों का हम गपोडीसंझों की बात सचची मानेंगे। जिन्हें लड़न और बैठने का भी पूरा समीज नहीं है, वे कहते हैं हम परलोक नहीं मानते ! मामों वे जाकर बेस आये हों ! भद्र पुरुषों ! तुम्हें हम कृष्ण और महावीर की बात माननी चाहिये। उन्होंने बतलाया है कि जीव सरता है और जन्म लेता है और जब तक सुख प्राप्त नहीं होनी यह एक सदैव चलता रहता है। महापुरुषों के ज्ञाप के सामने इन लोगों की क्या अक्ल है ? अचूरी अंगरेजी पढ़ की और कूटनीय करने लगे ! वह अचूरी अक्ल ही अनेक मामलों को कपल करती है।

गंधीजी भी अंगरेजी पढ़ का पर वे अक्लबरे नहीं थे। बिहान् थे। कितने बड़े आदमी थे। जिन्हु कृष्ण की और रामों की बातों को सुनावा करते थे। वे धर्म की महिमा को पढ़ावते थे। और हजर वे बिगड़ी कोपड़ी के लोग हैं जो कहते हैं कि हम परलोक नहीं मानते, धर्म नहीं मानते। ऐसे लोग मरने की मीठा का समान हैं, जो आप बुरत हैं और दूसरों को भी बुराते हैं।

चित्र-मयूर गया हार निगल,
विक्रम साँ भूप चौरंगा बना ।
घाँची के घर फेरी घाणी,
फिर भावी क्या दिखलावेगा ? ॥

चाहे जितनी तू तदबीर करे,
तकदीर लिखा वही पावेगा ।
चलती नहीं हुआत यहाँ किसकी,
चाहे जितना मगज लड़ावेगा ॥ ध्रुव ॥

आज शनैश्चर वार है । शनिजी की कथा कही जाती है,
जो इस प्रसंग के अनुकूल है- -

राजा विक्रम एक सेठ के यहाँ कमरे में बैठ कर मोक्षन
कर रहा है । उस कमरे की दीवार पर एक मोर का चित्र बना
हुआ है और वहीं खूटी पर एक हार टँगा है । असंभव प्रतीत
होता है कि चित्र लिखित मोर हार को निगल जाय, मगर विक्रम
के देखते-देखते वह मोर हार को निकल गया । सेठ ने राजा के
पास जाकर फरियाद की और राजा ने चोरी के अपराध में
विक्रम के दोनों हाथ कटवा लिये । उसके बाद विक्रम को एक
तेली ले गया । उसने उस अपनी घाणी पर बिठलाया ।

मगर जब अच्छे दिन आते हैं तो सब कुछ अच्छा ही
अच्छा हो जाता है ।

एक दिन एक नट आया । उसने तमाशा ^{दिलसावेई}
लिए कहा और साथ ही माँग की कि मेरा

आप प्रसन्न हो जाएँ तो मुझे इतना इनाम दीजिएगा कि फिर किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता न रह जाय ।

राजा ने नट की माँग स्वीकार कर ली । नट ने दोबारा दिक्काना शुरू किया । नट के दोबारा दिक्काने पर भी राजा का दिक्काना नहीं हुआ । तब नट ने वहाँ मरे पड़े हुए एक कबूतर के शरीर में अपनी आत्मा निवास कर राजा की । कबूतर जीवित होकर गुटर गं-गुटर गूं करने लगा । अब की बार राजा भुरा हुआ । नट ने इनाम माँगा तो राजा ने कहा—मुझे यह बिधा सिखा दे । नट ने कहा—बंगाल में मेरा गुठ खूब है । उनकी आँखा के बिना यह बिधा नहीं सिखाया सकता । राजा विस्मय का यह बिधा सीकने की बड़ी उत्कण्ठा थी अतएव वह नट के साथ बंगाल जाने के लिए तैयार हो गया ।

आपरो आश्चर्य होगा कि आत्मा दूसरे शरीर में कैसे प्रवेश करती जाती है ? पर भारतीय भाग-प्रकृति में इसकी भी साक्ष्य बरक़ाई गई है । शंकर विनिश्चय में शंकराचार्यजी ने लिखा है कि एक की के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ । जब वह आचार्य को निठुर म कर लगी तो उसने भी प्रकृति के विषय में प्रश्न किया । मगर शंकराचार्य ब्रह्मचारी थे और इस विषय में सर्वथा अनभिज्ञ थे । वे इसका इस प्रश्न का उत्तर न दे सके । तब उन्होंने उससे उत्तर देने के लिए कुछ समय माँग लिया ।

इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शंकराचार्य ने अपनी आत्मा एक मरी हुई चील के शरीर में रख दी । जब कोर राजा मर गया तो चील के शरीर में से अपनी आत्मा को निकाल

कर राजा के शरीर में प्रविष्ट कर ली और फिर रानी के साथ रह कर स्त्री-प्रवृत्ति सीखी । यह किस्सा लम्बा-चौड़ा है । तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल में इस प्रकार की भी एक विद्या भारतवर्ष में मौजूद थी, ऐसा मालूम होता है ।

राजा विक्रम ने यह विद्या सीखने का निश्चय कर लिया । तब वह अपनी सातों रानियों के पास जाकर बोला-तुम्हें जो चीज सब से ज्यादा प्यारी हो वह लाकर दो । तब किसी ने हार, किसी ने गोखरू आदि लाकर दे दिये । राजा ने दीवार में गड़हा करके वह सब चीजें उसमें रख दीं और रानियों से कहा-मैं एक नयी विद्या सीखने के लिए बगाल जा रहा हूँ । पीछे से कोई गुडा आ जाय, चाहे उसका रूप हूयहू मेरे जैसा ही क्यों न हो, तो उससे सर्व-प्रथम यही प्रश्न करना कि पहले मेरी प्यारी चीज बतलाओ । अगर वह सही उत्तर दे दे तो उसे 'विक्रम' सम्मना, अन्यथा विश्वास मत करना ।

इस प्रकार अपनी रानियों को सम्मना कर विक्रम राजा अपने पुरोहित को साथ लेकर विद्या सीखने के लिए नट के गुरुजी के पास गया । वह विनयपूर्वक विद्या सीखने लगा और एक तम्बू में रहने लगा । छठ महीने में उसने सम्पूर्ण विद्या सीख ली । राजा ने विद्या सीखी सो सीखी, साथ ही राजा का पुरोहित भी उस विद्या को सीख गया ।

अब राजा विक्रम अपने पुरोहित के साथ घर की ओर रवाना हुआ । मार्ग में पुरोहित ने कहा—राजन् ! आपने विद्या सीख तो ली है पर उसकी आजमाइश नहीं की कि वास्तव में

बढ़ सिद्ध हुई है या नहीं ? एक बार परीक्षा करके देख लो कीर्तिपति । राजा ने पुरोहित की बात मान ली और अपनी आत्मा निष्काश कर मरे हुए सोते के शरीर में प्रविष्ट की ।

इधर उस पूर्व और कपटी पुरोहित ने अपनी आत्मा राजा के शरीर में प्रविष्ट कर ली और अपने शरीर को ब्रह्मा कर सम्म कर दिया । पुरोहित सीधा बज्रौन आया और मन्त्रों में शक्ति हो गया । सारी बज्रौन में राजा के सङ्क्रान्त शक्ति आने की सुशियो मनाई गई, क्योंकि बिक्रम राजा ब्रह्मा ही ब्रह्म और प्रजापति था । वह प्रजा की अपनी सन्तान के समान प्रेम करता था और प्रजा पिता के समान उसका आदर करती थी ।

बिक्रमराजीरवारी पुरोहित रानियों के पास गया और इधर उधर की बातें करने लगा । मगर बिक्रम बाते समय ही उन्हें सावधान कर गया था । रानियों ने राजा की वह बात बाह करके कहा अगर आप सचमुच ही ब्रह्मकीर्तिपति मन्त्राय हैं तो बतलाइए कि हमारी प्यारी बस्तुएँ क्या हैं ? पुरोहित बद्ध में पड़ गया । वह 'ये' करके रह गया । रानियों समझ गई कि वह नकली राजा है । उन्होंने कहा—मन्त्रा बाहते हो तो इसी ब्रह्म मन्त्र से बाहर ब्रह्म जाओ नहीं तो हम साथों मिल कर ली बोटी-बोटी भक्षण कर देंगी ।

पुरोहित को मन्त्र में फिर जाने का साहस नहीं हुआ । वह बाहर ही बाहर रहने लगा । उसे इस बात का संतोष था कि रानियों नहीं मिलीं तो न छड़ी, रान्य तो मिल ही गया ।

क्यों मर्दाने ! राजा बिक्रमादित्य कितना परास्त्री और

प्रतापशाली राजा था, मगर आज वह किस हालत में आ पहुँचा है। वह तोता बना हुआ है और टां-टां करता फिरता है।

एक दिन जगल में किसी चिड़ीमार ने इस तोते को फाँस लिया। उसने किसी राजा को बेच दिया। राजा उसकी बोली सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। रानी ने एक मैना पाल रखी थी। तोता उसी के पास पींजरे में बन्द कर दिया गया।

कहानी लम्बी है। संक्षेप में ही कहता हूँ। इस राजा की एक अठारह वर्ष की कन्या थी। इस राजा ने उज्जैन के राजा विक्रम को बहुत प्रतापी और योग्य समझ कर उसके साथ अपनी लड़की की सगाई कर दी। नकली विक्रम दूल्हा बन कर आया। तोता यह सब घटनाएँ बड़ी उत्सुकता और व्यग्रता के साथ देख रहा था। उसने राजा को सलाह दी—जब दूल्हा तोरण पर आ जाय तो उससे कहना कि पहले अपनी आत्मा बकरे के इस शरीर में प्रविष्ट करो, उसके बाद विवाह की विधि की जायगी। नकली विक्रम ने राजा के इस तरह कहने पर अपनी आत्मा बकरे के शरीर में प्रविष्ट कर दी। उधर तोते ने अपनी आत्मा फौरन ही उसके शरीर में—जो मूलतः विक्रम का ही शरीर था—प्रविष्ट कर दी और तोते के शरीर को भस्म कर दिया। इतनी सुसीधत के बाद विक्रम राजा अपने असली शरीर में पुनः दाखिल हो सका। राजकुमारी के साथ उसका विवाह हुआ और वह उज्जैन लौट आया।

भाइयो ! जब एक ही जन्म में, विक्रमादित्य जैसे प्रतापशाली, पराक्रमी और विद्यावान् राजा को तोते के शरीर में निवास करना पड़ता है, तो अभिमान करने की गुजाइश ही

क्यों रखती है ? विक्रम की यह कथा-कोई इतिहास नहीं है। एक दृष्टान्त के तौर पर इसका प्रयोग किया गया है। इस कथा से यह भी मात्तम हो जाता है कि दगाबाज की अन्त में कितनी दुर्बला होती है। पुरोहित राजा और प्रजा में सम्मान का राव था। मगर चौबेजी अपने बनने बसे तो हुंसे ही रह गये। दगाबाजी के पक्षस्वरूप पुरोहित को बकरे की हकत में बिहारी गुजारी पड़ी। दगाबाज के विषय में कहा जाता है—

दगाबाज दना ममे, चीठा चोर कमान ।

पहले झुठे खुब, हैं, पीछे इरेते मान ॥

दगाबाज पहले बड़ी ममता दिखाता है। चीठा चोर और कमान को देखो। इसका ममता अंतरनाक है।

माइयो ! अमिमान मनुष्य का एक प्रकृत राहु है। जो अमिमासी है वह स्वभावतः अपने राई जितने गुणों को पर्वत के बराबर और दूसरों के पर्वत के बराबर गुणों को राई के बराबर समझता है। उसके ऐसा समझन से दूसरों की कोई हानि नहीं होती कभी की हानि होती है, क्योंकि उसके सहगुणों का विवाह नहीं हो सकता। वह न बिधा प्राप्त कर पाता है, न विनय प्राप्त कर सकता है और न दूसरे मरुगुण ही पाता है। अमिमासी को कोरा हिकारत की निगाह से देखते हैं। जगति में जितना चाबक अमिमान है, उतना और कोई नहीं। अतएव अमिमान को त्याग देना ही बेवकूफ है।

जम्बूद्वार की कथा

जिसने संसार की वास्तविक स्थिति को समझ लिया

होगा, जिसने जीवन की क्षणिकता का स्वरूप जान लिया होगा और धन-वैभव की निस्सारता को पहचान लिया होगा, वह विवेकवान् व्यक्ति कभी अभिमान के चगुल में नहीं फँसेगा। जम्बूकुमार को किस चीज की कमी है? घर में धन के अक्षय भंडार भरे हैं, नवयौवन अवस्था है, अभी-अभी विवाह हुआ है। ससारी लोग जिन वस्तुओं को पाकर जमीन पर पाँव नहीं धरते और इतराते-फिरते हैं, वह सब वस्तुएँ जम्बूकुमार को प्राप्त हैं। मगर उन्होंने इन सब वस्तुओं के अहंकार का त्याग कर दिया है। इसीलिए वे विरक्त होकर साधु बनने की तैयारी कर रहे हैं।

सयोग वश प्रभव चोर जम्बूकुमार के समस्त धन पहुँचा है। उसने एक प्रश्न खड़ा किया कि एक पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् आपको दीक्षा लेनी चाहिए। मगर जम्बूकुमार ने उसे समझाया कि जीव अपने किये पुण्य-पाप के फल को ही भोगता है, पुत्र के होने या न होने से कोई सुखी अथवा दुखी नहीं हो सकता। ससार बड़ा विषम है। इसमें अचिन्त्य घटनाएँ घटती रहती हैं। पुत्र अपने पिता के प्रति, अनजान में कैसा व्यवहार कर बैठता है, यह बात एक दृष्टान्त से जम्बूकुमार समझाते हैं—

विजयपुर नामक किसी ग्राम में महिषदत्त नामक एक व्यापारी रहता था। महिषदत्त प्रकृति से सरल था किन्तु मिथ्यात्वियों की सगति से मिथ्यात्वी बन गया था। जब उसका घाप मरने लगा तो उसने महिषदत्त से कहा—बेटा! मेरी एक बात याद रखना। अगर मेरी गति सुधारना चाहो तो मेरी मरण-निश्चि के दिन एक पाँडे को मार कर मेरा श्राद्ध करना और

कुटुम्ब को मोशन कराना । लड़के ने अपने मरणासन्न पिता की बात स्वीकार कर ली ।

बोड़े समय बाद बूढ़ मर गया । वासना रह जाने के कारण वह एक भैंस के पेट में जाके के रूप में जन्मा ।

महिषरक्ष की माता बड़ी कोमल थी । उसके पंख बहुत सा बल था । उसने अपने लड़के को वह बल नहीं बतलाया और पसीन में गाड़ कर रक्खा । वह जसी जगह सोठी जहाँ पन गया हुआ था । वह एक दिन मर गई और उस पन में भासछि रह जाने के कारण जसी गल्ली में एक कुटी के रूप में उत्पन्न हुई । अब वह बड़ी हुई तो वह जसी पन पर आकर बैठने लगी ।

एक बार महिषरक्ष किसी दूसरे गाँव गया था । महिषरक्ष की पत्नी दुराचारिणी थी । वह झौटकर घर आया । उसमें किसानों में जो बातें छगाईं तो किसानों कुछ राखे । उसने चम्बर का दस्य देखा तो क्रोध से जलने लगा । तत्काल चलाकर उसने जसी समय वहाँ मौजूद दूसरे पुरुष के हो दुफ्फे कर दिये । उसके बाद वह अपनी पत्नी की भी गर्मज उठा दन के छिप तैयार हुआ, मगर वह रोने लगी और भाजीजी करने लगी । बोली-मेरी गमती हुई । मुझे चमा कर दो । महिषरक्ष किसी तरह मान गया पर उसने कठोर चेतावनी दे दी कि जबकी बार दुराचार किया तो याव रक्खा-जान से मार दूंगा ।

वह दुराचारी पुरुष मर गया था । उसकी माफता उस औरत ने रह गई थी अतः वह जसी के गर्म में उत्पन्न हुआ ।

समय पूरा होने पर लडके के रूप में उसका जन्म हुआ । महिपदत्त ने पुत्र उत्पन्न होने की खुशी मनाई । लडका धीरे-धीरे एक-दो वर्ष का हो गया ।

महिपदत्त के पिता की मृत्यु तिथी आई । पिता के अंतिम आदेश के अनुसार उसे पाँड़े को मारकर श्राद्ध करना था । वह पाड़ा खरीदने गया और वही पाड़ा मोल ले आया जो उसके बाप का जीव था । पाड़ा खरीद लिया गया और नियत समय पर मार डाला गया । उसका मांस सब कुटुम्बियों को खिलाया और हड्डियाँ एक तरफ फेंक दीं । उन हड्डियों को वह कुतिया चाटने लगी जो महिपदत्त की पूर्वभव में माता थी ।

महिपदत्त अपने बालक को गोद में लिये उस कुतिया को भगा रहा है । उसी समय मासखमण की तपस्या करने वाले एक मुनि उधर से निकले । उन्होंने उसके घर पर चीले मढराती देखकर अवधिज्ञान का उपयोग लगाया तो समस्त घटना जान ली । सहसा उनके मुख से निकल पड़ा—‘अहो अकज्ज, अहो अकज्ज, अहो अकज्ज, अहो अकज्ज ।’

महात्मा के मुख से यह शब्द सुनकर महिपदत्त को आश्चर्य हुआ उसने महात्मा से पूछा—कृपा कर बतलाइए, मेरे यहां क्या अकार्य हुआ ?

मुनि बोले—भाई ! ससार अत्यन्त विषम है । तूने अपने बाप को मार डाला है और अपनी माँ को मार रहा था । इतना ही नहीं तू अपने दशमन को लानी से लगाने लगा है ।

महिषरक्ष घोटा—महाराज ! साजु होकर आप क्यों छूट बोझते हैं ? मेरे बाप को और मेरी माँ को मरे कई वर्ष बीत गये हैं । दुरमन मेरा कोई है ही नहीं । फिर आप क्या चोटसेर कर रहे हैं ?

सुनि ने लपटीकरण करत हुए कहा—किसकी बुद्धि पर अज्ञान का पर्दा पड़ा होता है, उसे सत्य नहीं समझता । तुम्हारे पिता मरते समय पाड़ा मारने के लिए कह गये थे न ? सो कहीं ने पाड़े के रूप में जन्म ग्रहण किया था और उसी पाड़े को आप हमने मारा है ।

महिषरक्ष—रहने दीजिये, आपने कह दिया और मैं सुन लिया । मैं इतना मूर्ख नहीं की आपकी इन मिराबार बातों पर विश्वास कर दूँ ।

सुनि ने कहा—और सुन लो । यह कृतिमा मेरी पूर्व जन्म की माता है । मन में वासना-ममता रह जाने के कारण यह कृतिमा हुई है । जहाँ यह बैठे, वही कोबोले तो तुम्हें जब मिला आकला ।

महिषरक्ष कभी समय दीका । बसने जमीन खोदी तो मन विच्छन्न भाषा । दुरमन भाकर बसने सुनि से कहा—महाराज, आप की यह बात तो सही है । जब वह भी बतसाइय कि मैं अपने दुरमन को कैसे प्यार कर रहा हूँ ? सुनिने कहा—कपाय माय पारव्य मत करना । संसार की वास्तविक स्थिति क्या है, यह बतझाले के लिए ही मैं यह पक्ष्य प्रोज कर रहा हूँ । एक जन्म का राजु अपनेक जन्मों का मित्र भी है और इसी प्रकार मित्र, राजु भी है । सब जीवों के साथ संसार में सब प्रकार के संबंध रह चुके हैं ।

अतएव बुद्धिमान् पुरुष इस 'तथ्य' को जानकर समभाव धारण करते हैं, विषम भावों से अभिभूत नहीं होते ।

इतनी भूमिका के पश्चात् मुनि बोले—यह लडका उसी पुरुष का जीव है जिसने तुम्हारी पत्नी के साथ दुराचार किया था और जिसे तुमने मार डाला था । इसकी हड्डियाँ अभी तक मौजूद हैं । यह तुम्हारी पत्नी के गर्भ में उत्पन्न हुआ है । कहा भी है—

है ससार असार न करना पल भर राग सयाने !
यहा जीव ने अब तक पहने हैं कितने ही वाने ।
सब जीवों के सब जीवों से सब संबंध हुए हैं,
लोकप्रदेश असंख्य जीव ने अगणित बार लुए हैं ॥

× × × ×

एक जन्म की पुत्री मर कर है पत्नी बन जाती,
फिर आगामी भव में माता बन कर पैर पुजाती ।
पिता पुत्र के रूप जनमता, बैरी बनता भाई,
पुत्र त्याग कर देह कभी बन जाता सगा जमाई ॥

मुनि का कथन सुनते ही सहिषदत्त को सब घातों पर विश्वास हो गया । उसने अपने पिता के भैंसा होने और उसी के श्राद्ध में उसी के मारे जाने की बात पर भी विश्वास कर लिया । मगर घोर पश्चात्ताप से उसका हृदय व्याकुल हो गया । उसका अन्तःकरण गहरी वेदना से आहत-सा हो गया । आँखों में आँसू भर कर वह मुनिराज के चरणों में गिर पड़ा । धोला-महाराज, मैं

मे अपना जीवन भ्रष्ट कर दिया है। मैं घोर पाठकी हूँ। मेरे गुणधर्मों की सीमा नहीं है। मुझ-सा अमागा संसार में और कौन होगा ? गुहारेब ! आपने मेरे नेत्र खोल दिये हैं। मगर तुझे मेजों से जो कुछ बेक रहा है वह मेरे लिए असहनीय है। पञ्चात्ताप और परिताप की जूती में, ठिठ-ठिठ कर चलना मैं किस प्रकार सहन कर सकूँगा ? क्या मुझ जैसे अतर्क्यकारी और अधर्मी के लिए नरक में भी जगह मिल सकेगी ? प्रभा ! मुझे प्राबन्धित का मार्ग सुझाइए। कल्याण की राह दिखाइए।

मुनि ने अपने निसर्ग-सरस, सुख और मधुर स्वर में, शान्त भाव से कहा—बस ! रोने से काम नहीं चलता। कृत पापों के लिए प्राबन्धित करना उचित है। पञ्चात्ताप भी जरूरी चाहिए। मगर यह सब इसलिए कि आत्मा में पुनः पाप न करने की प्रेरणा पैदा हो और पाप करने का प्रसंग उपस्थित होने पर भी आत्मा की प्रवृत्ति पाप में न हो। इस प्रकार पापों से दूर रहने की दृढ़ता प्राप्त करना ही पञ्चात्ताप का प्रयोजन है। सिर्फ श्रौंसू ब्रह्म से पाप नहीं पुनः सकते। वेदानुप्रिय ! तुम मूढ़ हो और तुमने अज्ञात-अवस्था में पापकर्म का आचरण किया है। पाप किसी भी अवस्था में क्यों न किया जाय पाप ही रहता है, मगर जान बूझ कर किये जाने वाले पापों की अपेक्षा अज्ञान में हुए पापों का फल इतना होता है। कैसा भी पाप क्यों न हो, उसके परिमार्जन का मार्ग भी है और वह मार्ग है धर्म का आचरण करना।

मूढ़ ! संसार में पाप हैं, इसीलिए धर्म भी है। पापों का प्रशान्त करने के लिए धर्म की उपयोगिता है। घोर से घोर

पातकी भी धर्म का सेवन करके पापमुक्त हो जाता है। पाप रूपी रोगों को शान्त करने के लिए या जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए धर्म ही एक मात्र महान् औषध है।। अगर तुम्हारे हृदय में सचमुच पश्चाताप का भाव उत्पन्न हुआ है और तुम पापों का प्रतिकार करने की कामना करते हो तो धर्म की शरण लो। धर्म अहिंसा में है, सत्य में है, अचौर्य में है और इसी के अनु-रूप दूसरे प्रशस्त अनुष्ठानों में है। तुम प्रतिज्ञा कर लो कि मैं आज से कम से कम निरपराध, चलते-फिरते-बस जीवों की जान-बूझ कर हिंसा नहीं करूँगा, स्थूल असत्य भाषण नहीं करूँगा, चोरी नहीं करूँगा, किसी की धरोहर नहीं हड़पूँगा, पर स्त्री गमन नहीं करूँगा, गरीबों को नहीं सताऊँगा, उनके हक को न दबाऊँगा, रात्रि में भोजन नहीं करूँगा, आदि। साथ ही प्राणी मात्र पर दया-अनुकम्पा की भावना रखना, यथा शक्ति पात्र को दान देना, परोपकार करना, दीन-हीन असहाय जनों को सेवा-सहायता करना, जीवन में कमी अन्याय-अनीति का प्रवेश न होने देना, आदि के लिए भी दृढ भाव धारण करो। इत्यादि उपदेश देकर मुनि ने महिषदत्त को श्रावक के वारह व्रत धारण कराये। उमकी पत्नी ने भी व्रत ग्रहण कर लिये।

मुनि का यह सब उपदेश सुनकर कुत्ती क्रो भी ज्ञान उपजा। मुनि के उपदेश से वह सयारा करके स्वर्ग गई।

भाइयो ! आज धर्म के विषय में बड़ी भ्रांति फैल रही है। जैसे धन-सम्पदा के विषय में लोग कहते हैं कि यह मेरी है, और यह तेरी है, इसी प्रकार धर्म के विषय में भी वे समझते हैं कि यह तेरा है और यह मेरा है। यह बड़ा भारी भ्रम है। जैसे

बन्धुमा और सूर्य किसी एक के नहीं हैं, सभी के हैं, वैसे बापु और माँका किसी एक का नहीं और सभी का है, उसी प्रकार धर्म किसी एक का नहीं-सभी का है। धर्ममें ठरे-मेरे की कल्पना कर सेवा मारी भूल है। किसी प्राणी को न छताना धर्म है, असत्य न बोलना धर्म है, ब्रह्मचर्य का पालन करना धर्म है, ममता या क्रोध का त्याग करना धर्म है। पर यह धर्म किसका है ? क्या यह धर्म किसी एक व्यक्ति का है और दूसरे व्यक्ति का नहीं है ? अथवा एक समूह का है और दूसरे समूह का नहीं है ? अगर यह धर्म एक ही व्यक्ति या समूह का हो तो दूसरों का धर्म क्या प्राणी को छताना मूठ बोलना अभिचार करना आदि होगा ? नहीं। यह धर्म हो जाय तो संसार का ठकता ही छूट जायगा। वास्तव में धर्म मनुष्य मात्र के लिए है। यह धर्म एक है। उसके पक्ष अनेक हो सकते हैं और भेदों में भी अनेक हो सकती हैं। कोई धर्म का थोड़ा पालन करता है, कोई अधिक पालन करता है। इस प्रकार बेसीमेर होने पर भी और शास्त्र के प्रकार से अन्तर होने पर भी धर्म का स्वरूप एक ही रहता है।

धर्म पर किसी का आधिपत्य नहीं है, न वह धर्म ब्राह्मणों के लिए है, न क्षत्रियों के लिए है, न वैश्यों के लिए और न केवल शूद्रों के लिए है मनुष्य मात्र धर्म की आराधना करने का अधिकारी है। धर्म के विराजित प्राण में किसी भी प्रकार की स्वार्थता और मित्रता की अवकाश नहीं है। धर्म आकर मानव मात्र समान बन जाता है। धर्म की यह वारता मनुष्य है और मानव जाति के लिए बरवान है।

इतना ही नहीं मनुष्य मात्र ही धर्म का अधिकारी हो

सो बात नहीं है, बल्कि पशु-पक्षी भी धर्म के अधिकारी हैं । शास्त्र स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि पशु पक्षी भी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार धर्म का आचरण कर सकते हैं और अपने अभ्युदय का प्रयत्न कर सकते हैं । तदनुसार ही मुनि ने कुत्ती को भी धर्म का पथ प्रदर्शित किया और उसने धर्म के प्रताप से स्वर्ग प्राप्त कर लिया । जगत् के जीवों के लिए धर्म ही एक मात्र आधार है । धर्म उनका सहायक और उपकारक है ।

सुनो मे बायाँ । सुनो-समझो तो बायाँ नहीं तो गाया ।
और समझो तो मरद नहीं तो बलद ।

महिषदत्त की कथा सुनाकर जम्बूकुमार ने प्रभव से कहा प्रभव । तुम कहते हो कि पुत्र के बिना सद्गति नहीं मिलती । मगर इस कथा से प्रकट है कि पुत्र किस प्रकार अपने पिता की सद्गति करता है ॥ सच बात तो यह है कि कोई किसी को पुण्य या पाप नहीं दे सकता । कोई किसी को सुगति या दुर्गति में नहीं भेज सकता । सभी जीव अपने किये का फल भोगते हैं ।

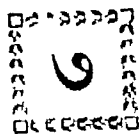
प्रभव ने कहा—कुमार । आपका ज्ञान मेरे हृदय में उतर गया है । मैं समझ गया हूँ कि ससार निस्सार है । कुटुम्ब-परिवार की कल्पना सब कल्पना मात्र है । सभी प्राणियों का भाग्य स्वतन्त्र है । मैं आपका धन चुराने आया था, किन्तु आपने मेरा मन चुरा लिया है । अपना मन आपको देकर मैं हल्का हो गया हूँ । जान पड़ता है, सिर पर से भारी बोझा उतर गया है । मैं आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग और नरक-सब की सत्ता तलवार की धार में समझे हुए था । आपने मेरा हृदय मोस बना दिया

है । धन-सम्पदा के प्रति अब मेरे हृदय में कोई आकर्षण नहीं रहा है । मैं अपनी राह छोड़कर अब आपकी राह पर ही चलना चाहता हूँ । आप संयम र्चगीकार करेंगे तो मैं भी आपका अनुसर करूँगा । मैं धर्म की साधना करके अपने विषम पापों से छुटकारा पाने का यत्न करूँगा ।

माइनों ! लगे महात्मा का रगड़ा तो मिट जाने सारा गंगा । प्रभव ने सब गंगाई छोड़कर आज गया साग स्वीकार किया है । वह प्रातः काल होत ही साधु बनने को तैयार हुआ है । तुम्हारा प्रातः काल कब होगा ? तुम्हारे लिए तुम्हारा सुर्ग कब बनेगा ?

अब कमी बनेगा तब आनन्द ही आनन्द का आयगा ।

स्थान-आमपुर }
ता १८-८ ४८ }



लोकोत्तर विजय



स्तुतिः—

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह—

वेगावतारतरुणातुरयोधभीमे ।

युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा—

स्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् । आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन् । आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

कोई पुरुष सग्राम में गया हुआ है । सग्राम बड़ा भीषण है । इतना भीषण की युद्ध भूमि में भालों की नोक द्वारा छेदे-भेदे

गय हाथियों के एक की भागा का प्रबाह, नदी के जल की तरह बोग के साथ बह रहा है और उसे पार करना कठिन है। पर हे भगवान् ! जो लोग आपके परम-कर्मों का आश्रय लेते हैं, ऐसे मोर-अति पार संकट के समय में या आपके स्मरण करते हैं, वे दुःख शत्रुओं पर सुरक्षता से ही विजय प्राप्त कर लेते हैं।

भगवान् के नाम स्मरण ही यह महिमा है। भगवान् के नाम स्मरण में ही प्रकार की महिमा है—लोकोत्तर महिमा और लौकिक महिमा। यहाँ लौकिक महिमा का उल्लेख किया गया है। कहा जा सकता है कि लोकोत्तर महिमा की क्या करते आचार्य ने लौकिक महिमा का उल्लेख क्या किया है ?

इस कथन का उत्तर यह है कि भगवत्स्मरण की शानो प्रकार की महिमाओं में से लोकोत्तर महिमा ही प्रधान है। लोकोत्तर विजय की प्राप्ति होना लोकोत्तर महिमा है और लौकिक विजय प्राप्त होना लौकिक महिमा है। जिसे लोकोत्तर विजय प्राप्त हो जाती है, उसे लौकिक विजय प्राप्त करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इस प्रकार लोकोत्तर विजय में लौकिक विजय का समावेश हो जाता है। परन्तु वह आवश्यक नहीं कि लौकिक विजय प्राप्त करने वाला लोकोत्तर विजय प्राप्त कर ही ले। इस कारण लोकोत्तर विजय प्रधान है।

लोकोत्तर विजय और लौकिक विजय क्या चीज है ? दोनों में क्या अन्तर है ? वह संक्षेप में कहता हूँ। कब के व्याख्यान में बताया गया था कि आत्मा के अन्दर एक प्रकार का संपन्न निरन्तर अधिराम गति से बह रहा है। वह अन्तर्निहित से

चालू है और आज भी सब ससारी आत्माओं के भीतर चल रहा है। यह सग्राम आत्मा के स्वभाव और विभाव में हो रहा है। राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, अज्ञान, अदर्शन आदि दुर्गुण आत्मा के शत्रु हैं। यह शत्रु आत्मा के किले में घुसे हुए हैं। इन्होंने आत्मा रूपी राजा का अपना निर्मल स्वरूप रूपी राज्य छीन लिया है और उसे सिद्धशिला रूपी सिंहासन पर नहीं बैठने देते। इस प्रकार भीतर घुस कर युद्ध करने पर भी और अपने स्वरूप से गिर जाने पर भी आत्मा रूपी राजा ऐसा पराक्रमी और शूरवीर है कि वह इन शत्रुओं के सामने आत्म-समर्पण नहीं करता है। वह अपनी शक्ति के अनुसार शत्रुओं का मुकाबिला करने के लिए डटा हुआ है। ससार के प्रत्येक आत्मा के साथ यह लड़ाई छिड़ी हुई है।

जिस आत्मा को धर्म रूपी दिव्य शस्त्र की प्राप्ति हो जाती है और जिसे सद्गुरु रूपी पथ प्रदर्शक मंत्री मिल जाते हैं, वह आत्मा इन आन्तरिक शत्रुओं के घल को धीरे-धीरे क्षीण-क्षीणतर करता हुआ अन्त में समूल नष्ट कर देता है। इन शत्रुओं का समूल नाश हो जाने पर आत्मा अपने सद्गुण रूपी साम्राज्य का निष्कटक स्वामी बन जाता है। वह तीन लोक का ईश और पूज्य बन जाता है। सिद्धशिला रूपी सर्वोच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

इस प्रकार की विजय आत्मा की अन्तिम विजय होती है। कारण यह है कि एक बार पूर्ण रूप से नष्ट हुए विकार-वैरी फिर कभी सिर ऊँचा नहीं कर सकते। अतएव फिर कभी उन्हें

जीवन की आवश्यकता ही नहीं रहती । यह आत्मा स्वामी रामा की परम विजय है । इसे लोकान्तर विजय कहते हैं ।

लौकिक विजय अनन्त प्रकार की है । शरीर पर तेज स्त्री शत्रु का आक्रमण हुआ । आपने उचित आहार बिहार करके, लपन करके, पथ्य का मसन करके अथवा भीषण का प्रयोग करके रोग का हटा दिया । यह एक तरह की लौकिक विजय कहलाइ ।

मान क्षीजित आप व्यापार करते हैं । अनेक व्यापार से घाटा हा गया और दरिद्रता से आपको वशोप किया । इससे बाद किसी व्यापारी की सहायता लेकर आपने फिर व्यापार शुरू किया । बहुत सावधानी से आप व्यापार करने लगे । धीरे धीरे आपकी दरिद्रता दूर हो गई । यह भी एक प्रकार की लौकिक विजय कहलाइ ।

चाइ दिगार्थी दिगाभ्यसन करता है । उसके सामने अनेक कठिनाइयों हैं । उन तमाम कठिनाइयों को जीत कर वह अंतिम परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है । दिगार्थी का वह विजय भी लौकिक विजय है ।

है कि लौकिक विजय का सवध भिन्न है वह जीवन के साथ है, आगामी जीवन या परलोक के साथ उसका कोई संबंध नहीं है। रोगों पर विजय प्राप्त कर लेने से मनुष्य जन्म-जन्मान्तर के लिए नीरोग नहीं बन सकता। दरिद्रता को दूर कर देने से सदा के लिए अगले जन्मों के लिए—कोई सम्पत्तिशाली नहीं बन सकता। विद्यार्थी ने परीक्षा उत्तीर्ण करली है, मगर परलोक में उसकी उपाधि साथ नहीं जा सकती। इसी प्रकार जिस राजा ने अपने शत्रु को मार कर भगा दिया है, वह विजयी तो हो गया है परन्तु परलोक में भी वह विजयी ही बना रहेगा, यह नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार कोई भी लौकिक विजय क्यों न हो, वह इसी जन्म तक सीमित रहती है—अगले जन्म में उसका तनिक भी प्रभाव नहीं रहता।

दूसरी बात यह है कि लौकिक विजय जीवन पर्यन्त कायम ही रहेगी, यह नहीं कहा जा सकता। रोगों पर विजय प्राप्त करके मनुष्य नीरोग हो जाता है, मगर थोड़े दिन बीतने पर फिर रोग का हमला हो जाता है। दोबारा दरिद्रता आ जाती है। राजा ने आक्रमणकारी राजा को भगाकर विजय प्राप्त करली है, परन्तु यह तो नहीं कह सकते कि अब वही या दूसरा कोई राजा उस पर आक्रमण नहीं करेगा ?

इस प्रकार लौकिक विजय प्रथम तो परलोक में काम नहीं आती, दूसरे वहलोक में भी स्थायी नहीं रहती। यह दो दोष लौकिकविजय के महत्त्व को नगण्य-सा बना देते हैं। भला उस विजय का मूल्य ही क्या है, जिसके पीछे पराजय खड़ा-खड़ा ताक रहा है ? किसी नौका में छेद हो गया हो और पानी भरता

जा रहा हो। आप उस पानी को लुत्तीचते जायेंगे और पानी का भाना जारी रखेंगे तो आपका लुत्तीचने का महत्त्व क्या है? इसी प्रकार आप विजय प्राप्त करते हैं, मगर उसके साथ ही साथ अगर पराजय भी आ रही है तो ऐसी विजय का कोई मूल्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त एक बात और है। पहले कहा जा चुका है कि लौकिक विजय अनेक प्रकार की है। इस अनेक प्रकार की लौकिक विजय में से एक मनुष्य सभी प्रकार की विजय नहीं प्राप्त कर सकता। महाहरण के लिए-जिसने रोग पर विजय प्राप्त कर ली है, वह दुरिच्छा पर भी विजय पा चुका है, यह नहीं कहा जा सकता। अगर एक राजा ने दूसरे राजा पर युद्ध करके विजय प्राप्त कर ली तो क्या उसने रोगों पर भी विजय प्राप्त कर ली है? नहीं। मरुत्तव यह है कि मनुष्य एक प्रकार की लौकिक विजय पा लेने पर भी अनेक प्रकार की पराजयों का शिकार हो जाता है। जब अनेक प्रकार की पराजय उसकी द्रिष्टी को दुःखमय बनावे रहती है तो एक प्रकार की विजय का क्या महत्त्व है?

इस विवेचन से आप समझ सकेंगे कि लौकिक विजय और लोकोत्तर-विजय में क्या अन्तर है? लौकिक विजय पूर्ण विजय नहीं है लोकोत्तर विजय पूर्ण विजय है। लौकिक विजय परलोक में साथ नहीं देती और इस लोक में भी अन्त तक साथ नहीं देती जब कि लोकोत्तर विजय नित्य और शाश्वत है। लौकिक विजय पराजय के रूप में परिवर्त हो सकती है किन्तु लोकोत्तर विजय प्राप्त कर जन के पश्चात् पराजय का कभी सामना ही नहीं करना पड़ता। लोकोत्तर विजयता अनन्त काल के लिए सदा के लिए विजयी बनता है।

जब लौकिक विजय क्षणिक, महत्त्वहीन, नगण्य और निस्तार है और लोकोत्तर विजय शाश्वत, एकान्त और आत्यन्तिक है, तो फिर आचार्य महाराज ने भगवान् के नाम की महिमा बतलाते हुए लौकिक विजय का उल्लेख क्यों किया है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि आचार्य महाराज की रची हुई पूरी स्तुति अगर आप पढ़ेंगे तो विदित हो जायगा कि उन्होंने लोकोत्तर विजय का भी उल्लेख किया है और लौकिक विजय का भी उल्लेख किया है। लोकोत्तर विजय का उल्लेख आगे के पद्यों में आया; जो यथा समय आप सुन सकेंगे। अतएव यह प्रश्न ही सही नहीं है कि लोकोत्तर विजय का उल्लेख क्यों नहीं किया गया।

हाँ, यह सवाल जरूर खड़ा किया जा सकता है कि अगर लौकिक विजय महत्त्वहीन है तो फिर उसका उल्लेख करने की आवश्यकता ही क्या थी ? जिन भगवान् के नामस्मरण से महिमा-मयी लोकोत्तर विजय प्राप्त हो सकती है, उनके स्मरण से अगर लौकिक विजय मिल गई तो कौन बड़ी बात हो गई ?

इस प्रश्न के उत्तर में एक बड़ा रहस्य है। बहुत-से लोग आत्मकल्याण के लिए तो वीतराग भगवान् का भजन करते हैं, परन्तु लौकिक कामनाओं की पूर्ति करने के लिए भैरों-भवानी, तेजाजी और पावूजी आदि के सामने अपना मस्तक रगड़ते हैं। उन्होंने 'व्यवहार खाते' की एक पछ पकड़ रक्खी है। उनका कहना है कि व्यवहार-खाते [मे भैरों-भवानी की मान्यता और पूजा की जाती है। ऐसे लोगो की आँखें खोलने के लिए आचार्य महाराज ने यहाँ यह बतलाया है कि भगवान् ऋषभदेवजी का नामस्मरण करने से ही लोकोत्तर प्रयोजन के साथ लौकिक प्रयोजन भी सिद्ध हो जाते हैं। जब

मगवान् के स्मरण से ही सभी प्रयोजना की सिद्धि हो जाती है तो फिर उसके लिए मिथ्यादृष्टि वृत्तों के कारण मत्पा टेकने की क्या आवश्यकता है ? जिसकी सेवा करने से आपको दो लाभ उपवा मिल सकते हैं, उसकी सेवा से क्या दो पैसे नहीं मिलेंगे ? क्या दो पैसे के लिए किसी दूसरे से पाचना करने वाला बुद्धिमान् क्या आना ? नहीं । मगवान् की मूर्ति से लोकोत्तर-विशेष मिलती है और लोकोत्तर-विशेष में ही सब प्रकार की लौकिक विज्ञान का समावेश हो जाता है । फिर क्या शेष रह गया जिसके पाने के लिए दूसरों के सामने हाथ फैलाया जाय ? क्या दो लाख रुपये में दो पैसों का समावेश नहीं हो जाता है ?

जिस प्रकार भी पाने के लिए वृक्ष उखाया जाता है मगर भी के साथ छात्र चलायास-आनुवंशिक रूप में प्राप्त हो ही जाती है । इसी प्रकार लोकोत्तर प्रयोजन की सिद्धि के लिए मगवान् का नामस्मरण किया जाता है किन्तु आनुवंशिक रूप में लौकिक प्रयोजन भी हमसे मिल ही जाते हैं । जिस सिद्धि छात्र के लिए वृक्ष उखाने वाला भादमी विवेकवान् नहीं कहा जा सकता, वही प्रकार सिर्फ लौकिक प्रयोजन के लिए मगवान् का नामस्मरण करने वाला बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता । सर्वज्ञान का भी कोई पैका कर छात्र ग्रहण करने वाला मूल है, वही प्रकार लोकोत्तर प्रयोजन को सीधे कर सिर्फ लौकिक प्रयोजन को ग्रहण करने वाला भी मूल है ।

सतकथ यह है कि मगवान् का नाम जपन से लौकिक प्रयोजन भी पूरा हो जाता है । क्योंकि लौकिक प्रयोजन के लिए ही मगवान् का नाम जपना योग्य नहीं है, क्योंकि पूजा करने से असली

और महत्त्वपूर्ण लाभ में वंचित रह जाना पड़ता है, मगर लौकिक लाभ प्राप्त करने के लिए अन्य देवताओं की शरण में जाने की भी जरूरत नहीं है।

राग-द्वेष आदि दोषों से दूषित देवों की भक्ति और आराधना करना मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व जिसके मौजूद है वह वीतराग प्रभु के प्रति एकनिष्ठा प्रीति नहीं रख सकता। जैसे पति-धृता स्त्री एक ही पुरुष को अपना पति मानती है, उसी प्रकार धर्मात्मा पुरुष एक मात्र वीतराग देव को ही अपना आराध्य और पूज्य समझता है। इसी रहस्य को समझाने के लिए स्तुतिकार ने इस पद्य में लौकिक प्रयोजन-सिद्धि का उल्लेख किया है।

भाइयो ! भगवान् की महिमा अमित है। अहिंसा, सत्य और अस्तेय के अवतार, ब्रह्मचारी, निर्लोभ और निस्वार्थ तथा ससार से कोई वास्ता न रखने वाले महात्माओं के चरण भी जहाँ पड़ जाते हैं, वहाँ की धूल भी पवित्र हो जाती है और औषध का काम देती है, तब फिर भगवान् के चरण-कमलों की धूलि का तो कहना ही क्या है? भगवान् के नाम में तो महिमा है ही, उनके चरण-कमलों की धूल भी महिमा से मण्डित हो जाती है।

भाइयो ! महापुरुषों की हवा का स्पर्श हो जाय तो कोढ़ियों का कोढ़ चला जाता है। जहाँ उनके चरण पड़ते हैं उस घर के सब विघ्न दूर हो जाते हैं। पर यह तो दुनिया की बात है। असल में तो भगवान् के वचनामृत का पान करने वाला अपने समस्त पापों पर विजय पा लेता है।

जिससे आत्मा का पतन होता है वह पाप कहा जाता है। किसी प्राणी को तत्कालीन देना पाप है, क्योंकि किसी प्राणी सुख चाहता है, तत्कालीन देना कोई नहीं चाहता। किसी की रोजी को छात मारना भी पाप है, किसी की सौकरी को छुका देना भी पाप है। इसमें वह और उसके वाक्य तत्कालीन पाप हैं। वह सब प्रत्यक्ष पाप हैं। कुछ पाप परोक्ष भी होते हैं, जैसे—माछड़ी पकड़ने के लिए बाक गू घना, शिकारियों के लिए धनुष-बाण बनाना आदि। चाहे प्रत्यक्ष पाप हो या परोक्ष पाप हो, इससे आत्मा का पतन अवश्य होता है। यहाँ तक कि इंसान में बुरे विचार खाना भी पाप है और उससे भी पतन होता है। यों तो संसार में जितने भी बर्मे-विद्वद् कार्य हैं, सभी पाप में गिने जाते हैं और इन सब की संख्या मिश्रित करना कठिन है किन्तु शास्त्रकारों ने यथ्यम रूप से पापों की संख्या अठारह बतलाई है। इन अठारह पापों में ही सब का समावेश हो जाता है। वह अठारह पाप इस प्रकार हैं—

(१) प्राण्यातिपाठ (२) मृपाबाध-असत्य भाषण (३) अविचारान-बोरी (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) व्याद (१३) अम्पाक्याम (१४) पैशुम्व (१५) परपरिवाद (१६) रुठि अरुठि (१७) मायामृपाबाध (१८) मिथ्यादर्शन।

इनमें सबसे बड़ा पाप अठारहवाँ है और सबसे महान् पाप पहला है। मिथ्यादर्शन का पाप सब पापों की जड़ है। जब तक वह पड़ूट बाध तब तक कोई भी पाप नहीं बूट सकता। वह पाप नरक और मिथ्ये में ले जाने वाला है। जो जीव मिथ्ये

अवस्था में हैं उन्हें एक समय में १७॥ बार जन्म और मरण करना पड़ता है। एक मुहूर्त में ६४५३६ बार जन्म लेना और मरना पड़ता है।

जब जीव में कारण मिलने पर सद्वृद्धि जागृत होती है, तब मिथ्यात्व का पाप हटता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर जब अप्रत्याख्यानावरण कपाय हटता है तो श्रावक के योग्य चारित्र्य का पालन करने की शक्ति आती है। उसके बाद जब प्रत्याख्यानावरण नामक कपाय भी हट जाता है साधुपना पालन करने की शक्ति आती है। मनुष्य जब दीक्षा अंगीकार कर लेता है तो अपना भी कल्याण करता है। और अन्य जीवों का भी कल्याण करता है। वह कैसा होता है—

राजा पदवी को छोड़ हुए महाराजा,
महाराज सारे आत्म का काजा जी।

वे तब कंचन के मडल,
जाय वन बीच विराजा जी ॥

धन्य हैं ऐसे महापुरुष जो अद्वि-सम्पदा, भोगोपभोग, कुटुम्ब-परिवार, मोटरों आदि की सवारी, उत्तम भोजन और वस्त्र त्याग कर जगल की राह लेते हैं और ससार को झूठा समझते हैं। जो ससार की ओर पीठ करके मोक्ष के सामने मुँह करते हैं। जिसे धम्बई जाना होता है वह घर की तरफ पीठ करके स्टेशन की तरफ जल्दी-जल्दी जाता है। जब टिकिट लेकर गाड़ी में बैठ जाता है तो चित्त को शान्ति मिलती है। इसी प्रकार जब साधुपन लेने का विचार होता है तो दीक्षा लेने की

बड़ी ऊँचा होनी है। उच्च जीवनपर्यन्त की सामायिक लक्ष्य की जानी है तभी निश्चय है कि जब भी मोक्ष के पथे का पता मिले। तब वह ससार की चार में विमुक्त हो जाता है।

मात्रो 'माधु महात्मा' अब से ही और क्यों सच था रह है? उत्तर यह है कि जब से नवकारमंत्र है तभी से साधु भी बन आ रहे हैं और जब से साधु बन आ रहे हैं तभी से नवकार मंत्र बना आ रहा है। नवकारमंत्र अनादि है तो साधु भी अनादि हैं। अनादिकाल से साधु-सन्तों की परम्परा चले आ रही है। काह मास में आ रहे हैं और कोइ स्वर्ग में आ रहे हैं।

काहचक्र अनादिकालीन है। उसके दो विभाग हैं—उत्तरार्धकाल और अधरार्धकाल। उत्तरार्धकाल के बाद अधरार्धकाल और अधरार्धकाल के बाद उत्तरार्धकाल काह आता है। आजकल अधरार्धकाल काह है। इस अधरार्धकाल के क्षेत्र में साधुओं की परम्परा नहीं थी। तीसरे चरण के अन्तिम समय में सर्वप्रथम आपमन्त्र भगवान् साधु बने। उन्होंने जब कबल ज्ञान प्राप्त किया तो चारों तीर्थों की स्थापना की। जैसे सेठजी गैर मौजूगी में मनीस मन का काम करता है वही प्रकार भगवान् भी गैर मौजूगी में साधु बनेका काम कर रहे हैं। वे स्वयं भगवान् की आज्ञा का पालन करते हैं और दूसरों को आज्ञा देकर काम का उपकार करते हैं। वे अपना भी कल्याण करते हैं और दूसरों का भी कल्याण करते हैं।

हाँ तो भगवान् आपमन्त्र के बाद चोखे चारे में तैरते हीबकर हुए। उनमें अन्तिम तीर्थकर भगवान् महावीर स्वामी

थे। भगवान् जब निर्वाण को प्राप्त हुए तो उनके पट्टधर सुधर्मा स्वामी हुए। सुधर्मा स्वामी के बाद जवू स्वामी, प्रभव स्वामी, भद्रशाहु स्वामी और तत्पश्चात् स्थूलिभद्र स्वामी हुए। इस प्रकार होते-होते ६८० वर्ष बाद श्रीदेवर्धिगणि क्षमाश्रमण स्वामी हुए। उन्होंने शास्त्र लिपिवद्ध किये और बीस वर्ष के बाद वे भी इस ससार को त्याग कर स्वर्गवासी हो गये। उनके बाद उनके शिष्य-गण विचरते रहे।

एक बार बारह वर्षीय अकाल पडा। उस भयानक अकाल के समय में साधु क्रियाहीन हो गये। तभी से साधुओं के आचार में शिथिलता का प्रवेश हुआ। बीच-बीच में जिन्होंने ऊँची क्रिया की, उन आचार्यों के नाम पर अलग-अलग गच्छ स्थापित हो गये।

यों करते-करते वि० स० १५०० में लोकाशाह महता हुए। उन्होंने भगवान् के सच्चे मार्ग को पहचाना और उसका उपदेश दिया जिससे ४५ भद्रपरिणामी पुरुषों को वैराग्य आया। इन्होंने उन साधुओं को, जो कराची की तरफ थे और जिनका आचार शुद्ध था, सदेश भेजा कि अगर आप ग्यारह साधु अहमदाबाद की तरफ पधारें तो अच्छा होगा। वे अहमदाबाद की तरफ रवाना हुए किन्तु आठ-नौ मुनि मार्ग में ही स्वर्गवासी हो गये। शेष जो रहे, अहमदाबाद आये। वहाँ ४५ मनुष्यों ने दीक्षा ली। लोकाशाहजी ने उन्हें शास्त्रों का अभ्यास कराया। फिर दो-दो के सघाड़े बना कर उन्हें भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भेज दिया। कोई मालवा की ओर तो कोई दक्षिण की ओर, कोई पंजाब की तरफ,

तो अइ सी पी० यू पी० की तरफ चले । उन्होंने भाषा के धर्म को पैदाया ।

बात सभी है कि दुनिया मुझने को तैयार है, मुझने बाता चाहिए । मर्याद मनुष्य स्वभाव से सत्य का प्रेमी होता है । सत्य सभी को मिल है और बचिहर है । मूठ किसी का मिल नहीं होता । यह बात दूसरी है कि असत्य और सत्य के सत्य का पूरा पता कोई न लगा सक । यह भी संभव है कि कोई असत्य को ही सत्य समझ कर इस सत्य के रूप में स्वीकार कर ले और सत्य को असत्य मान कर सत्य का त्याग करे किन्तु यह मिसमिसे कहा जा सकता है कि ऐसे लोगों में भी सत्य के प्रति अकर्मक आस्था होती है । वही सत्य के ही अनुरागी होते हैं । कारण यही है कि प्राणी मात्र को सत्य स्वभाव से ही मिल है ।

पैताहीम माधुघो ने बाइस संवादों के रूप में विचारों प्रारंभ किया । वे आदरा आचार-विचार से सम्पन्न त्वाणी, बैरागी और आत्मनिष्ठ भक्तगार थे । यहाँ कहीं पुरुषों, उनके गुणों की प्रशंसा हुई । लोग बड़ा के साथ उनके प्रति आकर्षित हुए । तभी से 'बाइस सम्प्रदाय' नाम प्रचलित हुआ । इस सम्प्रदाय में समय-समय पर बड़े-बड़े त्वाणी-बैरागी महात्मा होते आते हैं—

बाईम नाम धराने से ही सही धर्म मही दीप सकता; बहिक छुट माधुपना पावन से ही धर्म दीप सकता है । जो छुट पावन का पावन करेगा वह अपना भी कल्याण करेगा और दूसरों का भी कल्याण करेगा । बाईम सम्प्रदाय में समय-समय पर महा महिमा में सम्पन्न आ मुक्ति हो गये हैं, उन सब का श्रेष्ठ करेगा बहुत बहिन है । उनसे ने भिन्नो ही को मने स्वर्ग देता है और

कितनी ही के विषय में श्रावकों से सुना है। व्याद करते हैं कि उनकी साधुता कितनी उष कोटि की थी।

भाते आते हैं महा-उपकारी जैन पूज्यवर याद ॥ टेर ॥

पूज्य सुनिश्री हुक्मचन्द्रजी, रहे व्याख्यान सुनाय।

बरसे ये रुपये नम से, नाथद्वारा माय ॥ १ ॥

भाइयो! पूज्य हुक्मीचन्द्रजी महाराज बड़े प्रतापी महा-त्मा हो गये हैं। उन्हीं का यह सम्प्रदाय है। उन महापुरुष ने २१ वर्षों तक बेले-बेले का पारणा किया। वे वारह महीने तक एक ही चदर रखते थे। भोजन में सिर्फ़ तेरह द्रव्य उन्होंने रखे थे और उनमें भी मीठी चीजों का, कढ़ाई में तली हुई चीजों का तथा चूरमा वगैरह का त्याग था। केवल अग्नि पर जैसे पापड़, घाटी आदि मिकी हुई चीजें भी काम में नहीं लेते थे। बड़े ही तपस्वी और भाग्यवान् थे। पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज विचरते-विचरते एक बार नाथद्वारा पधारे। प्रातःकाल व्याख्यान दिया तो एक चमत्कार हुआ। आकाश से रुपयों की वर्षा हुई। जिसने वह रुपया सामाग्रिक के बैठके के नीचे सरका दिया, उसका तो रह गया, बाकी के सब रुपये गायब हो गये। उनमें से एक रुपया एक भाई के पास है और वह हमने देखा है।

भाइयो! जो सब महापुरुष होते हैं, देवता भी उनकी सेवा करते हैं। देवगण भी उनके प्रताप और प्रभाव को फैलाने में सहायक होते हैं।

पूज्य हुक्मीचन्द्रजी महाराज के सर्वधर्म में कई घटनाएँ और सुनी हैं। रामपुरा (मालिवा) में बड़े जोरों का हैजा चल रहा था।

किन्तु श्लो ही आपने रामपुरा में पोंब रक्खा देखा बंद हो गया ।

एक बार वीणा लेना चाहती थी । उसके बुदुम्बीजय वीणा गाने लेने लेते थे । उन्होंने उस बार के हाथों-पैरों में जंजीरें बांध रखी थीं । जब आप उस बार के घर मिठा के लिए पधारे तो वह बिपाव करती हुई बोली-पूम्ब भी । मैं कैसे बहराऊँ ? पूम्ब भी न कहा-रुठ कर बहरा दो । बार श्लो ही लगी हुई, जंजीरें तब तक टूट गईं । पूम्ब भी के प्रताप से कई कोदियों का कोढ़ बसा गया । और फिर—

पूज्य धर्मशास्त्री ने शिष्य अपना कपूर धान ।

धार सहर में अनघन कीना, रखी धर्म की धान ॥१॥

एक महात्मा पूम्ब धर्मशास्त्री महाराज हुए हैं । उनके एक शिष्य ने धार में अनघन किया । शिष्य बीमार था और बसकी बीमारी असाम्य माहूम होती थी । उसने संभारा के किया । संभारा करने के बाद वह भण्डा हो गया तो उसकी माबना बण्ड गई । जब गुलजी को माहूम हुआ तो उन्होंने अपनी शान रखने के लिए वहाँ से बिहार कर दिया । रास्ते में किसी ने भूरमा-भाटी बनाई थी । आपने उसका आहार किया और जीवन मर के लिए पानी पीने का स्वाग कर दिया और संभारा के किया । जहाँ उनका शिष्य था उसी जगह समाधि लगा दी और आप छूट गये । इसक बाद आपका शरीर सूख गया । ओह ! बस की शाव रखने के लिए उन्होंने अपना शरीर का अलग कर दिया । क्या वह स्वाग कोई साधारण है ? -

नेतसिंह मुनि किया संथरा, सेवा सुर आ करते ।
उनके नाम का महुआ सैलाने, आज तलक जन कहते ।३।

एक नेतसिंहजी महाराज हो गये हैं । वे भी महामाग्यवान् और प्रभावशाली महापुरुष थे । वे बेले-बेले का पारणा करते थे और एक ही चादर ओढ़ते थे, चाहे कैसी ही कड़ाके की सर्दी क्यों न पड़ती हो । उन्होंने यह भी नियम ले रक्खा था कि कोई गाँव कितना ही छोटा क्यों न हो, चाहे दो घरों का ही हो, एक रात अवश्य वहाँ ठहरना । एक द्वार कजेड़े की तरफ एक गाँव में पहुँचे । गाँव में उपयुक्त स्थान न मिलने के कारण वे एक पेड़ नीचे ठहरे । रात का समय था और सर्दी का मौसिम था । उस दिन लकड़वाह ठंड पड़ी । मुनिराज सिर्फ एक चादर ओढ़े हुए थे । वे ध्यान में बैठे थे कि एकदम लुढ़क गये और बेहोश हो गये । जब सवेरे सूर्य निकला और शरीर में गर्मी पहुँची तो सचेत होकर उठे । नित्यकर्म करके आगे विहार किया । विहार करते-करते जावद पहुँचे । वहाँ के श्रावकों की धर्म में बहुत लगन थी । उन्होंने श्रावकों को सूचना दे दी-रात्रि के समय कोई श्रावक यहाँ न ठहरे और न कोई सुबह जल्दी आवे । मगर पिछली रात में कई श्रावक जल्दी आ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि मुनिराज जिस मकान में ठहरे हैं, उसके द्वार पर शेर बैठा है । शेर को देखते ही वे उलटे पैरों भागे ।

मुनिराज जावद से विहार करके विचरते-विचरते रतलाम पधारे । उन्होंने जावद की तरह यहाँ भी श्रावकों से कह दिया कि रात के समय यहाँ कोई न रहे । सब श्रावक चले गये तो

बैठा कि एक भावमी सज्जन कर बैठा हुआ है। दूसरे दिन पूछा—रात को जैन आया था ? सब हागों ने कहा—मैं नहीं आया, मैं नहीं आया। भाव भाव तो आप वही समय वसंते पूछ लीजिएगा कि तू जैन है।

दूसरी रात फिर वही भावमी दिक्कड़ों दिवा। मुनिराज ने वसंते पूछा—तू जैन है ? चत्तर मित्रा—मैं बेवता हूँ।

मुनिराज ने फिर कहा—तुम जेवता हा तो महाविदेह केन से जाकर जीसीमन्धर स्वामी से पूछ आओ कि मेरी बह बिदयी रोग है ?

बैठा फिर जाकर आ गया। वसंते कहा—महाशय जीमन्धर स्वामी ने कहा—है कि आपकी बह समस्त रोगे बाधी है। उसकी महत्ता यह है कि अब आप जेठे का पारखा करे और मुरंत समय हो जाय तो समस्त लीजिएगा कि बह समस्त हो गई है।

दूसरे दिन पारखा करने पर वही हाथ हुआ। मुनिराज ने आपसी भावु का अन्त-सन्निधत्त समझ कर विरोध आराधना कर ली।

ऐस महाभाषों को जीने की सुखी और मरने का शोक नहीं होता। ब रोग में रहते हुए भी रोग से असीत होते हैं। और जब और मरण में समभाव पारख करते हुए बिचरते हैं।

बड़ी इरिक्त जैन कछीरी,

क्यों बिदा ही पर आचना ॥ छेर ॥

जब से वेष मुनि का धर गये,
 उनसे जग, जग से वो मर गये ।
 सब से पंथ निरात्मा कर गये,
 क्या गरज रही संसार से ।
 जब लिया फकीरी बाना ॥ १ ॥

साधु-महात्मा सदैव कफल बगल में दबाये घूमते हैं ।
 उन्हें मौत का डर नहीं लगता । मौत से डरते हैं चोर, व्यभिचारी,
 हिंसक, पापी । जिन्होंने अपना जीवन धर्म की साधना में ही
 लगा दिया है, वे मृत्यु से क्यों डरेंगे ?

मृत्यु क्या है, इस संबंध में विस्तार पूर्वक चर्चा फिर कभी
 की जायगी । यहाँ केवल इतना ही कहना है कि जिन्होंने अपनी
 जिंदगी में धर्म की आराधना नहीं की, जो धर्म के प्रति उपेक्षा या
 घृणा का भाव रखे रहे हैं, जो निरन्तर पापों में फँसे रहे हैं,
 उन्हें मृत्यु बड़ी विकराल दिखाई देती है । वे परलोक की यातनाओं
 का स्मरण कर-करके दुखी होते हैं । उनमें एक प्रकार की कातरता
 आ जाती है । वे हाय-हाय करते हुए मरते हैं । मरते समय वे
 कहते हैं—

कुछ नहीं किया मनुष्य भव-पाकर, आता है अंदेशा बड़ा-बड़ा ।
 अब उपाय क्या करें कि, सर के ऊपर आकर काल खड़ा ॥

ऐसा आदमी पहले, मोचता है—खाओ, पीओ और मौज
 करो । खूब कमाना, खाना और मर जाना ही तो जीवन का चह-

रह है । पर जब मृत्यु अपना मयानरु सुँह फाड़े सायन आती है तो उनका रोम-रोम काँपने लगता है ।

मुनिराज ने दिन निकलत ही बिहार कर दिया । एक गोंद में पहुँच कर उन्होंने आहार किया । जब बस्ती हो गई तो वे कहने लगे—ह काया ! तुम्हें मैं दो रोज खाने को नहीं देता हूँ । आज दिया तो उस भी तून निकाल दिया । अच्छा, आज से मैं तुम्हें खाना पीना देना सब बंद किया । अब इस जीवन में तुम्हें मैं आहार दिया जायगा, मैं पानी दिया जायगा ।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके आप वहाँ से चल दिंये । चलते चलते जंगल में पहुँच । वहाँ मौला से पूछा—इस करी शेर की गुफा है ? हो तो बतला दो ।

मौला ने कहा—महाराज ! शर की गुफा में क्यों जाना चाहते हो ?

हमरा मील बाबा—भाई हमकी बतियों में लड़ाई हो गई होगी । इसीलिए ये मरने के लिए जाना चाहते हैं !

आगिर मुनिराज स्वयं गुफा आगत—स्वयं गुफा के पास आ पहुँच । वह गुफा के द्वार पर बैठ गये । उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली—आज रात आप वहाँ में नहीं चढ़ेंगे । शर आपा मगर हमने मुनिराज को बुद्ध भी बंद नहीं पहुँचाया ।

दिन निकला । मुनिराज आने लगे । कम मीमांसा के समय वह एक बृक्ष के नीचे रुकें । वहाँ वह के नीचे से बैल गाड़ी का रास्ता पा । मुनिराज ने प्रतिज्ञा की—यहाँ रा रात भर मैं नहीं रुकूँगा एसी प्रतिज्ञा करके वह रास्ते में सेट रह । रात की जब

रास्ते से सांठे की गाड़ियाँ निकलीं और गाड़ी के पहिये इनसे अडे तो गाड़ीवान की नाँद खुली। वह नीचे उतर कर देखता है कि रास्ते में कोई सोया पड़ा है। गाड़ीवान ने समझा—कोई भूत है। फिर साहस करके पूछा—अरे तू कौन है ? मुनिराज ने कहा—मैं भूत नहीं हूँ। मेरे कुछ नहीं अटकता। आखिर गाड़ीवान ने उन्हें एक किनारे पटक दिया। मगर उन्होंने अथ प्रतिज्ञा करली कि उस जगह को छोड़ दूसरी जगह पैर नहीं रखूँगा।

इस घटना का समाचार रतलाम के एक श्रावक को मिला। उसने श्रोसघ को इकट्ठा किया। श्रीसघ ने कुछ सिपाहियों को मुनिराज की रक्षा के लिए आगे भेजा और पीछे पीछे श्रावक खाना हुए। सिपाही वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि एक शेर मुनिराज के पैरों की ओर और दूसरा उनके सिर की ओर बैठा है। सिपाही भयभीत और चकित होकर एक पेड़ पर चढ़ गये और तमाशा देखने लगे। उन्होंने देखा कि जब कोई दूसरा जानवर मुनि के शरीर के पास आने को होता है तो शेर गुराँ गुराँ कर उसे भगा देते हैं। घाट में श्रावक लोग पहुँचे तो उन्हें सारा हाल मालूम हुआ। सिपाहियों ने कहा—महात्माजी की रक्षा तो देवता करते हैं। हमारी क्या ताकत है कि इनकी रक्षा करें। जो स्वयं जगत् के रक्षक हैं, उनकी कोई क्या रक्षा करे ?

अठारह दिनों तक यही स्थिति रही। उनके संधारा का संघत् और मिति आदि मेरे पास लिखी हुई है। उनके संधारे के समय रतनचंदजी महाराज के पिता भी मौजूद थे और वे उनकी अन्त्येष्टि में सम्मिलित हुए थे। मुनिराज के संधारे के समय हजारों श्रावधियों ने त्याग-प्रत्याख्यान किये। बहुतों ने

मग मांम के सेवन का और हिंसा करने का त्याग किया ।

जिस महुआ के नीचे मुनिराज नेतसिंहजी का संभारा पूरा हुआ था वह आज भी नेतसिंहजी का महुआ करता है । और

रतनचन्द्र महाराज पधारे, शहर जाकर मांय ।

ममज हा सुर मंगलिक सुनता, रात समय में आय । ११

एक महापुरुष रतनचन्द्रजी महाराज भी हो गये हैं । वे हमारे गुरु हीरानाथजी महाराज के गुरु थे । वे भी बड़े भाग्यशाली मुनिराज थे । एक बार वे जाकर पधारे । जिस मकान में वे ठहरे थे वहाँ इसकी का देह था । इसी के पेड़ में एक बेवठा का निवास था । वह उबना रात्रि के समय मुनिराज के पास आया करता था और मांगलिक सुनकर बजा जाता था । जिसने दिन रतनचन्द्रजी महाराज जाकर में ठहर वह बराबर जाता रहा और मांगलिक सुनता रहा ।

‘दवा वि सं नमसति अस्तु धम्मं सया म्पो ।

जिसका मर निरन्तर धर्म में रत रहता है, बेवठा भी इस नमस्कार करत है । और भी मुनिये —

मम्यज में बैरु पूसवाया, मचाड़ी तुनि मान ।

उनके पुत्रांगि दम्पो भाज तक, जैन धर्म रहे मान गथा

मचाड़ में एक मानजी महाराज हुए हैं । वे भी बड़े जब दम्प महात्मा थे । दिन भर में एक बार योजन करते, एक बार बानी पीन एक ही बार पेशाब करत और एक ही बार जोग

जाते थे । एक बार वे नाथद्वारे के पीछे, खामणोट नामक गाँव के निकटवर्ती एक छोटे से गाँव में पधारे, उस समय जोरों की वर्षा होने लगी । वहीं पास में भैरोंजी का एक स्थान था । मान मुनि वहीं ठहर गये । थोड़ी देर बाद वहाँ का पुजारी आया । उसने मुनि को देख कर कहा—तुम्हारे कपड़े भेले हैं । फिर तुमसे हमें क्या मतलब है ? तुम यहाँ आये ही क्यों ? खैर, आये सो आये, अब यहाँ से इसी वक्त चले जाओ ।

मुनिजी ने शान्तचित्त से कहा—भाई, वर्षा आ गई, हम कारण हम यहाँ ठहर गये हैं । हम सचित्त जल का स्पर्श नहीं करते हैं ।

मगर पुजारी अकड़ कर बोला—कुछ भी हो, हम तुम्हें यहाँ नहीं ठहरने देंगे । अभी, इसी वक्त बाहर निकल जाओ ।

तब मुनिराज बोले—तुमने कभी भैरोंजी को भी देखा है ?

पुजारी—देखा क्यों नहीं ? रोज देखता हूँ । अब भी देख रहा हूँ । यह बैठे तो हैं मामने ही ।

मुनिराज—यह नहीं, असली भैरोंजी को देखा है क्या ? देखा हो तो मुझे दिखाओ । नहीं तो मैं तुम्हें दिखाता हूँ ।

पुजारी—अच्छा, आप ही बुलाइए । मगर मुझे डर लग गया तो ?

मुनिराज ने चदर बाँध दी । फिर भैरों को बुलाया । पुजारी ने देखा—चादर के अंदर एक बच्चा पर्दे में आकर खड़ा हो गया है ।

थोड़ी देर रह कर भैरोंजी अन्तर्धान हो गये ॥ मुनिराज

भी रवाना हो गये । पुजारी पर पंता प्रमाण पड़ा कि यही मूर्ख
जसका सारा खानदान पकड़ा बैन बन गया । आज भी वह धर्म-
ध्यान करता था रहा है ।

एक सबी घटना और सुनो—

स्वामी रोड़बी ने तपस्या में, ली प्रतिष्ठा पार ।

मंत्र रूपम में आहार बढ़ाया उदयपुर मेंभार ।

यह मुनि-महात्माओं की महिमा का पोंचनों बढ़ाकर है ।
एक रोड़बी स्वामी नामक प्रमाणक संत हो चुके हैं । उनके संन्यास
की यह घटना उदयपुर की है । रोड़बी स्वामी ने तपस्या की और
उसमें अभिप्राय किया—हाथी अपनी संत से आहार लेना तो
होगा नहीं तो बाबजीब भक्त-यानी का स्वागत है । स्वामीजी ने
अपना अभिप्राय एक कागज के पर्चे पर लिख कर रख दिया ।
लोगों ने अभिप्राय को जानने की बहुत चेष्टा की मगर स्वामीजी
ने कह दिया—जब अभिप्राय पड़ेगा तो बतला दूंगा । पहले बतला
देन से अभिप्राय नारथ करने का कार्य प्रयोजन ही नहीं रहता ।

एक दिन मयारणा साहब का हाथी पागल हो गया ।
यह शहर में इतनाइयों की दुकान की तरफ आया । लोग मकानों
से दूर कर तमारा देखने लगे । शहर स्वामीजी को पता चला
तो वे पाठरा लेकर दूर ही चल पड़े । दोनों का समागम हुआ ।
हाथी ने इतनाई की दुकान से कुछ द्वारा मिठाई छठाई और
स्वामीजी ने पात्र सामने कर दिया । शहर कोसे इतनाई ने
बिनाकर कहा—महाराज, से बीजिय, से बीजिय ।

स्वामीजी मिठाई लेकर अपने स्थान पर आ गये और हाथी अपने स्थान पर चला गया ।

इस घटना की सत्यता उदयपुर जाकर कभी भी मालूम की जा सकती है । यह बात बहुत पुरानी नहीं है ।

इन्हीं स्वामीजी ने कुछ दिनों बाद फिर अभिग्रह लिया साड आहार देगा तो लूँगा, अन्यथा नहीं । मुनिराज की तपस्या के प्रताप से वह अभिग्रह भी फलित हुआ । एक सांड मदोन्मत्त हो गया । मुनिराज उसके पास गये तो सांड ने गुड़ की दुकान पर रक्खी हुई गुड़ की भेली में सोंग मारा । सोंग में गुड़ लग गया । मुनिराज ने अपना पात्र आगे बढ़ा दिया और वह गुड़ सांड ने उनके पात्र में ढाल दिया ।

जोधपुर आसोप हवेली, पूज्य अमरसिंहजी आय ।

शारुश्रवण कर असुर वहाँ का सरल बना हर्षाय ॥ ६ ॥

भाइयो ! पहले पहल अमरसिंहजी महाराज जब जोधपुर पधारे तो वहाँ उन्हें ठहरने के लिए मकान नहीं मिला । तब वे आसोप के ठाकुर सा. की हवेली में ठहरे । उस हवेली में एक देवता रहता था । जो मनुष्य उस हवेली में रहता था, वह मर जाता था । मगर अमरसिंहजी महाराज को मरने का कोई भय नहीं था । वे उस हवेली में ठहर गये । रात्रि के समय वह देवता महाराज के पास आया । महाराज ने उसे सज्जाय श्रवण कराया । देवता प्रसन्न हो गया । उसने कहा—महात्मन् ! आप प्रसन्नता पूर्वक इस हवेली में ठहरिये, सिर्फ इसका अमुक भाग छोड़े रहिये ।

हमने तो वहाँ तक सुना है कि वे एक तपस्व साधु । तपस्व
 रक्खा था कि अचानक उसका एक पाया दूढ़ गया । रात्रि में
 महाराज ऊपर गये तो क्या देखते हैं कि वृद्धता लोग बैठे हैं ।
 महाराज ने उनसे कहा—हम साधु हैं । आपसे अधिक क्या करें ?
 हम जो तपस्व साधु थे, उसका पाया तोड़ दिया गया है । यह
 कबल सुनकर देवताओं के मुनिया ने कहा—किस्ने यहस्मा का
 तपस्व तोड़ा है ? जाकर जोड़ आओ । मुनिराज नीचे आये तो
 क्या देखते हैं कि पाया जुड़ा हुआ है ।

भाइयो ! तपस्वा की महिमा अचर्यनीय है । आप हम
 शीतल के स्वामी हैं और उसका अभिमान करते हैं । मगर संतों
 के पास जो शीतल है, उसके आगे देवगण भी नतमस्तक होते
 हैं । यह शीतल क्यों-सी है ?

राम दयेया एक है सरथे खूटे माय ।
 सायब सरिखा सेठिया बसै नगर के मांय ॥
 बसै नगर के मांय हुंछिया फिरे न पाणी ।
 क्या पैसे से मीति मीति भिरिपर (भिनबर) से हांभी
 का गिरपर कबिराज जपो बेराग तयेया ।
 सरथे खूटे पाय एक है राम दयेया ॥

इस प्रकार संतों के राम जो सम्पत्ति है, उसके सामने
 संसार के बड़े से बड़े पनबाल की सम्पत्ति भी तुच्छ है । संतों
 की सम्पत्ति की एक बड़ी विशेषता तो यह है कि इसे 'नितना ही
 बढ़े-बढ़े-बढ़े' कमी कम नहीं होती । आधुनिक में भी ऐसी

सम्पत्ति के स्वामी सत हुए हैं और आज भी मिल सकते हैं ।
देसो —

अहमदाबाद में धर्मसिंह मुनि, रहे दरगा में जाय ।
जिन्द प्रसन्न हो मिला आपसे, रजनी के बीच आय ॥

अहमदाबाद में धर्मसिंहजी महाराज गये । उनका संप्रदाय दरियापुरी कहलाता है । उनके हाथ से लिखे शास्त्रों के टुकड़े आजकल भी मिलते हैं । अहमदाबाद में उन्होंने अपने गुरु से कहा—मैं उच्च श्रेणी का सयम पालना चाहता हूँ । गुरु ने समझाया तुम्हारी भावना प्रशस्त है, किन्तु इस समय यतियों का जोर है, अतः तुम्हारी चलना मुश्किल है । किन्तु जब धर्मसिंहजी ने बहुत आग्रह किया तो गुरु बोले—अच्छा, यहाँ की दरगाह में आज रात को रह जा, उसके बाद मैं तुम्हें आज़ा दूँगा ।

धर्मसिंहजी दरगाह में गये । फकीरों से कहा—आज मैं रात को यहाँ रहना चाहता हूँ । फकीरों ने कहा—रह तो सकते हो मगर सुबह तक ज़िंदा रहना कठिन है । इसलिए भला चाहते हो तो कहीं और जगह खोज लो । पर धर्मसिंहजी जब नहीं माने तो फकीरों ने चिढ़कर कहा—नहीं मानता तो रहने दो ! जान से हाथ धोएगा ।

उस दरगाह में एक बड़ा ज़िंदा रहता था । धर्मसिंहजी रात्रि में वहाँ ठहर गये । उन्होंने ज्ञान-ध्यान करना शुरू किया । जैन-शास्त्रों में भवनपतियों का जो जिक्र आता है और मुसलमानों के यहाँ वहिश्त का जो जिक्र आता है, वही धर्मसिंहजी पढ़-पढ़ कर

सुनाने लगे । पाठ सुनकर वह बिंद सुरा हो गया । उसने पूछा—
आपको हमारी बातें कैसे मासूम हैं ? अच्छा जाओ मैं तुम्हारा
दुःख भी नहीं बिगाड़ूँगा । सुनकर फकीरों ने उन्हें जीवित रखकर
आश्चर्य किया और कहा—यह तो कोई आशिया है ।

धर्मसिंहजी लौटकर गुह के पास गये । गुह ने कहा—
तुम जहाँ चली जाओगे आराम पाओगे । आज भी वनकी
सम्प्रदाय मौजूद है ।

अबामे में मुनि साल का, हुआ अपि सस्वर ।
बालपक्षा खर बली नहीं मौजूदा इस बार ॥

पंजाब में अम्बाका की दास है । एक महापुरुषवान् साधु
व्याख्यान सुना रहे थे । एक बमार भी वनका व्याख्यान सुनता
था । व्याख्यान सुनत-सुनत उसे वैराग्य हो गया और वह साधु
बन गया । उसका नाम सालबन्धू था । मुनि सालबन्धूजी उसे
ब्रह्म की तपस्या करने लगे । वे बड़े तपस्वी हुए हैं । वे अकेले ही
रहते थे । एक बार वे किसी गाँव में पहुँचे । वहाँ के लोगों ने
शिकायत की कि यह जाति के बमार है और साधु बन फिरते
हैं । राजा ने उन्हें गाँव से बाहर निकलवा दिया । लोगों ने कहा—
महाराज ! अब कमी मत आना । मुनि महाराज बोले—अब
तक इस राजा का राज्य रहगा तब तक मर जाऊँगा ।

मगर हुआ क्या कि दूधरे दिन ही राज्य पकट गया !
आपन अकाल में शरीर झोका । अप्रसन्नता बिजु गया । बस
अग्नि में आपका शरीर ता मस्य हो गया नि । और

चादर ज्यों के त्यों रह गये—जले नहीं । अभी तक दोनों चीजें वहाँ मौजूद हैं । शास्त्र में कहा है —

सकृदं खु दीसइ तवो विसेसो,
न दीसइ जाइविसेस कोई ॥

उत्तराध्ययन, अ० १२

अर्थात्—तपस्या की महिमा तो प्रत्यक्ष देखी जाती है, मगर जाति की कोई भी विशेषता दिखलाई नहीं देती । वास्तव में धर्म का स्वन्ध आचरण से है—तपस्या से है । जाति के साथ धर्म का कोई ताल्लुक नहीं है । ऊँची कही जाने वाली जाति में उत्पन्न होकर के भी जो नीच आचरण करता है वह नीच है । और जो नीच समझी जाने वाली जाति में जन्म लेकर भी उच्च आचरण करता है, वह ऊँचा है । जाति पूजनीय नहीं, आचरण ही पूजनीय होता है । जो धर्म का आचरण करता है, उसकी आत्मा का कल्याण अवश्य होता है । हे भव्य जीवो !

जैनधर्म जो करे उसी का, श्रीमहावीर का फरमान ।
तप संयम की महिमा जैन में, नहीं जाति का कोई अरमान ॥

जैनधर्म किसी जाति की सम्पत्ति नहीं है । वह किसी भी जाति के दायरे में सीमित नहीं है । भगवान महावीर प्रभु का आदेश है कि, जो जैनधर्म का पालन करे उसी का वह धर्म है । किसी भी जाति में, जन्म लेने वाला, किसी भी देश में उत्पन्न होने वाला किसी भी वर्ण का, कोई भी पुरुष धर्म को धारण करके अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है । इसी प्रकार धर्म में लिंग

सर्वची कोई भेद नहीं है। गर हो या मारी हो, सब को धर्म-याजन करने का समान अधिकार है।

गुरु प्रसादे चौपमक को सुनबो भाया बाया।
कई पूज्य मुनि दुप धेन में गुह जाये नहीं गाया ॥

माइयो ! जैनधर्म के प्रताप से कई मुनि ऐसे दुप हैं, जो पूजनीय थे और जिनके गुणों का वक्षस करता मी शक्य नहीं है। पूज्य अथमकजी महाराज पूज्य रघुनाथजी महाराज आदि आदि अनेक महाभाम्भवान् संत हो चुके हैं। बीतराग एवं का मार्ग सबा इतिन्तु इस मार्ग पर चलने वाला सबा होना चाहिए। उसका दृष्टाण्य अपरम होता है। भगवान् जिसको देखता है ? वह मुन्दागी पीली पगड़ी को देखता है अथवा कठरिबावार साफे को निहारता है ? नहीं प्रमु बमाच सिंगार से नहीं रोमता। गच्छों से प्रसन्न नहीं होता। ईश्वर मन्त्र के श्रवण को देखता है। प्रमु कहता है—ये बड़े ! तु मुझे क्यों खोजता फिरता है ?

तू क्या हूँ ते बन-बन में
तरा प्रभु बस तेरे तन में ॥

भगवान् तेरी आत्मा में है बसिऊ तेरी निर्बिकार और निर्विकल्प आत्मा ही भगवान् है। हृदय में भक्ति हो तो परमात्मा दूर नहीं है। बहुत-से लोगों का गवाह है कि मात्ता फिरा केने न तिकक लगग सेने से या अमृक प्रकार न। मय परम सेने से मन्त्र की पदवी मिल जाती है। ऐसा करने वाला मन्त्र ही लोगों में मन्त्र कहता है और आदर-सम्मान भी प्राप्त करता मगर यदि

उसका हृदय भक्ति के रंग में नहीं रँगा है, तो वह सबे कल्याण का भागी नहीं बन सकता । कहा भी है—

माला बड़ी न तिलक बड़ो, न कोई बड़ो शरीर ।

सब ही में भक्ति बड़ी, कह गये दास कवीर ॥

परमात्मा के प्रति शुद्ध-निष्काम प्रेम जब रंग-रंग में व्याप्त हो जाता है तभी ईश्वरीय शक्ति आत्मा में प्रकट होती है । भगवान् रूप को नहीं देखता, धनमम्पदा को नहीं देखता और जातपाँत को भी नहीं पूछता । रामचन्द्र ने शवरी की भक्ति से प्रेरित होकर ही उसके जूठे वेर खाये थे । दूसरे ऋषि शवरी के प्रति घृणा की भावना रखते थे, मगर मर्यादा पुरुषोत्तम राम किसी भी दूसरी बात का विचार करने वाले नहीं थे । वे सिर्फ अन्तरंग की पवित्रता को देखते थे । शवरी का हृदय निर्मल था । उसमें निःस्वार्थ भक्ति भरी हुई थी । रामचन्द्र ने उसी भक्ति का मूल्य समझा । प्रभु के प्रति सच्चा प्रेम होने के कारण उसकी जगत में महिमा हुई और आज भी लोग उसे याद करते हैं । शवरी से घृणा करने वाले और अपनी जाति का अहंकार रखने वाले उन दूसरे ऋषियों का आज नाम भी कोई नहीं जानता । शवरी के विषय में आज भी कहा जाता है—

भीलनी तू सच्ची प्रेमिन है, प्रेमी को स्तब्ध आला है ।

मैं सॉच-सॉच यह कहता हूँ, एक प्रेम का पथ निराला है ॥

मतलब यह है कि किसी भी जाति का और किसी भी वर्ण का कोई व्यक्ति क्यों न हो, अगर उसने परमात्मा के प्रति

सभी निष्ठा धारण कर ली है, परमात्मा के आदेश को शिरोधार्य करके, प्रगाढ़ भ्रष्टा के साथ परमात्मा के मार्ग पर ही बढ़ने का निश्चय कर लिया है और उसी पर बलता जा रहा है तो वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। उसी को लोकोत्तर विजय की प्राप्ति होती है। लोकोत्तर विजय अर्द्ध पर चेतन की विजय है, प्रकृति पर पुरुष की विजय है माया पर ब्रह्म की विजय है कर्म पर आत्मा की विजय है। यही विजय मुख्यबान् और ब्रह्मात्मकारी विजय है। इस विजय को प्राप्त करने वाला वीरशिरोमणि पुरुष ही विजयवर्धन जाता है और सदा के लिए विजयी हो जाता है। अतः माइयो ! लौकिक विजय की कामना मत करो। इस विजय से तुम्हारा स्थायी काम नहीं होगा। लौकिक विजय आज्ञा प्राप्त कर लोगो से बल फिर वह पराजय के रूप में परिकृत हो जायगी। ऐसी विजय यह जीव अनादि काल से प्राप्त करता आ रहा है। वसंत आत्मा का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। अब भी सिद्ध होने वाला नहीं है। अगर तुम्हें कृतार्थ होना है, सदा के लिए सर्वोत्तम विजय प्राप्त करना है तो उसका एक ही मार्ग है। तुम भगवान् श्रुपमन्वन्त्री की शरण रहो। उनके चरणों में अपनी समस्त विजय समर्पित कर दो। निवृत्त बन जाओ। चन्दी पर निमग्न हो रहो। वस तुम्हें लोकोत्तर विजय की प्राप्ति हो जायगी।

जम्बू कुमार की कथा

श्री सुधर्मा स्वामी का लोकोत्तर आदेश सुनकर जम्बू कुमार आज लोकोत्तर विजय प्राप्त करने के लिए कृतार्थरूप हुए हैं। उन्होंने लोकोत्तर विजय की महिमा समझ ली है। यही कारण

है कि ससार के बड़े से बड़े प्रलोभन भी उन्हें पथ से च्युत नहीं कर सकते । धन-सम्पत्ति का प्रलोभन, सुन्दरी स्त्रियों का प्रलोभन और नवयौवन का प्रलोभन उनके सामने तुच्छ है । उनके हृदय पर वैराग्य का पक्का रंग चढ़ गया है । उस रंग ने प्रभव जैसे क्रूरकर्मा व्यक्ति को भी रंग दिया है । प्रभव स्वयं सयस स्वीकार करने के लिए सन्नद्ध हो गया है ।

प्रभव ससार का खूब अनुभव प्राप्त कर चुका है । वह जिंदगी के सभी खेले खेल चुका है । अतएव उसे अपने विषय में कुछ सोचना-विचारना नहीं था । मगर जम्बू कुमार अभी नौजवान थे । दुनियादारी से परिचित नहीं हुए थे । प्रभव को उनके विषय में फिर एक नवीन विचार उत्पन्न हुआ । वह थोड़ी देर तक सोच-विचार में पड़ा रहा । तत्पश्चात् वह अनुनय के स्वर में कहने लगा—कुमार ! मेरे हृदय में एक बात आई है । आपकी उम्र अभी छोटी है । आपको अभी ससार का अनुभव नहीं हो पाया है । इस उम्र में पत्नियाँ का परित्याग करके मुनि-वृत्ति धारण करना खतरनाक है । आप मेरी बात पर जरूर गौर कीजिए ।

जम्बू कुमार बोले—भाई प्रभव ! आत्मा अनादिकाल से है । इसकी उम्र का हिसाब ही क्या है ? फिर मैं अवोध बालक नहीं हूँ । किसी के फुसलाने से साधु नहीं बच रहा हूँ । वासनाएँ बढ़ाने से बढ़ती और घटाने से घटती हैं । भोग भोगने से तृप्ति हो जायगी, यह कल्पना विपरीत है । भोग भोगने से अतृप्ति ही बढ़ती है—कभी तृप्ति नहीं होती । तृप्ति होती तो कभी की हो गई होती । अनन्त जन्मों में जो तृप्ति नहीं हुई, वह अब कुछ वर्षों में

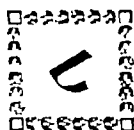
कैस हो जायगी ? अतएव मुझे अपने संकल्प को पूरा करने से ।
 मैं आगे-पीछे का सब विचार कर चुका हूँ । इससे अधिक
 विचार करने की अब गुआइरा नहीं रही है ।

प्रमद ने कहा—तो फिर ठीक है । मैं आपक साथ हूँ ।

प्रमद नीचे उतरा । ४४५ साथी जोरों से उसने अपना
 विचार कहा । वे सब क सब साधु बनने के लिए तैयार हो गए ।

आश्चर्य की बात है कि ज्यों ही उन्होंने संकल्प धारण करने
 का विचार किया कि उसी समय उनके समस्त बंधन टूट गए ।
 सब जोर बंधन मुक्त हो गए उन्होंने कहा ही जोकोतर विद्वत्
 प्राप्त करने का संकल्प किया कि उसी समय शौकिव—शौठिक—
 विद्वत् उन्हें प्राप्त हो गए । यह चमत्कार देख सभी बार चकित
 रह गये । जिस संकल्प का पातन करने के संकल्प में इतना मयान
 चमत्कार है उसे स्वीकार करने में कितना चमत्कार न होगा ?

स्थान—श्रीधरपुर }
 ता २१-५-४८ }



निष्काम भक्ति



स्तुतिः—

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र—

पाठीनपीठभयदोन्वणवाडवाग्रौ ।

रंगत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा—

स्त्रास विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

मान लीजिए, कोई पुरुष समुद्र की यात्रा पर खाना हुआ है । विलायत जा रहा है या आ रहा है । ज्वार-भाटे के कारण

समुद्र बहुत चम्प हो रहा है। जसमें पहाड़ सरीली तरंगें छू रही हैं। उनके कारण समुद्र अत्यन्त मीपण प्रतीत होता है। समुद्र में बड़े-बड़े बिरासकाब मगर-मच्छ वीह रहे हैं। व बड़े जबरदस्त हैं। इतने जबरदस्त की अपनी पछ की फटकार मार कर बहते हुए स्टीमर को उकट सकते हैं। इन सब उपद्रवों के अतिरिक्त समुद्र में भवानक पड़वान्त भी प्रचलित हो रहा है।

कमी-कमी समुद्र में बड़ी ऊँची तरंगें छूटी हैं—एक मीठ छँचा पानी चढ़ जाता है। एक बार हमने बम्बई में बीमासा किया था। हम समुद्र के किनारे-किनारे जा रहे थे। समुद्र के चारों ओर छँची बीबार थी। किन्तु पानी ने इतना जोर मारा कि वह बीबार को लॉप कर बाहर चढ़ता और हमें उसकी चौकार रागी।

पैदल-पैदल भ्रमण करने वाले हम साधु पर-पर का पूजा सकते हैं। आप बंबई आते हैं और चौपाटी की ओर करके ही चल आते हैं। रेकगाड़ी आपको कैद करके बंबई में ल जाकर पटक देती है और वहाँ से पकड़ कर आपके गाँव के स्टेशन पर छोड़ देती है। हम लोग जग-जग और पग-पग नाप कर चलते हैं। स्वाधीन होकर चलते हैं। रास्त के नैसर्गिक दृश्यों का अवलोकन करते हुए और तनसे अनेक प्रकार के अनुभवों का सत्त्व निबोधित हुए चलते हैं।

राजा मानसिंहजी ने जैन साधु को देख कर कहा है—
‘पहरम को नदी ओढ़ियो लाने को नदी पुँहियो, लरबने को नदी ओढ़ियो और पढ़न को नदी पाहिया फिर भी मीज करे बजाया माया का मोहियो’। वास्तव में जैन साधु का जीवन संतोष के मूल से परिपूर्ण होता है। वह अमावों में भी रस का आस्वादन

करता है। उसके अन्तःकरण से रस का एक झरना बहता रहता है। उस रस का आस्वादन करके वह मस्त रहता है।

हाँ, तो वह समुद्रयात्री समुद्र के बीच पहुँचता है। उसी समय भयानक तूफान आ जाता है। पानी कभी ऊँचा चढ़ता है, कभी नीचा उतरता है। पानी के साथ-साथ जहाज भी ऊँचा नीचा हो रहा है। जहाज बड़े खतरे में पड़ गया है। सही-सलामत बचने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। ऐसे समय में यात्री, हे प्रभो ! आपका स्मरण करता है। आपका स्मरण करते ही उसके मार्ग के सब विघ्न दूर हो जाते हैं। वह सकुशल और सानन्द सागर के तट पर पहुँच जाता है। भगवान् के स्मरण का ऐसा प्रभाव है। ऐसे भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! यह ससार भी समुद्र के समान है। जैसे समुद्र में ख़ुबवार और ज्वरदस्त मगर-मच्छ, घड़ियाल आदि प्राणी होते हैं और उनसे बचना बहुत कठिन होता है, इसी प्रकार ससार में नाना प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख हैं। इन दुःखों से छुटकारा पाना अत्यन्त ही कठिन है। जैसे समुद्र में बड़बानल भड़कता रहता है उसी प्रकार ससार में इष्टवियोग और अनिष्टसयोग आदि के कारण सताप और परिताप होता रहता है। जैसे समुद्र में ज्वार और भाटा आता रहता है, उसी प्रकार ससार में हर्ष और विषाद की उताहल तरंगें उठती रहती हैं। जैसे समुद्र का पार पाना कठिन है, उसी प्रकार ससार का अन्त करना भी कठिन है। जैसे समुद्र जहाज से पार किया जाता है, उसी तरह ससार धर्म-जहाज से पार किया जाता है। जहाज को चलाने के लिए

कुराल नाविक की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार धर्म जहाज को बचाने के लिए भी सद्गुरु संपी कुराल नाविक की आवश्यकता होती है। जहाज यदि ठीक न हो अथवा नाविक यदि कुराल न हो तो यात्री समुद्र में ही डूब मरता है, इसी प्रकार मिथ्या धर्म और अज्ञानी गुरु का संयोग होने पर भी प्राणी को भव-सागर में डूबना पड़ता है।

इतना होने पर भी समुद्र में नाना प्रकार के रत्न पाये जाते हैं। इसी कारण उसे रत्नाकर कहते हैं। समुद्र रत्नों का आधार अघात ज्ञान है। इसी तरह इस संसार में भी अनेक रत्न हैं। यहाँ साधु रत्न हैं, साध्वियों रत्न हैं, साधक रत्न हैं और आधिकाएँ भी रत्न हैं। सम्पददर्शन, ज्ञान और चारित्र्य भी रत्नरत्न कहलाते हैं। ओ भी-वर ! (बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष) प्रयत्न करके इन रत्नों को प्राप्त करने हैं, ये निश्चाय हो जाते हैं। इसी अघात अ संसार को संसार कहते हैं। 'संसार शब्द का अर्थ है—सम्पद-मार बाला अर्थात् विमर्श अघात सार हो वह संसार है। निस्तार ज्ञान पर भी मोक्षप्राप्ति के कारण कहीं उपलब्ध हो जाते हैं। इसीलिए संसार सं-मार' है।

माइया ! समुद्र या नदी का पार कर जना कठिन नहीं है, सागर भव-सागर को पार कर जना बड़ा कठिन है। ऐसे पार करने के लिए सद्गुरु की कृपा हाथी चाहिए। सद्गुरु नहीं हैं तो माइ माया सब संसार आदि को मार चुके हैं, आ कंठन और काँचिली का परिष्कार करके अविष्यन्त बन गये हैं। जहाज बाधे का बन्दार सग है सागर सद्गुरु बलदार नहीं पाएँ और फिर भी

ससारसागर से पार उतार देते हैं। थरे भाई, तुझे मुफ्त में पार उतारते हैं फिर क्यों मिजाज करता है ?

राम, लक्ष्मण और सीता माता को ताप्ती नदी पार करना था। उन्होंने नाविक से कहा—हमें परले पार जाना है, 'जहाँ उत्तरायण गाँव है वहाँ पहुँचना है। उस नाविक ने तीनों को बड़े प्रेम से नाव में बिठलाया और परले पार पहुँचा दिया।

उदाराशय महापुरुष न तो रुपया-पैसा ठहराते हैं और न पूछते ही हैं कि क्या लोंगे ? रामचन्द्र ऐसे ही परम उदार महा-पुरुष थे। नाव में चढ़ते समय उन्होंने नाविक से उतराई के लिए कोई मोल-तोल नहीं किया था। आज वनवासी बन गये थे तो क्या हुआ, थे तो अवध के राजकुमार। कहाँ तक उदार न होते ? परले पार पहुँच कर उतराई देने के लिए उन्होंने सीता की ओर अर्थमरी नजरों से देखा। सीता भी निदेहराज की राजकुमारी और रघुकुल की बधू थी। उदारता उनके रोम रोम में बसी हुई थी। सीताजी रामचन्द्रजी की नजरों का अर्थ समझ गईं। उन्होंने तत्काल अपने शरीर का आभूषण उतारा और नाविका को देने लगीं।

ऐसे अवसर पर और कोई बी होती तो वह अपने पति के कहने पर भी शायद ही अपना गहना उतार कर देती। वह कहती—मैं राजा की लाडली बेटी हूँ, तुम्हारी बदौलत आज जगल में भटक रही हूँ। अपनी इच्छा से तुमने राज्य छोड़ दिया, नहीं तो किसकी हिम्मत थी जो राज्य छीन लेता ? मेरा सव

कुछ कहा गया है। एक ही गहना मेरे पास बना है। इसे भी इधिया देना चाहते हो ? मैं इर्गिज यह नहीं दूंगी।

मगर सीता माता ऐसी सामारण थी नहीं थी। हममें अद्वैतिक गुण थे। प्रत्येक परिस्थिति में वे पतिव्रता और पति-परायणा ही बनी रहीं। राम ने निरपराध समझ कर मौ अब उन्हें बलवास दे दिया, तब भी उन्होंने राम का अमंगल नहीं चाहा। उनके लिए आभूषण, आभूषण नहीं था पति ही आभूषण था, पति ही उनके सुख था पति ही उनके सर्वस्व था ! पति की इच्छा के विरुद्ध कोई विचार भी उन्होंने कभी नहीं आने दिया। ऐसी सती नारियों ही अगत् में पूजनीय और प्राण स्मरणीय होती हैं। अपने इन गुणों के कारण कितना ही बन्ना काह बीत जान पर भी सीताजी आज बंदनीय मानी जाती हैं।

सीताजी आगा-पीछा विचारे बिना ही अपना गहना नाविक को देने लगीं। नाविक कबिठ-सा होकर बाबा—महाराज ! मैं इतने सस्त में आपको नहीं जोड़ सकता। मैं ने आप तीन को बरी के बस पार से इस पार बतारा है। मेरी मिश्रत इस आभूषण से नहीं जुड़ सकती। मामूली आदमी होता तो बससे मैं मामूली मिश्रत से लेता आप मामूली मनुष्य नहीं है। आपसे अपूरा नहीं पूरा मिश्रताना बसूज करेगा।

राम नाविक के मन की बात समझ गये। फिर भी उन्होंने कहा—माँ यह मामूली नहीं है। इससे बढ़ कर तुम क्या चाहते हो ?

नाविक ने मुस्करा कर कहा—मैं नदी पार कराने के बदले ससार-सागर से पार होना चाहता हूँ। यही मेरा पूरा मिहन्ताना होगा। ऐसे आभूषण और नकद रुपया तो और लोग भी दे सकते हैं, मैं आपसे वह चाहता हूँ जो दूसरों से न मिल सकता हो।

राम ने उसकी भक्ति की सराहना की और उसके प्रति यथोचित प्रेम प्रदर्शित किया।

तो बात यह कह रहा था कि बड़े आदमी मोल-तोल नहीं करते। हैदराबाद के निजाम के बाप मौजूद थे। एक समय आम बेचने वाला उधर जा पहुँचा। उसने आम खरीदने की पुकार की। निजाम के बेटे ने पुकार सुनी तो पूछा—आम क्या भाव देते हो ? यह बात सुनकर निजाम ने कहा—पूछता क्या है ? आम ले ले और एक कटोरा भर कल्दार दे दे। इस तरह वन-यापन क्यों करता है ? तू मेरी गाड़ी के लायक नहीं है।

सुनते हैं, इन्दौर के राजा होल्कर सयाजीराव बैठे थे कि इतने में एक लडका निकला। उसने आवाज दी—लो गरमा गरम मूँगफली ! महाराजा होल्कर ने उसे अपने पास बुलवाया। उन्होंने एक मुट्ठी मूँगफली ले ली और एक मुट्ठी रुपये दे दिये।

यह राजाओं के लक्षण हैं। भाव-भाव करने में झिझक करना और अधिक लेकर कम देने की भावना या कोशिश करना कमीनों और भगतों का लक्षण है। यह प्रजा का ही पैसा है और प्रजा के पास ही जाना चाहिए। आज तो राजा लोग विलायत जाकर वहाँ पैसे को पानी की तरह बहाते हैं, पर उनकी यह भूल है। उन्हें देश का पसा विदेश में खर्च नहीं करना चाहिए।

जब राम नाविक को मिहमताना जुझाने का आग्रह करने लगे तो नाविक बोला—

अपने को श्रुणी समझते हो
तो मर तुम वहीं जुका देना ।
मैं न दे तुमको पार किया,
तुम मुझको पार लगा देना ॥

माइया ! इस अपरुपरी शक्ति नाविक की भावना पर विचार करो । अपनी भावना के साथ बसती भावना की तुलना करो । वह उन लोगों में नहीं है कि राम-नाम की माता केरे और चाह कि सारी दुनियाँ की दीक्षा भरे पर में आ जाय । वह नहीं चाहता कि हे बालाजी, हे मैरौजी । मुझे धन दे दो; मर मंडार मर दो । नाविक गरीब आदमी था । यात्रियों से एक-एक पैसा और दो-दो पैसा लेकर अपने बाल-बच्चों की परवरिश करता होगा । आज इस सीताजी का आभूषण मिल रहा है । इसके लिए वह कितनी बड़ी बीछ है ! सीताजी का आभूषण मामूली बीमर का नहीं होगा । फिर गरीब कष्ट के लिए तो वह आममोड़ ही समझा । निर्दग्ध मर पसीमा बहाकर भी वह पैसा आभूषण शायद ही बचवा सके । उसी हाव में उस आभूषण का लाभ छोड़ देना कितनी बड़ी बात है ! अगर कष्ट न होय नहीं दिया । उसी निर्दामता काय है । आप लोगों में बेसी निष्काम बलि कब आयेगी ? बभी भी आपे जब आपका बिल होम सं ऊपर उठ जायगा तभी आपका सदा कल्याण होगा । तभी आपका जीवन ईसा उठगा ।

रे पुरुष । तीन लोक के नाथ से, मँगते की तरह क्या दो-चार पैसे माँगता है । 'लौगस्स' के पाठ में कहा है —

सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु ।

अर्थात्—हे सिद्ध भगवान् । मुझे सिद्धि प्रदान कीजिए, मुझे मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित कीजिए । भगवान् से याचना करा तो ऐसी करो । भगवान् से क्या माँगना चाहिए और क्या नहीं माँगना चाहिए, इस विषय में कहा है—

प्रभुजी थारो कडय न मांगू राज,

म्हारी राखो प्रभुजी लाज ॥

दान में अभयदान जो मांगू, ध्यान में शुक्ल ध्यान ।

समकित मांही क्षायिक मांगू, ज्ञान में केवल ज्ञान ॥

हे प्रभुजी । मुझे राजपाट, धन-दौलत, महल-मकान आदि कुछ नहीं चाहिए । मैं आपसे इन चीजों की चाहना नहीं करता । मुझे तो मेरी ही चीज दे दो । मैं समकित में क्षायिक समकित चाहता हूँ, जो एक बार मिलने के बाद फिर कभी जाती ही नहीं है । क्षायिक समकित रूपी घड़िन आने पर ही केवल ज्ञान रूपी भाई आता है ।

प्रभो । मैं ध्यानों में से शुक्लध्यान माँगता हूँ और चारित्रों में से क्षायिकचारित्र माँगता हूँ और ज्ञानों में से केवलज्ञान माँगता हूँ । यह सब जगत् में अद्वितीय वस्तुएँ हैं । इनके मुकाबिले की दूसरी चीजें नहीं हैं । अपनी-अपनी जाति में यह सब प्रधान हैं ।

जब राम नाविक को मिहनताना चुकाने का आग्रह करने लग तो नाविक बोला—

अपने को श्रुषी समझते हो
तो ऋण तुम यही चुका देना ।
मैं न दे तुमको पार किया,
तुम मुझको पार लगा देना ॥

माइयो ! इस अप्रकृष्ट-अशिक्षित नाविक की भावना पर विचार करो । अपनी भावना के साथ उसकी भावना की तुलना करो । वह जन लोगों में नहीं है कि राम-नाम की माता केरे और चाहे कि सारी दुनियाँ की वीरत मरे पर में आ जाय । वह नहीं चाहता कि हे बालाजी, हे मरौजी । मुझ बन दे दो, मरा मंझार मर जा । नाविक गरीब आदमी था । यात्रियों से पट-पट पैसा और दो-दो पैसा लेकर अपने बाक-वर्षों की परवरिश करता होगा । आज उस सीताजी का आभूषण मिल रहा है । उसके लिए वह खिन्नी बड़ी चीज है । सीताजी का आभूषण सामुन्नी धौल का नहीं होगा । फिर गरीब केवट के लिए तो वह अनमोल ही समझे । ब्रिदगी भर बसीना बहाकर भी वह पैसा आभूषण शायद ही बनवा सके । ऐसी हाजत में उस आभूषण का साम छोड़ देना कितनी बड़ी बात है । अगर केवट में खोम नहीं किया । कतली निःकामता कम्य है । आप लोगों में किसी निःकाम पति के आपणी ? कभी भी आप जब आपका कित्त साथ में ऊपर उठ जायगा तभी आपका सचा बरबाद होगा । तभी आपका जीवन ईसा चढ़गा ।

रे पुरुष । तीन लोक के नाथ से, मँगते की तरह क्या दो-चार पैसे मँगता है । 'लौगस्स' के पाठ में कहा है —

सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।

अर्थात्—हे सिद्ध भगवान् । मुझे सिद्धि प्रदान कीजिए, मुझे मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित कीजिए । भगवान् से याचना करों तो ऐसी करो । भगवान् से क्या मँगना चाहिए और क्या नहीं मँगना चाहिए, इस विषय में कहा है—

प्रभुजी थारो कइय न मांगूं राज,

म्हारी राखो प्रभुजी लाज ॥

दान में अमयदान जो मांगूं, ध्यान में शुक्ल ध्यान ।

समकित मांही क्षायिक मांगूं, ज्ञान में केवल ज्ञान ॥

हे प्रभुजी । मुझे राजपाट, धन-दौलत, महल-मकान आदि कुछ नहीं चाहिए । मैं आपसे इन चीजों की चाहना नहीं करता । मुझे तो मेरी ही चीज दे दो । मैं समकित में क्षायिक समकित चाहता हूँ, जो एक बार मिलने के बाद फिर कभी जाती ही नहीं है । क्षायिक समकित रूपी वहिन आने पर ही केवलज्ञान रूपी भाई आता है ।

प्रभो । मैं ध्यानों में से शुक्लध्यान मँगता हूँ और चारित्र्यों में से क्षायिकचारित्र्य मँगता हूँ और ज्ञानों में से केवलज्ञान मागता हूँ । यह सब जगत् में अद्वितीय वस्तुएँ हैं । इनके मुकाबिले की दूसरी चीजें नहीं हैं । अपनी-अपनी जाति में यह सब प्रधान हैं ।

सम्बन्ध तीन प्रकार का है—औपशमिक, चापोपशमिक और कायिक । अनन्तागुर्बन्धी ज्योति, मातृ माया और लोभ का तथा मिथ्यात्वमोहनीय, मिथ्यमोहनीय, और समकृतमोहनीय का—इस प्रकार मोहनीय कम की सात प्रकृतियों का उपराम होने से प्राप्त होने वाला सम्बन्ध उपराम सम्बन्ध कहलाता है । एक सात प्रकृतियों में से कुछ का ज्ञान और कुछ का उपराम होने पर और देशभावी समकृतमोहनीय प्रकृति का ज्ञान होने पर चापोपशमिक सम्बन्ध की प्राप्ति होता है । पूर्वोक्त सातों प्रकृतियों का ज्ञान होने पर कायिक सम्बन्ध प्राप्त होता है । कायिकसम्बन्ध सादि अनन्त है । एक बार प्राप्त होने पर उसका नाश नहीं होता । शास्त्रों में उसकी बड़ी महिमा बतलाई गई है । अगर आयु का बंध पड़ने न हो चुका हो और कायिकसमकृत हो जाय तो जीव निश्चय ही एक मग्न में मुक्ति प्राप्त कर लेता है । अगर पड़ने आयु बंध चुम्ब हो तो तीसरे मग्न में अवरय मोक्ष प्राप्त हो जाता है ।

कायिकसमकृत या बाती है तो वैदग्धिक सुप्तों की इच्छा प्रायः नहीं रह जाती । अर्थात् इन्द्र पदवी के मोग, देशप्रति के सुख, मनुष्य संबंधी काममोग चक्रवर्ती के जीवन रत्न, ली मिथिया आदि—आदि सर्वोत्कृष्ट सांसारिक सुखों की भी इच्छा नहीं रह जाती है । कायिकसम्बन्धित इन सुखा की सपने में भी आकांक्षा नहीं करता । वह आत्मा के स्वस्व की पहचान करता है और उसकी दृष्टि एवं रश्मि इतनी निर्मल हो जाती है कि सांसारिक सुख उसे दुष्क और सारहीन प्रतीत होते हैं ।

• मिथ्यात्वमोहनीय इसकी विरुद्ध प्रकृति है । जिस जीव के मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति का उदय होता है, वह विपरीत श्रद्धा ही रखता है । उसे धर्म सुनने की भी इच्छा नहीं होती । वह धर्म को पाखण्ड समझता है । उसकी नजरों पर ऐसा चश्मा चढ़ा रहता है कि उसे सभी कुछ विपरीत ही विपरीत नजर आता है । वह स्वयं आत्मिक दृष्टि से दीवालिया होता है और दूसरों को भी दीवालिया बनाने की चेष्टाएँ करता है । जो उसके ससर्ग में आता है, उसका भी दीवाला निकलने की सभावना हो जाती है । इसीलिए सूरदास कहते हैं—

तजो रे मन, हरिविमुखन को संग ।

मिथ्यादृष्टि की सगति त्यागने का उपदेश सत पुरुष देते हैं । उससे यह नहीं समझना चाहिये कि सत उससे घृणा करते हैं । सत करुणा भाव से प्रेरित होकर ही दूसरों को अनिष्ट से बचने की शिक्षा देते हैं । उदाहरण के लिए बीमार को लीजिए । मान लीजिए किसी आदमी को छूत का रोग हो गया है । डाक्टर करुणा से प्रेरित होकर उसकी चिकित्सा करता है और दूसरों से कहता है कि इस रोगी के पास मत जाओ । इसके पास जाने से तुम्हें भी वह बीमारी लागू हो जायगी । तो क्या कोई कह सकता है कि डाक्टर को छूत के रोगी से घृणा है ? नहीं घृणा होती तो वह उसका इलाज ही क्यों करता ? उसके हृदय में रोगी के प्रति घृणा नहीं करुणा है और साथ ही दूसरों के प्रति भी करुणा का भाव है । दूसरों के प्रति करुणाभाव होने से डाक्टर उन्हें उस रोगी के पास नहीं जाने देता और रोगी के प्रति करुणा भाव होने से उसकी चिकित्सा करता है । अगर डाक्टर रोग

को बूढ़ का रोग समझते हुए भी दूसरों को उसके पास जाने वा रहने की मनाई न करे तो वह दूसरों के प्रति कष्टकारी-निर्दय कहलाएगा। इससे रोगी का कुछ भला तो होगा नहीं, दूसरों का बुरा हो जाएगा। रोगी का रोग तो मिटेगा नहीं दूसरे और रोगी हो आएंगे। अतएव डाक्टर की सलाह तो इसी में है कि वह बूढ़ के रोगी का पैस के साथ इलाज करे और दूसरों को उसके सम्पर्क से बचावे।

यही बात मिथ्यादृष्टि की संगति को दूर करने का उपदेश देने में है। संत जन डाक्टर के समान हैं और मिथ्यादृष्टि बूढ़ के रोगी के समान है। जो मिथ्यादृष्टि के संसर्ग में आते हैं उन पर मिथ्यादृष्टि का प्रभाव पड़ जाता है। इससे मिथ्यादृष्टि का कोई क्षाम नहीं होता, सम्मदृष्टि की हानि हो जाती है। संत पुरुष ब्रह्मासार हैं। वे दूसरों का हित चाहते हैं, अहित नहीं चाहते। इसी कारण वे उपदेश देते हैं कि मिथ्यादृष्टि की संगति मत करो। हों जैसे डाक्टर रोगी का इलाज करता है, उसी प्रकार वे सन्त पुरुष भी मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व स्वी रोग का इलाज करते हैं। उसके मिथ्यात्व को दूर करने के लिए भीतरांग भंगवान् की बाण्डी स्वी जीवन् उसे देते हैं।

डाक्टर के प्रयत्न करने पर भी रोग अगर साम्य होता है तो वह मिट जाता है और यदि असाम्य हो तो नहीं मिटता। इसी प्रकार संतों के उपदेश से मिथ्यात्व किसी का दूर हो जाता है किसी का नहीं होता। सन्त पुरुष परम कष्टकारी हैं। जगत् के समस्त जीवों का कल्याण चाहते हैं। वे किसी से-मिथ्यादृष्टि ने भी पछा नहीं करते। बूढ़ा करते तो उसके मिथ्यात्व को दूर करके उसे समकित के मार्ग पर जाने का प्रयत्न ही क्यों करते ?

अतएव जब सतजन हरिविमुख, धर्महीन अथवा मिथ्यादृष्टि के ससर्ग का—परिचय का—सस्तव का, त्याग करने को कहते हैं तो उनकी असीम अनुकम्पा ही समझनी चाहिए। इसी आशय से कहा है—

पापी की संगति मति कीज्यो, उलटा पाठ पढावेला ।

द्वतना को होसी सो होसी, यूँ समझावेला ॥

सुमति जद आवेला सत्संग में थारा जीव रमावेला ॥

मुनिराज कहते हैं—दया करो, सत्य बोलो, विना हक की चीज मत लो, ब्रह्मचर्य पालो, ईश्वर का भजन करो, पाप मत करो पाप करोगे तो नरक में जाकर पढोगे। मुनिराज के इस उपदेश को सुन कर मिथ्यादृष्टि कहता है—यह सब बातें झूठी हैं। वह पूछता है—अच्छा, बतलाइए कि धर्म करने वाले कितने हैं और पाप करने वाले कितने हैं? जवाब मिला कि धर्म करने वाले थोड़े और पाप करने वाले बहुत हैं। तब वह कहता है—तो बस बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि धर्म करने वाले नरक में जाएंगे और पाप करने वाले स्वर्ग के सुख भोगेंगे। कहा है—

पापी जो वैकुण्ठ जाय तो धर्मी नरकां जावेला ।

नहीं हुई नहीं होने की, पापी पछतावेला ॥

भाइयो ! मिथ्यादृष्टि और पापी मुँह से कुछ भी कह कर अपने मन को सन्तुष्ट कर लें, मगर प्रकृति का विधान नहीं पलट सकता। पापी स्वर्ग में और धर्मी नरक में जाएँ ऐसा कभी हुआ नहीं है, कभी होगा भी नहीं। अन्त में पापी जीवों को पछताना

पड़ेगा। उस समय उसकी बाकशूरता काम नहीं आएगी। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि छलटी-ही छलटी भट्ठा करता है। बड़ स्वयं को मूठ और मूठ को मत्स्य मानता है। अतएव मिथ्यादृष्टियों की संगति से सर्वत्र बचना चाहिए।

मोहनीय कर्म की एक प्रकृति है-मिथ माहनीय। जैसे राही और गुड़ मिला कर खान में लट्ठा-मीठा स्वाद आता है, वही प्रकार मिथ जीव की रश्मि मयी-मूढ़ी मिली जुली-सी होती है, जिन मिथमोहनीय कर्म का उदय समझना चाहिये। ऐसा व्यक्ति हीरा और कोयल को समान समझता है अर्थात् सच्चे-मूठे एवं गुठ और धर्म की विशिष्टता को नहीं पहचान पाता। वह दिव्य विषय के सब को एक मरीजा मान बैठता है। वह कभी-कभी मूठ देव गुण और धर्म से बिल इटा सता है, मगर सच्चे देव, गुड़ और धर्म पर विरवास नहीं लाता। ऐसा जीव भी कभी न कभी माच पा लेता है।

मिथदृष्टि का समझाने के लिए एक उदाहरण दिया जाता है। कोई एक महात्मा राग में आये। गाँव में कबर करी। कोयल धरान करने के लिए आने लगे। एक आदमी दुकान पर बैठ गया। उसने पूछा तो लोगों ने कहा-हम मुनि महात्मा के धरानार्थ आ रहे हैं। तब वह कहने लगा-बास्तब में महात्मा किस कहते हैं? महात्मा की पहचान किस प्रकार की जा सकती है? तब रस्में से एक में कहा—

हाते होते हैं साधु येमे जैम मुनि जय मांय ।
पैसा करे न कर सचारी, बल्ले जीव बचाय ॥
मधुकर सी है चरिया जिनकी सब धीरा सुसदाय ॥१॥

कनक कामिनी के हैं त्यागी, रजनी म नहीं खाय ।

कच्चे जल को कभी न पीते, अगनी छूते नाय ॥

प्रेमो भाइयो ! दुनिया में दो चीजें जवर्दस्त हैं—एक कंचन और दूसरी कामिनी । कई लोग कंचन अर्थात् धन को और कई कामिनी अर्थात् औरत को छोड़ते हैं, मगर औरत को छोड़ देना बहुत मुश्किल है । कई लोग औरत को छोड़ कर भी धन को नहीं छोड़ पाते । मगर सच्चा सन्यासी वही है जो दोनों को छोड़ देता है । दोनों को छोड़कर फिर धन या और औरत को ग्रहण करने वाला नरक का अधिकारी होता है ।

साधु वही हैं जो चाहे कितनी ही गर्मी क्यों न पड़े, पखा नहीं झलते हैं । जो गाड़ी, घोड़ा, सायकिल, मोटर, रेल आदि सजीव या निर्जीव सवारी पर कभी सवार नहीं होते । जब कभी चलने का काम पड़ता है तो पैदल ही चलते हैं और सामने की चार पैर जमीन देखते हुए और जीव-जन्तुओं को बचाते हुए चलते हैं ।

साधु अपनी उदरपूर्ति के लिए कोई व्यापार-वधा या खेती वगैरह नहीं करते । न स्वयं भोजन पकाते हैं । गृहस्थ लोग अपने निज के लिए जो भोजन बनाते हैं, उसी में से थोड़ा-थोड़ा अनेक घरों में से लेकर साधु अपना निर्वाह कर लेते हैं । जैसे भौरा अनेक फूलों में से थोड़ा-थोड़ा रस ग्रहण करके अपना काम चला लेता है, उसी प्रकार साधु किसी पर धोम न डालते हुए अपनी उदरपूर्ति कर लेते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—

कोई बैठे हाथी घोड़ा पातली मगाय के ।

साधु चले पैया पैया बिटिया बचाय के ॥

अर्थात् संसार में कोई हाथी पर बैठ कर चलाता है, कोई घोड़े पर सवार होकर निकलता है और कोई पातली में बैठता है । मगर साधु पैरों ही चलते हैं और जीव जंतुओं को बचा रखा कर चलाते हैं । फिर—

ऊँच नीच सरे बचन जगत् के, समामात्र बिठ साथ ।

आशीर्वाद आप नहीं देते, मशा पता नहीं आप ॥

जब साधु प्रयोजनवश अपने स्थान से बाहर निकलता है तो कभी कभी लोग मनमाने शब्दों का प्रयोग कर देते हैं । मगर साधु उन सब कर्मों को छोड़ और अमीठकर बचनों को सह्य कर लेते हैं । वे कठोर शब्दों का इसी भाव से सुन लेते हैं जिस भाव से कोमल शब्दों को सुनते हैं । वे अपनी निंदा और स्तुति में समान भाव रखते हैं । स्तुति सुनकर हृदय का अनुभव नहीं करता और निंदा सुनकर विषाद नहीं मानते । सब समभाव में मग्न रहते हैं । कई लोग हमें 'अरे हूँ दिया अरे हूँ दिया' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं । दूसरे साधुओं के लिए वेस शब्द कोमल जाएँ तो वे पीसटा लकर पीरें कि बहने वाला बहना मूल जाय; मगर हम तो अपराध सुनकर भी समाभाव रखते हैं । हम समझते हैं कि अपने आप शब्द में कोई शक्ति गुप्त-दुस्त व्यक्त करने की नहीं है । जब सुन्न वाक् किसी शब्द को दुस्त-जनक मानता है तभी शब्द दुस्त रूपक करता है । यही बात सुप्रसक्त शब्द के विषय में है । साधु किसी शब्द को दुस्तपद नहीं मानता ता कोई भी

शब्द उसे दुःख नहीं पहुँचा सकता । समता के शान्त सरोवर में अवगाहन करने वाला साधु अपने समभाव के यत्र में समस्त शब्दों को सम बना लेता है । अतएव कोई भी शब्द उसके चित्त में विषम भाव उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता ।

साधु का समभाव ऐसा बढ़ा हुआ होता है कि वह न किसी को आशीर्वाद देता है, न शाप देता है । भक्ति करने वाले को यह नहीं कहता कि—‘जा, तेरे लडका हो जायगा या तू धनी हो जायगा ।’ इसी प्रकार निन्दा करने वाले को शाप भी नहीं देता ।

जो नीम के पत्ते खायगा उसका मुह कड़ुवा हो जायगा और जो मिश्री खायगा उसके मुख में मिठास आयगी । प्रत्येक वस्तु अपना गुण आप ही प्रकट कर देती है । उसे प्रकट करने के लिए किसी के कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं होती । इसी प्रकार जो सत्तों और महात्माओं की स्तुति करेगा उसे आप ही शुभ फल प्राप्त हो जायगा और जो निन्दा करेगा वह अशुभ फल का भागी होगा । इसके लिए आशीर्वाद और शाप देने की जरूरत ही नहीं है । जिसने भक्ति की है उसे फल मिले बिना नहीं रहेगा । सेवा का मेवा अवश्य मिलेगा ।

इसके अतिरिक्त साधु का एक वाह्य लक्षण यह है कि साधु कभी धोड़ी, गाजा, भग या माजूम आदि नशैले पदार्थों का सेवन नहीं करते । मास-मदिरा आदि की तो बात ही दूर है । और—

मुँह पर सदा मुँहपत्ती बांधे, सच्चा ज्ञान सुनाय ।
चौथमल्ल ऐसे मुनियों के, चरणे शीश नमाय ॥

साधु मंद पर महा मुक्तवशिका बंधे रहते हैं। माइनों।
 सुखे मुक्त बोलने में पाप होता है। मंदिरमार्गी माई भी इस
 मान्यता से सहमत है। इसी कारण मंदिरमार्गी साधु भी मुक्त-
 वशिका रहते हैं, पर वे मुक्त पर न बंध कर हाथ में रहते हैं।
 मगर कभी भी सुखे मुक्त न बोलने का नियम भलीभांति सभी पक
 सकता है अब मुक्तवशिका बंधी रहे।

साधु यथार्थ ज्ञान होता है—सत्य बात को ही प्रकाशित
 करता है। सबद वीतराग मनु ने जिस तत्व का वैसा निरूपण
 दिया है उसे उसी रूप में उपस्थित करना साधु का महत्त्वपूर्ण
 कर्तव्य है। उसमें अपनी ओर से मिलावट करके तत्व के स्वरूप
 को बिछुट कर देने वाला व्यक्ति साधु तो क्या साधक भी नहीं
 हो सकता। और साधक को भी जाने कीबिधि वह सम्पादधि भी
 नहीं है। ऐसा व्यक्ति मिथ्यादृष्टि होता है।

हाँ तो साधु की वह परिभाषा सुनकर दुकान पर बैठा
 दुआ वह व्यक्ति भी जाने को तैयार हो गया। मगर कहीं समय
 एक आदमी उसके पास आया उसमें कहा—आप कहाँ जा रहे
 हैं ? वह उस तो दम्ब कीबिधि, बर्ण से तार आया है। वह तार
 बल्लन और तबनुसार काय करने में लग गया। कपड़ सुभिराज
 बिहार कर गये। लोग दर्शन करके अचन-अचने पर लौट आए।
 उनमें पूछा—मुनिराज हैं न ? लोगों ने उत्तर दिया—हाँ, मुनि-
 राज बिहार कर गये हैं। वह पछुताने लगा—अरे ! मैं नहीं
 पछुत सका। उसका उसी मायना हाथ ही वह बहुर की राशि से
 मागर की राशि में आ गया। कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी हो गया।
 उसका आत्मा में अन्धकृता के अंश प्रकट हो गये। मालों एक

करोड़ के कर्ज में से सिर्फ आठ आना चुकाना बाकी रह गया ।

दर्शनमोहनीय कर्म की तीसरी प्रकृति समकितमोहनीय है । यह सम्यक्त्व की सर्वघातिनी नहीं, देशघातिनी है । मतलब यह है कि इस प्रकृति के उदय से सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती पर यह प्रकृति सम्यक्त्व को एकदम निर्मल नहीं होने देती । जब तक यह बनी रहती है, सम्यक्त्व में चला, मल और अगाध नामक तीन दोष बने रहते हैं । श्री शांतिनाथ भगवान् शांति के कर्त्ता हैं, पार्श्वनाथ भगवान् हमारी रक्षा करें, यह हमारा शिष्य है, यह हमारे गुरु हैं, इस प्रकार की परिणामों में चंचलता उत्पन्न होते रहने से सम्यक्त्व में गाढ़ापन नहीं आने पाता । यही इस प्रकृति का कार्य है ।

अनन्तानुबन्धी कपाय हालांकि चारित्र्य मोहनीय कर्म की प्रकृति है, मगर वह चारित्र्य के साथ सम्यक्त्व का भी घात करती है । इस प्रकार वह दोहरी मार मारती है ।

इन सात प्रकृतियों के क्षय से ज्ञाधिकसमकित की प्राप्ति होती है । सम्यक्त्व के विषय में पिछले एक व्याख्यान में बहुत-सी बातें कह दी गई हैं । अतएव उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है । यहाँ सिर्फ इतना ही कहना है कि सम्यक्त्व ही भव-भ्रमण का अन्त करने वाला है ।

सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है । इसी कारण प्रभु से प्रार्थना की जाती है कि—हे प्रभो ! मुझे सब में श्रेष्ठ ज्ञाधिक-सम्यक्त्व प्रदान कीजिए । सच्चा मुमुक्षु वही है जो वीतराग भगवान् से सासारिक सम्पर्क की आकाक्षा न करता हुआ, कुटुम्ब-

परिवार की कामना न करता हुआ, केवल आत्म शुद्धि की भावना रखता है। केवल आत्मशोधन के लिए को जाने वाली मक्ति, श्रुति या आराधना ही सवा और परिपूर्ण फल प्रदान करने वाली होती है। इसी को निष्काम मक्ति कहते हैं।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है। यह यह है कि क्या वीतराग भगवान् किसी यत्न को दायिक समझित शुक्लध्यान आदि से सकते हैं? क्या गुह्य विष और सिद्धे आ सकते हैं? अगर ऐसा नहीं है तो फिर भगवान् से इनकी वाचना करने से क्या लाभ है?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मौलिक पदार्थों में ही होने के का व्यवहार हो सकता है। आत्मा के गुह्य न किसी से सिद्धे आ सकते हैं और न विष आ सकते हैं। फिर भी भगवान् से इन गुह्य की जो वाचना की जाती है उसका अभिप्राय सिर्फ अपनी भावना को प्रकट करना है। वह सांसारिक पदार्थों की भावना न करता हुआ सिर्फ आत्मा के गुह्यों की प्राप्ति की ही भावना रखता है यह बातकस वाचना से प्रकट हो जाती है। अन्तर को प्रकट भावना शब्दों के रूप में प्रकट हो जाती है।

दूसरी बात यह है कि आत्मिक गुणों की वाचना करने में सामाजिक पदार्थों की ओर न रुचि रह जाती है। इस प्रकार की रुचि का हट जाना आत्मिक उन्नति में बहुत महत्वपूर्ण बात है।

तीसरी बात यह है कि विद्यार्थी, अव्यापक से ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान विद्यार्थी की ही आत्मा में मौजूद है। अव्यापक

अपना ज्ञान विद्यार्थी को भेंट नहीं कर देता। ऐसा होता तो अध्यापक का ज्ञान कम हो जाता और किसी समय समाप्त भी हो जाता। मगर ऐसा नहीं देखा जाता। बल्कि हम देखते हैं कि अध्यापक ज्यों-ज्यों शिष्यों को ज्ञान देता है, अध्यापक का भी ज्ञान बढ़ता चला जाता है। इसने यह साबित होता है कि अध्यापक अपना ज्ञान निकाल कर विद्यार्थी को नहीं देता, बल्कि निमित्त बन कर विद्यार्थी का ज्ञान, जो स्वयं उसमें विद्यमान है, विकसित कर देता है। इसी प्रकार आत्मा के गुण स्वभाव से ही आत्मा में मौजूद हैं। मगर वे छिपे हुए हैं। जैसे सूर्य बादलों से ढक जाता है, उसी प्रकार आत्मा के गुण कर्मों के कारण ढँके हुए हैं। भगवान् की स्तुति और भक्ति करने से कर्म ढीले पड़ते हैं, पतले हो जाते हैं या नष्ट हो जाते हैं। तब आत्मा के गुण भी प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान् की भक्ति से गुणों की प्राप्ति होती है। भगवान् से आत्मिक गुणों की याचना करना भी एक प्रकार की भक्ति है।

भाइयो ! पुत्र, कलत्र, धन सम्पत्ति आदि की कामना से प्रेरित होकर नहीं वरन् आत्मा के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि के लिए भगवान् की भक्ति करो। भगवद्भक्ति का यही सबसे बड़ा फल है। निष्काम भक्ति आत्मा को अनन्त सुख देने वाली है।

केवट ने राम, लक्ष्मण और सीताजी को परले पार पहुँचा दिया। सीताजी उसे आभूषण उतार कर देने लगीं। गरीब केवट के लिए उस आभूषण के लोभ को त्यागना क्या मामूली बात थी ? मगर नहीं, उसने निष्काम भाव से अपना फर्ज अदा किया था। उसने आभूषण लेना स्वीकार नहीं किया। क्या

आप में कबट जितना भी निष्काम भाव है ? आप राम-राम
 रत्न का और राम में पड़ी कोई बीज मिल जाय तो इस वर
 परीरत मार्यत है । क्या उस बीज को छठाम में छटकते हो ?
 मुक्त का साथ लड़ी गटकत हो ? फिर राम-नाम जन का क्या
 परिणाम ? कहावत है—'नाम सब राम का, काम कर इराम का'
 अगर आप राम जैसे काम करोगे तो राम जैसे बनेंगे । फिर
 बन्वागु जान में बरी लड़ी बनेगी । आप भी राम की तरह ससार
 मासार में पार हो जाओगे ।

जम्पुडुमार का क्या ?

जग जम्पुडुमार की निष्काम भावना का देखो । उनके घर
 में उन सम्पत्ति का विपुलता थी । सभी सभी रत्न के रूप में
 उन की क्या-भी हो गई है । एक लड़ी छठ पक्षियों ऊँचे घूम
 गई है । सभी गुरुवरियों हैं और अम्नचरण में जम्पुडुमार को
 चार । है । मगर जम्पुडुमार का कामनाप मार्यत हो गई है । संसार
 की बाइ भी बलु तरह अपनी आप आवर्तिन लड़ी वर गवती ।
 अन्य है लड़ी निष्काम भावना ।

पक्षय अपन गतिविधो के साथ क्या गया । वह धन क्षेत्र
 जाया या मगर मरम्भ रक्त क्या गया है । उमड़ कम जान वर
 रम्पुडुमार व बाइया व बड़ी निगला है । आठ ही पक्षियों लड़ी
 व वरन लती

अवस्था का विचार कीजिए । हम किसके सहारे अपना जीवन व्यतीत करेंगी । नारी के लिए पति के अतिरिक्त और क्या गति है ? कहा भी है —

जिय विनु देह, नदी विनु वारी ।

ऐसे हि नाथ पुरुष विनु नारी ॥

जैसे जीव के बिना शरीर शोभाहीन है और पानी के बिना नदी शोभाहीन है, उसी प्रकार पति के बिना स्त्री शोभाहीन है ।

हे नाथ ! यदि हमारी कोई भूल-चूक आपके ध्यान में आई है, हममें कोई अवगुण है, तो हमें बतलाइए । अगर कोई अपराध हमने किया है तो वह प्रकट कर दीजिए । किन्तु बिना अपराध त्याग कर देना न्यायी पुरुष का काम नहीं है । हमारे लिए सासरा क्या पीहर क्या, सब आपके पीछे ही है । फिर आप हमें क्यों छोड़कर जाते हो ? आप ही तो हमारे जीवन के आधार हो । आप हमारा परित्याग कर देंगे तो हमारा जीवन किस प्रकार टिक सकेगा ?

जम्बूकुमार ने कहा—प्रियाओ ! तुम शिना और सस्कारों से युक्त हो । फिर तुम्हारे हृदय में इतनी कातरता क्यों है ? यह ठीक है कि नर और नारी एक दूसरे के सहायक हैं, एक दूसरे के अभाव की पूर्ति करते हैं, फिर भी नारी का अस्तित्व स्वतंत्र है, जैसे कि नर का है । तुम्हारे चित्त की दुर्बलता ही वास्तव में नारी की दुर्बलता है । चित्त की दुर्बलता दूर कर दो और फिर देखना कि तुम अनन्त शक्ति का स्रोत हो । तुमने अभी तक

अपनी शक्ति को पहचाना नहीं है। जिस दिन अपनी शक्ति को पहचान लोगी, उसी दिन तुम समझ जाओगी कि तुम्हारा जीवन किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है। तुम स्वयं अपने जीवन का निमाख करने वाली हो तुम स्वयं ही अपने भविष्य को बना सकती हो; तुम्हारा भाग्य तुम्हारे ही हाथों में है। अतएव तुम अपने मन में से कायरता की भावना निकाल कर फेंक दो। मगवान् महावीर ने नारी जाति की शक्तियों को पहचान कर उन्हें सर्वोत्तम सिद्धि का अधिकार दिया है तो क्या तुम वर्तमान जीवन को सफलता पूर्वक व्यतीत करने की शक्ति भी अपने भीतर नहीं पाती हो? दूसरे का सहारा लेकर जीवन व्यतीत करने बाधा-फिर बढ़ जाये पुरुष हो या स्त्री—वास्तव में मृतक के ही समान है।

मन्त्राणां ! मोहमयी दृष्टि को दूर करके बरा ज्ञान दृष्टि से विचार करो। मानव-जीवन एक बार नहीं अनन्त बार प्राप्त हुआ है। अनन्त बार विवाह हुआ है। अनन्त बार संसार के माग-रूपभोग भोगे हैं। लेकिन इससे आत्मा में क्या वृत्ति हुई है? अभाव के जाल से लगाकर आज तक भोग भोगने में अगर वृत्ति नहीं हुई तो इस बार भोग भोगने से आत्मा की वृत्ति हो जायगी? नहीं ऐसा नहीं होगा। आत्मा की वृत्ति नहीं होगी। भोग भोगने से अनन्त काख तक भी कभी वृत्ति नहीं हो सकती। होने वाली होती तो अभी तक हो चुकी होती।

इस प्रकार भोग जब वृत्ति प्रदान करने वाला नहीं है, बल्कि अवृत्ति ही बढ़ाता है तो फिर कल्पे प्रति इतना आकर्षण क्यों होना चाहिए? ज्ञानियों ने कहा है कि मरुत्त चक्रवर्ती की ६४ हजार

रानियों थीं। वह भोग भोगते-भोगते नहीं अघाया और अन्त में नरक में गया। अतएव मनुष्य के विवेक की सार्थकता इसमें है कि वह आत्मा की तृप्ति के वास्तविक साधनों को खोजे और उन्हीं को काम में लावे।

तृप्ति के साधन क्या है ? त्याग में तृप्ति है, वैराग्य में तृप्ति है, सन्तोष में तृप्ति है। यह विवेक जिसे प्राप्त हो जाता है और जिसकी इस पर दृढ़ आस्था हो जाती है, वह भोगों को भुजंग के समान समझने लगता है। वह उनसे दूर रहने में ही कल्याण मानता है।

देखो, पहले तो मनुष्य भव ही मिलना मुश्किल है। फिर सद्गुरु का संयोग प्राप्त हो जाना और भी कठिन है। सौभाग्य से मुझे सुधर्मा स्वामी जैसे सद्गुरु मिल गये हैं। अतएव मैं इस अवसर को चूकना नहीं चाहता। मैं तो यह भी चाहता हूँ कि तुम भी अपने लिए इन्हीं मार्ग पर चलने का निश्चय कर लो। इसी में तुम्हारा भी कल्याण है।

पत्नियों ने कहा—यह खूब रही। हम आपको रोकना चाहती हैं और आप हमें उलटा वैराग्य के कंटकाकीर्ण रास्ते पर ले जाना चाहते हैं। अभी आपको साधु बनने का शौक लग रहा है पर थोड़े ही दिनों में यह शौक समाप्त हो जायगा। अभी आपने नव-यौवन अवस्था में पॉव रक्खा है। इस अवस्था में मन पर काबू रखना बहुत कठिन होता है। साधु बनने पर घर-घर भित्ता लेने के लिए जाना पड़ेगा। अतएव—

पियात्री ! एक तों धर्म मारी सांभलो बी ।
 घर-घर मांघोला भीख, ममता नहीं सरेल्लभी २
 हो म्हारी सोझी रा सरदार छोड़यो नहीं सरेला बी ।
 म्हारी बामुर्बद की खूब तोड़यो नहीं सरेला बी ॥

मियतम ! आहार लेने जाओगे तो तरह-तरह की किम्वदन्तानियों की तरह सबी मिलेंगी । उस समय ममोबिचारों को जीतना कठिन हो जायगा । मैं कहती हूँ, ऐसे सुनो और बिचाओ ! मारियों के आल में फँसकर कई महात्मा साधुपन छोड़-कर मार गये हैं । उन्होंने अपने जीवन को भ्रष्ट कर दिया है । वे न बरक रहे न वन के रहे । रोना दीन से गये । वह समय जोग लेने का नहीं है । नीचताम का समय धी है । समय आने-से पहले अपने पर जबरदस्ती करके, सबम लेने का परिणाम अच्छा नहीं आता । इसलिए गृहस्थ होकर रहो और भावक धर्म का पालन करो । अभी आपके लिए बही योग्य है । समय-आने पर हम सब साथ ही संयम रखेंगे ।

इसके सिवाय अभी आपके माता-पिता मौजूद हैं । माता-पिता की मौजूदगी क्या बामुर्बदी बात है ? ये धर्म के समान हैं । इसकी सेवा करो । माता-पिता की सेवा करना भी धर्म का कर्तव्य है ।

फिर पुत्र पुत्र का अवलम्बन होता है । अभी आपके एक भी पुत्र नहीं है । कम से कम एक पुत्र होने दीजिए । फिर उसे अपना भार सौंप कर दीक्षा लेंगे और अपना कर्त्तव्य

करना ॥ प्राणनाथ ! एक बात तो हमारी भी मान लो ! निष्ठुरता मत वारण करो ।

जम्बूकुमार बोले—तुम सब साथ-साथ अपनी बातें कहोगी तो मैं उत्तर कैसे दे सकूंगा ? अच्छा हो कि तुम एक-एक अपनी बात कहो । तब उत्तर देने में मुझे सुभीता होगा और तुम्हें भी सन्तोष होगा ।

यह बात सुन कर आठों चुप हो गई । थोड़ी देर बाद उनमें से एक खड़ी हुई । उसका नाम समुद्रश्री था । उसने कहा—नाथ ! आप किस तृष्णा में फँसे हो ? लोक में कहावत है—गोद का छोड़ कर पराये की आशा करना । ऐसी आशा बुद्धिमान नहीं करते । आखिर आप सयम क्यों लेना चाहते हैं ? सुख प्राप्त करने के लिए ही तो ? मगर कौन-सा सुख आपको यहाँ प्राप्त नहीं है ? आप-मोक्ष के सुख की आशा लेकर प्राप्त-सुखों का परित्याग करने को तैयार हुए हैं, मगर मोक्ष सर्वथा परोक्ष है । किसने मोक्ष देखा है और कौन वहाँ के सुख देख कर आया है ? आपकी बुद्धि तो किसान सरीखी है । सुनिये—

एक किसान था । उसका नाम बग था । थली प्रान्त का रहने वाला था । उसकी सुसराल मेवाड़ में थी । उसने कभी साठा नहीं देखा था । एक बार वह अपनी पत्नी को लेने गया । वह शाम को पहुँचा था, अतः रात्रि को सादा भोजन, जो पहले ही तैयार हो चुका था, करा दिया गया । सुबह गुड के मालपुवे बनाये गये । थली सामने रखी तो उसमें एक मालपुवा था । थली के किसान ने पूछा—ओ कंई है ? उसे उत्तर मिला—मालपुवा । उसने थोड़ा-सा तोड़ कर चखा तो मीठा मालूम हुआ । अतएव

उसने सारा का सारा मोड़-मरोड़ कर मुँह में रख लिया। औरतें गाती-गाती हँसने लगीं। फिर माकड़पुत्रे परोसे गये। सासू ने रंगरंगी दिखला कर दो का इशारा किया। उसका आशय यह था कि माकड़पुत्र के दो डुकड़े करके खाओ।

मगर किसान बुद्धिहीन था। उसने सासू की दो ठ गलियों देख कर समझा एक साथ दो-दो माकड़पुत्रे खाने चाहिए। फिर क्या था। उसने दो माकड़पुत्रे एक साथ छठाये और मुँह में दूँस लिये।

औरतों के शिप तमारा हो गया। वे गीठ गाना मूँड गईं और हँसती-हँसती कोट पोट हो गईं। सब बन्नी के किसान का मजाक उड़ाती हुई अपने-अपने घर लौट गईं।

औसने के बाद अमाईजी को खेत पर ले जाया गया। खेत पर पहुँचकर उसने पूछा—आज जो बीज काई, वह किस पेड़ में लगती है ? उसके सामने ने कहा—इस सठि से काई आती है। वह किसान आश्चर्य करने लगा और बोला—हमारे घर पर बीज नहीं होती। तब सामने ने एक साँझ काट कर बुसाया। उस साँझ बहुत पसंद आया। उसने कहा—मैं अपने माय यह बीज ले जाऊँगा।

वह किसान इस-पन्ध्र दिन सुसरार में रहा। जब अपने घर लौटने लगा तो एक-दो गाँव सठि भर कर साथ ले गया। तब उसने खेत में बाजरी बग रही थी। बाजरी अभी पकी नहीं थी पकने की सैयारी में थी। इस पर बाबू से कहा—मैं हजारों की कमाई की बीज लाया हूँ। अपने खेत में बरी बीज बोपेगे।

घर वाले समझदार थे। उन्होंने कहा—ठीक है। पहले बाजरी की खड़ी हुई फसल ले लें, फिर इसे धो देना।

हमने कहा—नहीं, शुभस्य शीघ्रम्। अच्छे काम में देरी करना अच्छा नहीं है। हम तो अभी चोएँगे।

आखिर बग नहीं माना। उसने बाजरी की फसल उखाड़ फेंकी और खेत माफ करके गन्ने धो दिये। कुएँ में पानी कम पड़ा तो घर का जेवर बेच कर और गहरा खुदवाया। मगर घालू रेत में भी कभी गन्ने उगते हैं? और फिर धोने का मौसिम भी तो अनुकूल होना चाहिए। नतीजा यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में पौधे सूखकर नष्ट हो गये।

बग दग रह गया। घर वालों ने उसे तंग कर दिया। उन्होंने कहा—हमने पहले ही कहा था कि खड़ी फसल पहले ले लो, फिर गन्ने धोना। मगर हमारी बात नहीं सुनी। अब घालू-बच्चे बारह महीने क्या खाएँगे? बग भी अब पड़ता रहा था। मगर करता क्या?

हे नाथ! यह तो दृष्टान्त है। आपको भी साधुजी से ज्ञान मिला है। मगर याद रखिये, साठा धोने चलोगे तो बाजरी भी हाथ से चली जायगी। अर्थात् ज्यादा सुख की अभिलाषा से यह प्राप्त सुख भी खो बैठेगा। अनिश्चित चीज के भरोसे निश्चित चीज को छोड़ना बुद्धिमत्ता नहीं है। मोक्ष के सुखों का क्या पता है कि वह मिलेंगे या नहीं? पर आज जो सुख आपको प्राप्त थे तो हाथ से चले ही जाएँगे। कहा भी है—

यो ध्रुवाणि पारिस्पन्ध, अध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव हि ॥

अर्थात्—जो मनुष्य निश्चित-ज्ञान में आई चीज को त्याग कर अनिश्चित चीज की चारा करता है, वह दोनों से ज्ञान में बैठता है । अनिश्चित तो नष्ट है ही, निश्चित भी नष्ट हो जाती है ।

हे मिषतम ! मेरी इस दिवकर सलाह पर विचार करो और हम लोगों पर भी क्या करो । आप उतावले करेंगे और हमारे बात पर ध्यान नहीं देंगे तो आपकी दशा भी बंग किताब के समान होगी । बंग को बाद में पक्षात्ताप हुआ था, मगर उस पक्षात्ताप का कोई परित्याग नहीं निकला । इसी प्रकार आपका पक्षात्ताप भी हुआ जायगा ।

जैसे रेतीली मृमि में सँझा लड़ी लगले, वही प्रकार आप के समान अत्यन्त सुकुमार शरीर से संकम भी नहीं पाया जा सकता । संकम के लिए कठोरता चाहिए, सहनशीलता चाहिए । वह आप में क्यों है ? सुरज की भूप का रेसकर ही कुम्हवा चाये जाऊँ कैसे आतापना होगा ? अगर आप मरी सलाह मानेंगे तो आपको और हम लोगों को भी आनन्द ही आनन्द होगा ।



कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विवेक



स्तुतिः—

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः,

शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः

त्वत्पादप्रङ्कजर्जोऽमृतदिग्धदेहा-

मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वह, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

भगवन् ! यदि किसी पुरुष के जलोदर जैसी भयानक बीमारी हा गढ़ हो और पेट में पानी भर जाने से हाथ-पैर गल गये हों और वह शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया हो—मरणासन्न

हा गया हो—वैद्या ने बीमारी को असाम्य कह कर चिकित्सा करना चाह दिया हा किन्तु बड़ी पुरुष अगर भगवान् के चरण-कमल की पूत संकर अपने शरीर पर मल से तो अनायास ही इसकी मारी बीमारियों बुर हा जाती हैं। वह पुरुष कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाला हो जाता है। भगवान् के चरण-कमल की पूत में ऐसी शक्ति है। जन्ही भगवान् आपमदेव को हमारा बार-बार ममस्कार ह।

भाइयो ! जब अमूर्तरंग कारण पाप का उदय और बहिरंग कारण अपव्यय संघन आदि का संगोग मिलता है तो कई प्रकार की बीमारियों लग जाती हैं। बीमारियों अन्धीमठी हैं। इनमें म जलादर की बीमारी भी एक है। जलादर सोकह महारोगों में स एक है। आयुर्वेद के ग्रंथों क अनुसार यह बीमारी प्रायः जूँ क खा सन से हा जाती है।

कई-एक स्त्रियों और पुरुषों के सिर में जूँ पड़ जाती हैं। उनके माथ में जूँ चिक्कचिक्काती रहती हैं। वे बार-बार अपना माथा खुजलाती हैं। रसोई बनात समय हाथ स सिर खुजलाती हैं, तब उनक मामूनों में जूँ भर जाती है और वह गीले आटे में मिलाकर नाने बाक्ष के पेट में बसी जाती है। पाप का उदय जाता है और मलपद अगुहन निमित्त भी मिल जाता है।

बिबकवान और प्रमादहीन पुरुष और स्त्रियों ऐसा अचसर ही बड़ी ध्यान दर्ता जिसम गंदगी क कारण कोई अन्धबल्यम हो।

आवाटर बीमारियों क क द्वारा उत्पन्न होती हैं। पेट में काद उदगता जातवर पला आप ता बीमारी लड़ी हो जाती है।

बन दिन में भी पूरी तरह सावधानी रखे बिना सूक्ष्म जन्तु नज़र नहीं आते तो रात्रि में तो आ ही कैसे सकते हैं ? रात्रि में भोजन करने से क्या हाल होता है ? जरा सुनिये—

जलोदर उत्पन्न होए जूं के पाड़िया पेट ।
मुख में जावे मक्षिका, वमन करावे नेट ॥
वमन करावे नेट ठेट तज मन ढेटाई ।
बाल करे सुर भग कोढ़ मकड़ी से थाई ॥
कपाली सड़-सड़ मरे विच्छू के संबंध ।
रतन कहे तज मानवी रात्री भोजन अंध ॥

जू खाने से पेट में जलोदर रोग हो जाता है । इससे हाथ-पैर गलते जाते हैं और पेट बढता जाता है । भोजन के साथ मक्खी पेट में चली जाय तो तत्काल वमन हो जाता है । काटा खाने में आ जाय तो कण्ठ में व्यथा होती है । मकड़ी खा लेने से कोढ़ हो जाता है । कोई-कोई मकड़ी ऐसी जहरीली होती है कि आदमी मर ही जाता है । शरीर पर सफेद-सफेद दाग अकसर मकड़ी के खाने से ही पड़ते हैं । कदाचित् भोजन में विच्छू मिल जाय और वह पेट में चला जाय तो कपाल सड़ जाता है, या वह तालु को फोड़ देता है । यह सब धीमारियाँ प्रायः उन्हीं को होती हैं जो रात्रि में भोजन करते हैं अथवा दिन में असावधानी से खाते हैं । अतएव रात्रि में भोजन करने का सर्वथा ही त्याग कर देना उचित है और दिन में भी असावधान होकर—भोजन को देखे-भाले बिना नहीं खाना चाहिए ।

संसार में सात सुख मान जाते हैं । उन सब में पहला सुख निरोगी काया है । अगर शरीर बीरोग हुआ तो दूसरे सुख भाग जा सकते हैं । शरीर अगर रंगों का पर बन गया तो कोई भी सुख नहीं भोगा जा सकता । शरीर स्वस्थ होगा तो दुनिया के काम भी ठीक तरह होंगे और धर्म-ध्यान भी हो सकेगा । शरीर का बिगड़ना जीवन का बिगड़ना है । शरीर रुग्ण हो जाने पर सारी जिद्दी टूटान हो जाती है । जीवन मार माझम पड़ता है । चित्त व्याकुल रहता है । न रामे-मीने को मन होता है और न धर्म-ध्यान की तबीयत चाहती है । अतएव सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए शरीर की स्वस्थता अनिवार्य है और शरीर की स्वस्थता के लिए मोक्ष सम्बन्धी विषय अनिवार्य है । मोक्ष सम्बन्धी विषय में रात्रि मोक्ष के त्याग का स्थान प्रधान है । अतएव रत्नचन्द्रा महाराज कहते हैं कि रात्रि का मोक्ष बंधा हाता है । रात्रि में मोक्ष के साथ कुछ भी जीव-जन्तु काया-पीया जा सकता है ।

माइको ! रात्रि में मोक्ष करना बड़ा भारी पाप है । रात्रि में मोक्ष करने वाले को क्या पता चलेगा कि मोक्ष में रात में कीकी है या जीरा है ? वह तो कीकियों को भी जीरा समझकर खा जायगा । इसीलिए कहा है—

बनो तुम रात का खाना, इसी में पाप भारी है ।

जो मनुष्य रात्रि में जारों प्रकार के खाद्य का त्याग कर रहा है उसे चारह महीने में ब्रह्म महीने की तपस्या का फल मिलता है । उसकी आधी जिद्दी तप में व्यतीत होती है । अतः

एव किसी भी स्थिति में रात्रिभोजन नहीं करना चाहिए ।

शारीरिक दृष्टि से भी रात्रिभोजन त्याज्य है । भोजन के पचने में कम से कम ३-४ घटे लगते हैं । अगर रात्रि में भोजन किया जायगा तो उसके हजम होने से पहले ही सोना पड़ेगा । इससे स्वस्थ और गहरी नींद नहीं आएगी तथा पानी की कमी रह जायगी । हजम होने से पहले ही सो जाओगे तो खाना पचाने के लिए पेट की मशीन को बहुत ज्यादा मिहनत करनी पड़ेगी और इससे मशीन जल्दी कमजोर हो जायगी । जो लोग सूर्यास्त से पहले ही खा लेते हैं, उनके पेट की मशीन को विश्राम मिल जाता है । गहरी नींद आने के कारण वह स्वस्थ रहते हैं ।

कई लोगों की आदत इतनी खराब हो जाती है कि चाहे दिन में कोई काम न हो, फिर भी वे रात्रि में ही भोजन करते हैं । ऐसे लोग अपने धर्म को और स्वास्थ्य को अपने हाथों नष्ट करते हैं । कहा है—

चिड़ी कमेड़ी कागला, रात चुगण नहीं जाय ।

नर देह भारी मानवी, रात पड्या किम खाय ?

चिड़िया और कौवा जैसे पक्षी भी रात के समय चुगने नहीं निकलते तो हे मनुष्य ! तू क्या उनसे भी गया-बीता है ? तू ने मनुष्य का उत्तम शरीर पाया है और पक्षियों की अपेक्षा अच्छी बुद्धि भी पाई है, सो क्या इसीलिए कि तू उनसे भी गये-बीते काम करे ? अरे समझदार प्राणियों के सरदार ! तू रात्रि पढ़ने पर भी खाने से नहीं चूकता ?

भाइयो ! एक कामदार साहब के घर मिट्टी का शौक बना । उसमें संयोगवश दिपकली पड़ गई और कममें मसाला त्रिपट गया । जब वे भोजन करने बैठे तो उमड़ी वाली में शौक परोखा गया । दिपकली भी वाली में आ गई । कामदार साहब भोजन करने लग । मगर किसी तरह उन्हें शौक पड़ी । गौर संदेखा तो पठा पला कि मिट्टियों के साथ दिपकली भी वाली में बिराजमान है । उस दिन से रात्रिभोजन से उन्हें ऐसी घृणा हुई कि फिर कभी उन्होंने रात में नहा खाया ।

रात्रि का भोजन राक्षसी भोजन कहा गया है । यह असह्य है । अतएव स्वास्थ्य की रक्षा और घम की रक्षा के लिए रात्रि भोजन का त्याग करना आवश्यक है । जब सारे जीवन का आधार भोजन है तो यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि भोजन के सम्बन्ध में कितनी सावधानी की आवश्यकता है । भोजन की जाँच करने के लिए प्रकाश की ओर से कितने ही डाक्टर नियुक्त किये गए हैं ।

सब से पहले कान सुन कर बीज की परीक्षा करते हैं । बाजार में जो बीज आते हैं वह अच्छी है या नहीं, यह बात पहले अकसर कानों को माहूम होती है । जब काम जान जाय है कि असुख बीज अच्छी है तो वे मनुष्य को उसे करीबने के लिए भेजते हैं । मगर वहाँ भोजी कहती हैं कि अब हम भी परीक्षा करंगी कि वास्तव में यह बीज अच्छी है या बुरी ? इसके बाद नाक साहब का काम शुरू होता है । वे उसे सूँघ कर जाँचते हैं । इस प्रकार कई डाक्टरों द्वारा पास कर लेन पर भोजन-सामग्री घर पर आती है । भोजन ठीकर होता है । अब यदि भोजन

अच्छा नहीं बना है तो प्रथम तो होठ ही जबाब दे देते हैं। अगर और मुह में ले लिया तो दात और जीभ उसे पास करेंगे। कटुक, कसायला या कंक्ररीला हुआ तो फौरन थूक दिया जायगा। इस पर भी यदि चबा लिया गया तो गले में जो कागला है, वह उसे 'पास' करता है। अटकने वाली चीज़ होगी तो वह वापिस कर देगा। फिर भी कदाचित् पेट में पहुँच गया और मशीन ने 'पास' नहीं किया तो वह खराब खाना किसी भी रास्ते से बाहर फेंक दिया जाता है।

इतने डाक्टरों के होने पर भी मनुष्य अपनी हवस के कारण ध्यान नहीं देता। वह अभक्ष्य क्या है और भक्ष्य क्या है, इस बात का विचार किये बिना ही अपने पेट को अन्न का भंडार बनाता चला जाता है। इतना बड़ा दिन पड़ा है। इसमें खाते-खाते भी नहीं अघाता तो रात्रि में भी ठूसता है।

भाइयो ! मनुष्य वही कहलाता है जो कृत्य-अकृत्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, सत्य-असत्य, हित-अहित और भव-अर्भाव के सम्वन्ध में विवेकपूर्वक मनन करता है। कृत्य-अकृत्य को कर्त्तव्य और 'अकर्त्तव्य भी कहते हैं। जिसने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक प्राप्त कर लिया है, उसका इहलोक और परलोक सुधर गया समझो। इसको विपरीत जिसे कार्य-अकार्य का भान नहीं हुआ, वह चाहे 'दर्जनों भीपाएँ क्यों न पढ़ चुका हो, मूढ़ ही है। उसका समस्त ज्ञान अज्ञान है। सब पढ़ना-लिखना बृथा है। नीतिकार कहते हैं -

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्य, प्राणैः कण्ठगतैरपि ।

अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

प्राप्त करने की नौबत आ जाय तो भी मनुष्य को कर्त्तव्य—
करने योग्य प्रशस्त पुरुष-व्रत करना चाहिये । और कंठ में प्राप्त
आ जाने पर भी अकर्त्तव्य कर्म कदापि नहीं करना चाहिये ।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कर्त्तव्य कर्म क्या है और
अकर्त्तव्य कर्म क्यों-से है ? प्रश्न सचमुच त्रुटित है, क्योंकि एक
मनुष्य जिसे कर्त्तव्य समझता है, दूसरा उसी को अकर्त्तव्य सम-
झता है । और दूसरा जिसे अकर्त्तव्य मानता है दूसरा उसे
कर्त्तव्य मानता है । इसके अतिरिक्त एक अवस्था में जो कार्य
करने योग्य समझा जाता है वही कार्य दूसरी अवस्था में—भिन्न
परिस्थिति उपस्थित होने पर न करने योग्य प्रतीत होता है ।
ऐसी स्थिति में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निर्णय कर लेना एकदम
सहज नहीं है ।

इस संबंध में दो बातें कही जा सकती हैं । परिस्थिति के
अनुसार कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य बदल सकता है, पर उनके आधारभूत
सिद्धान्त नहीं बदलते । उन सिद्धान्तों के आधार पर ही कर्त्तव्य
अकर्त्तव्य का झाँचा प्राप्त करना चाहिये । यह ज्ञान प्राप्त करने के
लिए किसी पाठशाला या महाविद्यालय में ज्ञान की आवश्यकता
नहीं है किसी गुरु के द्वार लटकवाने की भी जरूरत नहीं है ।
आपके पास और मनुष्य मात्र के पास हृदय की कसीटी मौजूद
है । हृदय की कसीटी पर कस कर देखो तो पता चल जायगा
कि कर्त्तव्य क्या है और अकर्त्तव्य क्या है । तुम्हारा पड़ोसी
किसी बहना के कारण बदफरा रहा है । उसे देखकर तुम्हारा
हृदय ही तुम्हारा कर्त्तव्य निर्देश करेगा । बेदना से कराइते
हुए और बदफराते हुए किसी मनुष्य को देखकर अपना कर्त्तव्य

निश्चित करने के लिए क्या पुराणों और पोथियों के पन्ने टटोलने जाओगे ? अथवा गुरुजी से सलाह माँगने दौड़ोगे । नहीं, उसी समय तुम्हारे हृदय का शास्त्र और भीतर बैठा हुआ गुरु तुम्हें तुम्हारा कर्त्तव्य प्रदर्शित कर देगा । इस प्रकार कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निश्चय करने के लिए तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है । अपने शुद्ध हृदय की ध्वनि को ही सुनो, अमृतनाद की ओर कान दो बस निर्णय तुम्हें मिल जायगा ।

कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी आ जाते हैं कि हृदय स्पष्ट निर्णय नहीं दे सकता । उस समय कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक प्राप्त करने के लिए महापुरुषों की वाणी का सहारा लेना चाहिये । महापुरुष बतला गये हैं कि अमुक कार्य कर्त्तव्य है और अमुक अकर्त्तव्य है । यह कसौटी अभ्रान्त कसौटी है । शास्त्रों से कभी किसी को अपने कर्त्तव्य के विषय में धोखा नहीं हो सकता । शास्त्रों में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की विस्तृत और विशद विवेचना तो है ही, देनो के फल भी बतलाये गये हैं और साथ ही उदाहरणों द्वारा यह भी दिखलाया गया है कि कर्त्तव्य कर्म करने वालों की क्या स्थिति हुई है और अकर्त्तव्य करने वालों की कैसी दशा हुई है ?

मतलब यह है कि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के सवध में दोनों कसौटियाँ आपको प्राप्त हैं । इनमें से जहाँ जो कसौटी उपयुक्त हो, उसी पर कस कर आप निर्णय कर सकते हैं और अकर्त्तव्य से बच सकते हैं ।

तीर्थंकर भगवान् राज्य को त्याग कर जब मुनिव्रत अंगीकार करते हैं तो क्या प्रतिज्ञा लेते हैं ? 'सर्वं अकरणिज्जं जोग

बचस्यामि । अथान् अब मैं मन से, बचन से और काय से कोई भी अकृतकर्म नही करूँगा न किसी से कराऊँगा और मैं करने वाला का अनुमोदन करूँगा । तीर्थंकर भगवान् के मार्ग का अनुसरण करने वाला महापुरुष आद्य भी यही प्रतिज्ञा लेते हैं । किठनी प्रतिज्ञा है ? कितना कठोर उत्तरदायित्व है ? इसीलिए तो यही प्रतिज्ञा लेने वाला और उसका पूरी तरह पालन करने वाला भगवान् के सम्मनीय और पूजनीय होते हैं ।

कच्छ और चर्च की तरह मरुत और अमरुत का वैयक्तिक प्राप्त करना भी मनुष्य के लिये आवश्यक है । भोजन तीन प्रकार का होता है—सात्विक, राजस और तामस । सात्विक भोजन सद्गुण बढ़ाने वाला राजसी भोजन रजोगुण की वृद्धि करने वाला और तामस भोजन तमोगुण का बढ़ा देने वाला होता है ।

गाँजा पीपी मिगरेट तमासु चरस चंदू, मग शराब और मांस यह सब तमासुस बढ़ाने वाली वस्तुएँ हैं, इनका सेवन करने वाला मनुष्य की प्रकृति तमासुगुणमयी बन जाती है । अतः एव वह मय त्याग्य है ।

अगल म राम और कृष्ण को कितनी गहरी भक्ति और ईर्ष्या भावना से देखा जाता है ? मेरों और मवानों को वैसी दृष्टि से नहीं देखा जाता । गाँव-गाँव में राम और कृष्ण के मंदिर मौजूद हैं । वहाँ भाव-भक्ति से जलती मेंट-पूजा होती है, केन्द्रिय ऊर्जा मन्त्रियों में तामसिक भोजन के पदार्थ नहीं बढ़ाने वाला है । न गाँजा बढ़ाया जाता है न मग चंदू शराब आदि ही बढ़ाये जाते हैं । ५६ भोगों में से ही इन बीजों की गणना नहीं की गई है । अतएव अगर आप राम के भक्त हैं तो आपको भी

इन चीजों का त्याग कर देना चाहिए । अगर मांस, मदिरा, आदि चीजें अच्छी होतीं तो मदिरों में क्यों नहीं चढ़ाई जातीं, ? ये खराब चीजें हैं, इसी कारण तो इन्हें मदिरों में नहीं जाने दिया जाता । भाइयो ! जब यह चीजें मदिरों में भी नहीं घुस सकती तो वैकुण्ठ में कैसे घुस सकेगी ? और इनका सेवन करने वाले वैकुण्ठ में कैसे घुस सकेंगे ? थोड़ी देर के लिए वैकुण्ठ की बात जाने दीजिए । यह चीजें इतनी अधिक हानिकारक हैं कि इस शरीर को भी नष्ट कर डालती हैं । इनका सेवन करने वाले नाना प्रकार की बीमारियों से पीड़ित होकर, दुःख भोगते हुए मरते हैं । भाइयो ! यह अभक्ष्य चीजें हैं । छोड़ने योग्य हैं ।

मांस और मदिरा से तो बहुत से भाई बचे हुए हैं, मगर धोड़ी, सिगरेट और तमाखू ने घर-घर में अपना डेरा डाल रक्खा है । लेकिन—

ईने गंडकड़ा नी खावे, वे तो देखी दूरा जावे ।

थाने कैसे या भावे तम्बाखुड़ी,

मत पीओ म्हाारा छैल तम्बाखुड़ी ॥ टेर ॥

देखो, इस तम्बाकू को कुत्ते भी नहीं खाते हैं । आप कुत्ते से भी गये-बीते तो नहीं हैं, फिर भी तम्बाकू का सेवन करते हैं ? तुम राम के भक्त हो, मनुष्य हो । रामजी की मूर्ति के आगे भी जो चीज नहीं चढ़ सकती, उसका सेवन करके तुम रामजी के पास कैसे पहुँच सकोगे ? भाइयो ! अगर तुम राम के सच्चे भक्त हो और मनुष्य हो और अपनी जिंदगी को सुखमय बनाना चाहते

हो तो आइ इसी समय धीकी और ठंढाकू का सेवन करना स्वाग हो ।

(यह उपदेश सुनकर बहुत—से जैन और जैनेतर भाइयों में तमाकू का स्वाग बिना)

और सुनो—

असी ठंढाकू के नेहो नहीं आये हैं गपेड़ो ।

बनि केसे सुहाये तमाकूकी --

आइ ! ठंढाकू ऐसी गंदी चीज है कि गप्पे की तबके पास नहीं पड़कते । किसी मनुष्य को 'गप्पा' बद्द दिया जाता है तो वह अपना मोरी अपमान समझता है और कद्दे वाले का भिर फोड़ देने के लिए तैयार हो जाता है । अगर बही आइसी गप्पे से गप्पे-बीत काम करता है । गप्पा की जिस गंदी चीज का सेवन नहीं करता उसे भी खुरी-खुरी सेवन करता है । यह कितनी बदसुत बात है ।

जो तमाकू खाता है वह घर के कोने में पिच-पिच करके धूमता है और सम्ब एव शिष्ट लोगों के समुदाय में समा-सोसा हठी में नहीं बैठ सकता । तमाकू पीने वाले का घर हमरान सरीका दिखाई देने लगता है । जो सूचता है उसके कपड़े गि पड़ते हैं अतएव तमाकू का खाना पीना और सूचता सभी दुब कुत है । किसी भी रूपमें इसका सेवन नहीं करना चाहिए ।

औरतें अपने पति से कहती हैं —

इसो चिनगारी ठंड बांधे,

थारो धोतियो बल जावे,
तो भी नहीं छिटकावे तम्बाखुडी ॥

हे पतिदेव ! चिलम पीते समय जब कभी चिनगारी उठ जाती है तो तुम्हारी धोती जल जाती है, कुर्ता जल जाता है और कभी-कभी तो घर में आग लग जाती है ! एक घजाज की दुकान में इसी तरह आग लग गई थी और उसका ४०-५० हजार का नुकसान हो गया था ।

तमाखू के धुएँ से मकान ही काला नहीं हो जाता है बल्कि दिल भी काला हो जाता है, फैंफड़े भी जलकर स्वाक हो जाते हैं ।

अरे नान्या का भाईजी !

तमाखू मत पीओ वरजां आपने ॥ टेर ॥

कइतां आवे लाज घणी पण, थां लेबो जय श्वास ।

मुंडा ने तो टेढो राखो, म्हाने आवे वास ॥

देख लो, गुलाबवाई कहती हैं कि—हे नान्या (नन्हें) का भाईजी ! तमाखू मत पीओ । हमें कहते लाज आती है, पर क्या करें ? कहे बिना भी नहीं रहा जाता । जय आप बातचीत करते हो और आपके मुह से सास निकलती हैं तो ऐसा मालूम होता है जैसे अजमेर की लाखन कोठडी की नाली का मुह खोल दिया हो । और—

पीला दाग लग्या हाथां के पीले पड गए दांत ।

धांसी से नहीं आवे नींद या म्हाने सारा रात ॥

तमासु का पुष्पा लगते रहने के कारण आपके हाथों में पीछे हाथ पड़ गये हैं और आपके दाँत भी पीछे पड़ गये हैं । यही तो दाँत ऐसे साफ रहने चाहिये जैसे मोगरे का फूल । इसके अतिरिक्त आप रात में झों-झों करते रहते हो । इस कारण मुझे नींद नहीं आती । हे स्वामी ! तमासु बहुत बुरी बस्तु है । चायक आपसी ऐसी गंभीरी चीजों को काम में नहीं लेते । और—

पी के बिगाड़े आंगणो से सुखो मियाड़े साय ।

बस बिगादपा मूषने से कई कठा लग थाय ॥

सब प्रकार से हानिकारक होने पर भी लोग क्यों तमासु का सेवन करते हैं ? इस संबंध में एक कवि ने कहा है—

न स्वादु नोपपमिदं न च वा पुमन्पि,

नाचिमिषं किमपि शुक्लतमासुपशम् ।

किं चाचिरोगजनकं च तदस्य मोघे,

वीर्यं नृक्षां न हि न हि व्यसनं विनाऽन्यत् ॥

अर्थात्—रोग अच्छे स्वाद वाली वस्तु का सेवन करते हैं मगर तमासु स्वाद में अच्छी नहीं होती । स्वाद न होने पर किसी-किसी चीज का भीषण के रूप में सेवन करना पड़ता है मगर तमासु किसी रोग की वजा भी नहीं है । जसमें किसी तरह की सुगंध भी नहीं है और न वह दकने में ही अच्छी लगती है । जल्दे, इसके सेवन से भोजन की बीमारी हो जाती है । इस प्रकार अच्छा रूप अच्छा रस और अच्छा गंध न होने पर

भी और रोगोत्पादक होने पर भी लोग तमाखू का सेवन क्यों करते हैं ? कवि कहता है—तमाखू के सेवन का एक मात्र कारण कुटेव ही है। कुटेव के कारण ही लोग इसका सेवन करते हैं। इसके सिवाय और कोई भी कारण नजर नहीं आता।

एक दूसरे संस्कृत भाषा के कवि ने तमाखू के संबंध में बड़ी सुन्दर बातें कही हैं। कवि कहता है—

आतः कस्त्वं तमाखुर्गमनमिह कुतो वारिधेः पूर्वपारात्,
कस्य त्व दण्डधारी न हि त्वं विदित श्रीकलेरेव राज्ञः ।
चातुर्वर्ण्यं विधात्रा विविधविरचितं ब्रह्मणा धर्महेतो-
रेकीकर्तुं बलात्तन्निखिलजगति रे शासनादागतोऽस्मि ॥

इस श्लोक में प्रश्नोत्तर के रूप में कवि ने तमाखू का परिचय दिया है और वह परिचय आलंकारिक भाषा में है। किसी ने तमाखू से पूछा—भाई साहब, आप कौन हैं ?

तमाखू—मैं तमाखू हूँ।

प्रश्नकर्त्ता—आप कहाँ से पवारे हैं ?

तमाखू—समुद्र पार से आ रहा हूँ।

प्रश्नकर्त्ता—आप किसके दण्डधारी-सिपाही या सैनिक है ?

तमाखू—आपको यह भा नहीं मालूम। मैं राजा कलिकाल का सिपाही हूँ। ब्रह्माजी ने अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए चार वर्ण स्थापित किये हैं। मैं जवर्दस्ती उन सब को एक करने के लिए कलिराज की आज्ञा से यहाँ आया हूँ।

करने का आराध यह है कि तमासू ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि के मेवभाष को भी भिटा दिया है। यों ब्राह्मण दूसरे के हाथ से छुई हुई मटकी का पानी नहीं पीता, मगर दूसरे की पीई हुई बिलम को बिना संश्लेष किये पी जाता है। दूसरे के सुई वगी बिलम को अपने सुई से लगा लेता है।

अबि मे यहाँ तमासू के इतिहास पर भी प्रकाश डाला है। तमासू मूलतः मारसबब की बीज नहीं है। प्राचीन काव में, इस आर्याव्रत की पवित्र भूमि में तमासू के पौधे नहीं होते थे। उस समय के आर्य लोग इस विषये पौध से परिचित नहीं थे। कहते हैं, यह पौधा मुगलकाव में समुद्र पार से इस देश में आया। धीरे-धीरे इसका प्रचार बढ़ता गया और आज इसका सर्वव्यापी प्रचार हो गया है। आज क्या अमीर और क्या गरीब सब इसके बंगुल में फँस गये हैं। तमासू नहीं ही खरीली बीज है। वैज्ञानिक मे इसके जहर को बहुत हानिकारक बतलाया है। विस्तार से करने का बक्त नहीं है। फिर भी इसके खरीलीकरण को प्रकट करने वाली एक बलि आपसे सुनाता हूँ। संस्कृत के एक तीसरे अवि कहते हैं—

भीरुप्यः पूतनायाः स्तनमसमपिचत्काकूटेन पूर्णं
प्रक्षय्य भूमरेये किमपि च विवतो यत्तदा तस्य वचनात् ।
तस्मादपि तमासूः सुरवरपरमोष्णिष्टमेतद्दुराण,
स्तुत्वा नत्वा मिलित्वा धनिशमतिपूरा सेव्यते वैष्णवाग्रये ॥

पुराणों की कथा के अनुसार भीरुप्य मे पूतना राक्षसी का स्तनपान किया था। उसका स्तन ओककूट नामक अत्यन्त

ही भयंकर विष से परिपूर्ण थे । कृष्णजी पूतना के स्तनो का वह कालकूट विष पीने लगे तो पीते समय कुछ बुद जमीन पर भी पड़ गये । उसी प्राणहारी विष से इस तमाखु की उत्पत्ति हुई है ।

कहा जा सकता है कि यदि तमाखु इतनी विषैली चीज है तो बड़े-बड़े ज्ञानी वैष्णव लोग इसका सेवन क्यों करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर कवि ने दिया है—इसे देवों के देव विष्णु भगवान् का उच्छिष्ट समझ कर और दुर्लभ वस्तु समझ कर वे आपस में मिल कर और उसकी तारीफ करके सेवन करते हैं ।

यहाँ अन्त में कवि ने भक्त कहलाने वाले और तमाखू का सेवन करने वाले वैष्णवों का मजाक उड़ाया है । परन्तु पूर्वार्ध से स्पष्ट है कि तमाखू कितनी ज़हरीली चीज है । कवि उसे काल-कूट का ही नीचे गिरा हुआ अश वतलाकर उसकी विषाक्तता को भलीभाँति प्रकट कर रहा है ।

तमाखू के सेवन से स्मरण शक्ति का हास हो जाता है, वीर्य में पतलापन आ जाता है और जीवनी शक्ति की कमी हो जाती है । इस प्रकार सभी दृष्टियों से तमाखू हानिकारक है । भाइयो ! कवि के कथनानुसार तमाखू कलिकाल का सिपाही है, ऊँच-नीच का भेद मिटाने आया है, यह पूतना के स्तनों का कालकूट ज़हर है, इसके चगुल में मत फसो । इससे दूर ही दूर रहो । इसका सेवन न करने में ही तुम्हारा कल्याण है । तमाखू से बचोगे तो अनेक रोगों से बच जाओगे ।

भाइयो ! आज पयुपण महापर्व का प्रथम दिन है । पयुपणपर्व जीवन का महामंगलमय पर्व है । यह हमारे कल्याण का

पर्व है। यह पर्व क्या संदिग्ध लेकर आया है ? प्रत्येक पर्व का अलग-अलग संदिग्ध होता है तो इस पर्व का संदिग्ध कौन-सा है ? किस बात की घोषणा करने के लिए, हृदय में कौन-सी अनूठी प्रेरणा अगाने के लिए इसका आगमन हुआ है ? सुनिये—

पुण्यपर्व पर्व आज आया कि मित्रो पर्व आज आया ।
सब धीरों की करो दया यह संदिग्ध लाया ॥

यह पर्व सब पर्वों में पवित्र है—पर्वाभिराज है । आठ दिन की अठारह का महोत्सव है । इसलिये—

आठ दिवस तक प्रेम धरी ने बापा और माया ।
सूख करा धर्मध्यान स्वास सद्गुरु ने फरमाया ॥

इन आठ दिनों में प्रेम के प्रति प्रेम जागृत करके माइया और बाइया को सूख धर्मक्रिया करनी चाहिये । तीव्र सौ वैसठ दिनों में यह आठ दिन ही सब से अधिक महत्त्व के दिन हैं । आठ दिनों का यह स्वीकार सब स्वीकार्य में अनोखा है । और और स्वीकार के उपकरण में त बापों की हिंसा भी जाती है ।

मोरता स्वीकार तामें पच-इच्छिय की पात होठ,
दण्डरा स्वीकार सो ता हत्यारो कदापो है ।
हीवासी स्वीकार माही बिक्सेन्द्रिय की पात होठ
होषी के स्वीकार माही अक्कस गंवाई है ।
तीव्र के स्वीकार माही बिषय-बिकार बढ़,
राखी के स्वीकार माही दसि मैगताई है ।

पर्व पर्युपण त्यौहार जीवन की दया पाल,
जीव दया पाल्यां विना सभी दुखदाई है ॥

नवरात्रि (नौरता) के त्यौहार में घरों और भैंसों की घलि चढ़ाई जाती है। दशहरे के दिन तो मुसलमानों के ईद की तरह घोर हिंसा होती है। दीवाली के त्यौहार पर भी बहुतेरे कीड़ों और पतंगों की हिंसा होती है। होली का त्यौहार आने पर लोग अपनी अकल गँवा कर बावले से हो जाते हैं। घालक और बूढ़े एक राशि होकर पागलों की तरह धकते हैं। तीज का त्यौहार विषय वासना घटाने वाला है। रक्षावधन के त्यौहार पर लखपति की लुगाई भी हाथ पसारती है तो मगती सी दिखाई देती है।

यद्यपि इन सब त्यौहारों का अपने मूल रूप में, अलग-अलग कोई स्थान है। यह सब त्यौहार भी एक-एक सदेश लेकर आते हैं, परन्तु पर्युपण के समान पावन सदेश लाने वाला और कोई त्यौहार नहीं है। अन्य त्यौहारों की भावना में विकृति आ गई है किन्तु पर्युपण की योजना ही इस रीति से हुई है कि उस की भावना में कोई विकार आज तक नहीं आया है और न आने के लिए गुंजाइश ही है। इसीलिए हम कहते हैं कि पर्युपण पर्व सर्व पर्वों में शिरोमणि है, क्योंकि वह प्राणी मात्र के प्रति दया, प्रेम, सहानुभूति और समवेदना की प्रेरणा लेकर आता है। इस त्यौहार के अवसर पर सर्वत्र भूतदया का प्रचार किया जाता है। जिन्हें लोग जाति से अनार्य और मासभन्नी कहते हैं, उन मुगलों के जमाने में भी पर्युपण पर्व के अवसर पर विशेष रूप से दया का पालन किया जाता था। मुगल सम्राट् अकबर ने

होरविश्वकसुरि के तद्बोधन से पर्युष्य के समय बीबहिंसा और शिकार की मनार्थ की पोषणा की थी और सुरिजी को इस तरह का शास्त्र पत्र दिला दिया था । जिस समय चन्द्रगुप्त सरीसे जैन राजा थे उस समय की तो बात ही क्या पूछना है ? और त्यौहार सप्ताह की ओर आकर्षित करने वाले हैं, अब कि पर्युष्य पर्व सुष्ठि की ओर से आने वाला है । यह त्यौहार किस प्रकार मनाया जाता है ?—

ज्ञान दर्शन पारित्र पोषा, पोषा करो बरूर ।

पद आश्रयक संवर सामायिक, करो पाप होवे दूर ॥

ज्ञान दर्शन और पारित्र की आराधना में जो कमी रह जाती है, उसे दूर करने के लिए, इनकी विशिष्ट आराधना करने के लिए और इनकी विशिष्ट भावना से हृदय को भावित करने के लिए यह पर्युष्य पर्व आता है । जो तो प्रातःकाल और शाम काख सदैव प्रतिष्ठा करना चाहिये और कोई-कोई भट्ठाहा मायक करते भी हैं, किन्तु इन आठ दिनों में तो खाम्य होर पर किया जाता है । इनका प्रयोजन यही है कि रात और दिन में पापों एवं दोषों का जो कचरा आत्मा में इकट्ठा हुआ हो उसे निकाल कर फेंक दिया जाय और अन्तःकरण को निर्मल पर्व निरुत्पन्न बना लिया जाय । इस पर्व के पवित्र दिनों में विशेष रूप से सामायिक, संवर और पोषा किये जाते हैं ।

माइयो ! यह पर्व बच में एक बार आता है । आपके पुत्र का योग समझना चाहिये कि आपके जीवन में यह फिर आ गया है । इस पर्व के आने से पहले ही कितन ही लोग बच

घसे हैं। कौन कह सकता है कि आपके जीवन में भी यह पर्व दोबारा आयगा या नहीं आयगा ? अतः जो अवसर आपको मिल गया है, उसका सदुपयोग कर लो। इन आठ दिनों में कोई खाली मत गहना। ऐसा न हो कि—

नौ नेजां पानी चढ्यौ, तो हि न भीज्यो अंग ।

रीतो रह्यो रे सीदहा, सदा तेल के संग ॥

भाइयो ! इन आठ दिनों में कुछ न कुछ अवश्य करो। वारह महीने में नहीं किया तो चौमासे में करो और चौमासे में भी धर्म ध्यान नहीं किया तो इन आठ दिनों में तो अवश्य ही कर लो। अरे रावड़ी से भी क्या नीचे उतरोगे ?

इस अवसर पर और क्या करोगे ?—

रात्रि भोजन और नशा सब, छोड़ो विणज व्यापार
हरी लीलोती मिथ्या त्यागी, शील रतन लो धार ॥

जैसा कि मैं ने अभी कहा था, रात्रि भोजन कभी नहीं करना चाहिए और खास तौर से चौमासे में तो करना ही नहीं चाहिए। कदाचित् शिथिलता के वश होकर कर लिया हो तो अब आठ दिन के लिए तो दृढतापूर्वक त्याग कर ही देना चाहिए।

हरी-सचित्त वनस्पति के सेवन का भी त्याग कर देना चाहिए। वनस्पति में भी जीव है। यह बात शास्त्र सदा से कहते आये हैं। अब विज्ञान ने भी इस मान्यता को स्वीकार कर लिया है। वनस्पति के जीव भी हमारी ही भाँति सुख-दुःख का

अनुमन करते हैं। मन्ते ही वनकी और हमारी बेबना-शक्ति में तरहमता है, मगर यह बात तो नहीं है कि उन्हें सुख-दुःख का अनुभव ही न होता हो। यह जगदीशचन्द्र बोस ने ऐसे बच्चों का आदिष्कार किया है, जिनसे साफ़ ऐसा या समझा है कि वनस्पति काय भी असुकुल व्यवहार करने से हर्ष और प्रतिकूल व्यवहार करने से बिपाद का अनुभव करते हैं। ऐसी स्थिति में हमारा कर्तव्य है कि हम उन जीवों की दिसा से भी बचें और पर्यवण की वचामयी भावना को अपने चित्त में धारण करें।

मत्र पुरुषो ! इन आठ दिनों में मिथ्या मायस्य का भी पूरी तरह त्याग करो। पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का भी पाठन करो। ब्रह्मचर्य को यहाँ रत्न कहा है, क्योंकि यह सब प्रती और तपो में उत्तम है। कहा भी है—

तपसु वा उत्तम ब्रमचरं ।

—सूयमङ्गलसूत्र

अर्थात्—ब्रह्मचर्य समस्त तपो में उत्तम है।

व्यापार बंदा करने में आरंभ-समारंभ होता है और साथ ही चित्त में एक प्रकार की व्याकुलता बनी रहती है। चित्त जब व्याकुल होता है तो चिन्ताहीन नहीं हो पाता और चिन्ताहीन न होने के कारण एकामता के साथ धर्मभ्रान नहीं किया जा सकता। अतएव एकाम माय से धर्मप्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पर्यवण के दिनों में व्यापार-बंदा बंद रखना जाय। घेठ के लिए बारहों मास व्याकुल-व्याकुल रहें हो तीन सौ पैंसठ दिन, धाड़ी क बैल की तरह सुन रहें हो तो आठ दिन शांति के ली ! साथ

समय ज्ञान, ध्यान, तप, व्रत-नियम आदि के लिए अर्पित कर दो । ऐसा करने से कोई बड़ी हानि नहीं हो जायगी, बल्कि बड़ा लाभ ही होगा ।

धर्मसाधना के लिए यह दिन बहुत उत्तम हैं । उपवास, वेला, तेला, चोला, पचोला, अठाई या और जो तपस्या घन सके वह करो और जीवन का लाभ ले लो । यही लाभ लेने का समय है । मनुष्य जन्म में ही लाभ नहीं लोगे तो फिर कब लोगे ? यह सब चूक गये तो फिर समय नहीं मिलेगा । भगवान् ने बतलाया है —

दुमपत्तए पडुरए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।

एव मणुआण जीवियं, समय गोयम ! मा पमायए ॥

जैसे पका हुआ पेड़ का पत्ता समय बीतने पर किसी भी क्षण गिर पड़ता है, इसी प्रकार मनुष्य के जीवन का किमी भी क्षण पतन हो सकता है । इसलिए समय मात्र का भी प्रमाद करना उचित नहीं है ।

भाइयो ! कौन कह सकता है कि तुम जो श्वास छोड़ रहे हो सो उसके बाद श्वास आयगा भी या नहीं ? इसलिए कहा है —

स्वास एक खाली मत खोय रे खलक बीच,
कनक कीच अंग धोना हो तो धोय ले ।

और अधियार पूर पाप में भायो है तामें,
ज्ञान की चिराग चित्त जोना हो तो जोय ले ।

क्षणमगुर भेद तामें जनम सुधार न रे,
 प्रभुजी में प्रम प्यारा जाना हो ता होय मे ।
 मानव-जनम मूढ़ ! बार-बार मिल जाती,
 बीजमी मनुके माली पोना हो ता पोय छ ॥

भाइया ! बिजली की चमक में मोही विरोता हो तो विरो
 ता । मनुष्य जन्म बिजली की चमक के समान अस्थायी और क्षण
 भंगुर है । जो करना हा ता कर को जरूरी कर को पक्ष मर भी
 प्रमाण दिये दिता कर को । राजे मगवान् छपमरेर का समय
 चला गया । उसका बाज तइस तीर्यकर का कास भी व्यतीत हो
 गया । चौथा प्यारा भी चला गया । अब पंचम प्यारा है । इसमें
 भी आत्मव्यवस्था नहीं कराग ता आग आने बास छठ प्यार में
 करने की ता उम्मीद ही क्या है ? यह सुधबसर बार-बार मिलने
 जाना नहीं है । इसका पूरा जीत ज्ञान पर पीगामी का बखर है ।

आपन क्या ही उत्तम पुण्य कमाया वा कि आपका भार्यावर्त
 दण मिल गया । आपन पम मुरुक में जन्म लिया कि जहाँ साधु,
 साध्वी साधक और भाविका का याग मित्रा है । जहाँ शान्ति
 में आपन बात-बचा का कर बैठे हा । अब भी आत्महित के
 काम नहीं कराग ता फिर धन में समर्थ न करागे ?

पह समय वा जब कि साक्षान् तीर्यकर मगवान् इस देश
 में बिगजमान थे । नेमिनाथ मगवान् बिगजते थे तो उनके पास
 कृष्ण मठारात्र और बलराजजी बगैर आते थे । नेमिनाथजी
 के पिता कम भाई थे । सब से बड़े समुद्रबिजबजी थे और उनके
 पुत्र मगवान् नेमिनाथजी थे । सब से छोटे बसुन्धरी थे, जिनके

दो रानियाँ थीं—एक रोहणी, दूसरी देवकी । रोहिणी देवी से बलदाऊजी और देवकी रानी से श्रीकृष्णजी उत्पन्न हुए । कृष्णजी का जन्म होने के पश्चात् नेमिनाथजी का जन्म हुआ । नेमिनाथजी शौरीपुर में और कृष्णजी मथुरा में जनमे थे ।

सेवो श्रीरिष्टनेमि जहा घर वरते कुशल जी—देम ॥ ढेर ॥

समुद्रविजय शिवा देवी के नन्दा ।

यादव-वंश में पूनम चदा ॥

राजा समुद्रविजयजी शौरीपुर में राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम शिवादेवी था । एक बार रात्रि में शिवादेवी ने चौदह उत्तम स्वप्न देखे । (१) सिंह (२) बैल (३) ऐरावत हाथी (४) लक्ष्मी (५) पुष्पमाला (६) सूर्य (७) चन्द्र (८) ध्वजा (९) कलश (१०) पद्मसरोवर (११) क्षीर सागर (१२) विमान में आते हुए देवी-देवता (१३) रत्नों का ढेर और (१४) निर्घूम अग्नि की शिखा । इस प्रकार शिवादेवी ने चौदह स्वप्न देखे । स्वप्न देख कर शिवादेवी अपने पति समुद्रविजय के पास गई । उन्होंने स्वप्नों का हाल सुनकर कहा—तुम्हारे एक महान् पुण्यवान् पुत्र उत्पन्न होगा । उसी रात को अनुत्तर विमान से भगवान् नेमिनाथ का जीव रानी के गर्भ में आया । यथा समय पुत्र का जन्म हुआ । चौंसठ इन्द्रों ने मिलकर जन्मोत्सव मनाया । भगवान् नेमिनाथ के शरीर का वर्ण साँवला था —

सांवरो वदन अलसी फूल समान

एक सहस्र अष्ट लक्षण प्रधान ॥

पहले वह चौदह स्वप्नों में अरिष्ट रत्न का स्वप्न माताजी ने रक्ता था । इस कारण आपका नाम भी अरिष्टनमि रक्ता गया । आपके शरीर का बर्ष मोर की गद्दन या अठसी व पृथ के समान था । शरीर पर सर्वोत्कृष्ट १००८ लक्ष्य थे । बड़ा ही मनोर और दिम्ब रूप था । पीरे पीरे व बड़े हुए ।

रत्नक मुकुट करने कुंडल साद

तिसक ललाट सुर नर मन मोह ॥

माता अपने हृदय का सम्पूर्ण हुकार इन पर बरसा गती है । जैसे तो मगवान स्वर्ग ही सुन्दरता की साक्षान् मूर्ति थे, मगर माता को इनका गृहकार किये बिना संतोष नहीं होता था । अतएव वह जनक मस्तक पर मुकुट पहराती, कानों में कुंडल पहनाती और विशाल तथा लेखस्वी भाग पर ठिकक लगा देती थी । इन सुन्दर और मुख्यमान् आभूषणों से नेमितायत्री का नैसर्गिक सौन्दर्य और गुणा सिद्ध रहता था । इनका रूप इतना मनोमोहक था कि इतान् देवताओं और मनुष्यों के मन को मुग्ध किये बिना नहीं रहता था ।

नेमितायत्री आठ वर्ष के हुए तो राज्यों के साथ ऐक्यते लगे । आत्मन् करत हुए वे कुछ और बड़े हुए । राजाओं के साथ ऐक्यते-ऐक्यते एकबार व छप्यबी की आयुधशास्त्रा में बड़े गये । राज्यों के पंवार के रक्त ने जन्मे कहा-आप नगरों से राज्यों को देख बना । किसी राज को हाथ मत लगाता । इतना कह कर वह भी उनके साथ हो गया । वह राज दिव्यज्ञाता और कसका परिचय भी देता जाता था । फसने रहता-वह सारंग वनुष है और वह पांचवन्व राज है ।

नेमिनाथजी ने पूछा—इस धनुष में क्या विशेषता है ?

शख रक्षक—जो इसे चढ़ाता है, वही इसकी विशेषता को जानता है। जब कृष्ण महाराज इसे चढ़ाते हैं, जमीन और आसमान काँपने लगते हैं।

नेमिनाथजी ने सोचा—आजमाइश करके देख तो लें।

बस, उन्होंने धनुष हाथ में लिया और टकार लगाई। पाँचजन्य शख भी पूर दिया। उस समय श्री कृष्णजी शयन-शय्या पर थे। धनुष की टकार और शख की ध्वनि सुन कर वे सहसा उठ बैठे और सोचने लगे—मेरे जैसा दूसरा कौन पैदा हो गया ? वे आयुधशाला में जाकर देखते हैं कि नेमिनाथजी मुस्कराते हुए सामने खड़े हैं। कृष्णजी ने पूछा—यह क्या बात है ?

बलदाऊजी बोले—यह तो महापुरुष हैं, धर्म के अवतार हैं। यह बड़े होकर तपस्या करेंगे। इनके शरीर में और साथ ही आत्मा में असीम बल है।

कृष्णजी अपनी जगह लौट आये। मगर नेमिनाथजी का अतुल बल उनकी चिन्ता का विषय बन गया। उन्होंने अपनी रानियों से कहा—कोई ऐसा उपाय करे कि नेमिनाथ की ताकत कम हो जाय।

रानियों बोली—इनका विवाह कर दीजिए। विवाह होने पर अनेक उलझनों में पड़ जाएँगे और फिर यह ताकत नहीं रह जायगी।

भीष्ट, नेमिनाथजी की विचारविहीन मनोवृत्ति से महीमांठि परिचित थे। उन्होंने कहा—विवाह करना तो शायद ही स्वीकार करें। फिर भी प्रव्रज करना चाहिए।

इसके बाद क्या हुआ ?

फाग रखाया नारा, कुण्ड हुरार ।
 एकमणी बोली ये परगोनी नार ॥
 व्याह रखाया बनी आसीमा रीद ।
 पशुओं की कस्मा आशी सुनीद ॥

कुण्डजी ने छारिका के बाग में बसन्त ऋतु में, कसरिया होकर भरबाधे। कुण्डजी नेमिनाथजी बहारेबकी और सब रानियों बाग में फाग खेकने गये। भी मर कर फाग हुई। जब फाग खेकी आ चुकी तो बहाराऊजी के गीते कपड़े बनकी रानियों ने बरक दिये। कुण्ड महाराज के कपड़े भी बनकी प्रसन्न आठ रानिया ने बरक दिये। मगर नेमिनाथजी के कपड़े कीप बरकता ? वे यों ही कहे रहे। तब बनकी भौजाइयों ने, हँसी करना शुरू किया। कहा कुंवरजी ! किसकी राह देख रहे हो ? विवाह करने से कतराते हो तो कपड़े बरकने कौन आया ? अभी आप भी विवाह कर लो। एक विवाह करने में क्या है ? विवाह नहीं करोगे तो लोग कहेंगे कि बाहुबेध के मारे हाथर भी नेमिनाथजी योंही कुंवारे फिरते हैं।

इत्यादि मजाक करने पर भी नेमिनाथजी कुछ बोले नहीं। उन्होंने अपने कपड़े आप ही बरक दिये। तब बनकी भौजाइयों

में से किसी ने कहा—कवरजी औरतों को आफत की पुढिया समझते हैं। सोचते हैं कि लुगई के पाले पड जाऊँगा तो वह चैन नहीं लेने देगी। एक ही औरत के पीछे दुनिया भर की चीजें बसानी पडती हैं।

यही सोच कर तो देवरजी शादी नहीं करते। मगर देवरजी, चिन्ता मत करो। विवाह कर लो। सध जिम्मेदारी हमारी रही। विवाह करके अपनी पत्नी हमें सँभला देना।

यह सुन कर नेमिनाथजी भी हँसने लगे। तब दूसरी ने कहा—देवरजी की विवाह करने की इच्छा तो है, मगर श्री कृष्णजी कोई कन्या खोजते ही नहीं हैं। यह बेचारे कहाँ खोजते फिरें।

आखिर सब लोग अपने-अपने महलों में लौट आये। श्रीकृष्णजी ने नेमिनाथ का विवाह करने का निश्चय कर लिया। वे सोचने लगे—नेमिनाथ बहुत ही सुन्दर हैं, अतएव इनसे भी अधिक सुन्दरी कन्या मिलेगी तो वही इनका मन हरण कर सकेंगी। साधारण कन्या इन्हें आकर्षित नहीं कर सकती। ऐसी कन्या राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती है। वह भी रूप की राशि है। उसका सौन्दर्य असाधारण है। उसकी आभा विजली की चमक के समान है। वह नेमिनाथ के चित्त को आकर्षित करने में समर्थ हो सकेगी।

इस प्रकार सोच-विचार कर कृष्णजी ने राजा उग्रसेन के पास सदेशा भेजा। उग्रसेन ने उत्तर दिया—अगर आप बरात लेकर मेरे यहाँ पधारे तो मैं सगाई करने को तैयार हूँ। कृष्णजी ने यह शर्त स्वीकार करली। सगाई पक्की हो गई।

दोनों तरफ पाये बजने लगे । मंगलगीत गाये जाने लगे । भूमधाम के साथ विवाह की तैयारियाँ होने लगीं । धीरे-धीरे बरात की रवानगी का दिन आ गया । उस रोज़ सास और पर नमिनाबजी का पीछी महल हुआ । स्नान कराया गया । बड़िया से बड़िया बख़ और आभूषण पहनाये गये । आभूषणों की कीमत का क्या पूछना है ! एक-एक करोड़ों की कीमत के थे । और फिर—

पंचरंगी पोशाकें सजकर आन्या रंग्या चग्या रे,
गस रस पाड़े बैठ पासकी चले ठमग्या रे ।
नेम बनडा के रे र संग बरात चढ़ी बड़ी भूम बड़ाके रे टे ।

सभी बराती पंचरंगी पोशाक पहन कर, बन-ठन कर तैयार हुए । भूमधाम के साथ बरात रवाना हुई । बरातियों में—

कृष्ण और बम्दाऊ दोई आठ बरात के माहीं रे ।
समुद्रविजय राजादिक संग कर कर जलसाई रे ॥

इस तरह भी कृष्णजी बखरेबजी तथा समुद्रविजयजी बसुदेवजी बगैर सभी बरात में सम्मिश्रित होने के लिए तैयार हो गये । ऊपर स्वर्ग में राक्षसजी को पठा बजा तो वे भी द्वारिका की ओर रवाना हुए । राक्षस ने अपने अभ्युत्थान का प्रयोग करके देखा कि नमिनाबजी विवाह करने वालें नहीं हैं । इस बात की सूचना कृष्ण महाराज को कर दी जाय । तब राक्षसजी न ब्राह्मण का रूप बनाया और कृष्णजी के पास आकर करने लगा—

शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप धरी,
सन्मुख आई यों अरज करी ॥

शक्रेन्द्र बोले—हे वासुदेव, आपने विवाह का मुहूर्त्त निकलवाया है, उसमें त्रुटि है। यह लग्न नहीं होगा। इस मुहूर्त्त में नेमिनाथजी विवाह नहीं करेंगे।

श्रीकृष्ण मुझलाए। बड़ी कठिनाई से नेमिनाथजी विवाह करने को तैयार हुए थे और वरात की तैयारी हो चुकी थी। ऐसे अवसर पर मुहूर्त्त का अडगा उन्हें रुचिकर नहीं हुआ। अतएव उन्होंने कहा—ब्रह्म देवता! आप मुहूर्त्त का अडगा बीच में न लगाइए। आपको किसने पीले चावल दिये थे। आपने आने का वृथा कष्ट क्यों उठाया ?

श्रीकृष्ण का उत्तर सुनकर इन्द्र चुपचाप वहाँ से चल दिया।

बड़ी मजधन, बड़ी धूमधाम और बड़े भारी समारोह के साथ वरात खाना हुई। देवगण गुप्त रूप से सारा दृश्य देखने लगे। चलती-बलती वरात महाराजा उग्रसेन के यहाँ पहुँची। उस समय यादव वंश में कोई दया पालता था और कोई नहीं पालता था। उनमें कोई-कोई मासभोजी भी थे। उग्रसेन ने वरात को जिमाने के लिए एक बाड़े में कई प्रकार के जानवर इकट्ठे कर रखे थे। नेमिनाथजी जब तोरण पर पहुँचे तो उन्होंने उन पशुओं की करुणाजनक पुकार सुनी।

उधर महल के छज्जे पर अपनी सखियों के साथ राजी-मती, नेमिनाथजी की निराली छटा देखने के लिए उपस्थित हुईं

और इधर नेमिनाथजी ने सारथी से प्रण किया—यह करुण मनि
क्यों से आ रही है ? सारथी ने कहा—कुमार ! यह पशु-पक्षी आपके
विवाह के जीवन के लिए इच्छा किए गए हैं । वह सुनकर—

सौख्य तस्य वयस, बहुपाणिपिशासस ।

पि-वेह से महापशु, साणुककोसे विप्र रिक्त ॥

—उक्त० अ २२, गा १८

सारथी का उत्तर सुनकर प्रभु के अन्तःकरण में क्या की
तहरे उठने लगीं । महाशक्ती भगवान् अनुकम्पा से प्रेरित होकर
विचार करने लगे; क्योंकि वे प्राणियों का हित चाहने और करने
वाले थे । अन्ततः उन्होंने कहा—मझे ऐसा विवाह ही नहीं करना
है । सारथी तू न ठीक समय पर अच्छी खबर सुनाई । जा, बाड़े
को छोड़ दे और सब पशुओं को मुक्त कर दे । उन्हें जीवन प्यारा
है इसलिये जीने दे । सारथी ने बाड़े का द्वार खोल दिया । भीतर
भरे हुए सब पशु मर भराकर बाहर निकल और कूदते-छोटते चले
गये । यह दृश्य देखकर भगवान् के चित्त को बहुत संतोष हुआ ।
वे प्रसन्नता से किल किल बैठे । अपने शरीर के समस्त आमुष्य छुटार
कर इन्मान सारथी को इनाम दे दिये । नेमिनाथजी विवाह किंव
विवा ही वापिस खींच पड़े ।

राजीमती ने जब इस संवाद को सुना तो वह केहोरा हो गई !
उन्के चित्त को अत्यन्त बेचना हुई । बेचना के इस गुरुतर भार को
राजीमती का कोमल चित्त सहन नहीं कर सका । अमी-अमी वह
क्या सोच रही थी और क्या हो गया ! हा ! उसार बड़ा विषम

है। हर्ष में विपाद की काली छाया मिली रहती है। किसे खबर है कि पल भर में क्या से क्या हो जायगा।

सखियों का दिल भी बैठ गया था। सर्वत्र श्मशान की सी निस्तब्धता छाई हुई थी। किसी के मुँह से धोल भी नहीं निकलता था। कौन धोले और क्या धोले, यही समझ में नहीं आ रहा था। फिर भी राजीमती को बेहोश देखकर उनकी सखियाँ चुपचाप नहीं बैठ सकीं। शीतोपचार करके उन्होंने राजीमतीजी को सावधान किया। होश में आते ही राजीमती ने कहा —

छांटी मोटी सखियाँ री, नेम को मनावना, हाँ,
नेम गये गिरनार, यही तो पड़तावना ॥ १ ॥

और फिर राजीमती विलाप करने लगीं। कहने लगीं—हे प्राणनाथ ! आपका हृदय नवनीत से भी कोमल है, मगर क्या वह पशुओं और पक्षियों के लिए ही है ? मुझ जैसी अवला के लिए उस कोमल हृदय में कोई स्थान नहीं है ? अपरिमित कोमलता में अपरिमित कठोरता भी हो सकती है, यह तो आज ही मालूम हुआ ! नाथ ! आपने मेरे साथ इतना गहरा छल किया है।

इधर नेमिनाथजी घर आ पहुँचे। एक करोड़ अस्सी लाख सोनैया का दान प्रतिदिन करते हुए विरक्त भाव से रहने लगे।

राजीमती को जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उन्होंने जाना कि पिछले आठ भवों में हम दोनों साथ-साथ रहे हैं। तब वह सोचने लगी—अफसोस ! प्रभु ने आठ भवों के प्रीति सम्बन्ध को इस भव में अचानक टुकरा दिया।

नेमिनाथजी न राजीमती से कहलाया—मैं तुम्हें बिपय वासना के अग्नये कूप में गिराने के लिए तोरण पर रखी जाया था । बल्कि अमृतस्थान के महा मार्ग पर चलने का आह्वान करने के लिए जाया था । पिछले आठ मर्कों में तुमने और हमने साथ साथ ही सुख-दुःख सहन किये हैं । तब इस मर्क में मैं तुम्हारी उपेक्षा कैसे कर सकता था ? इस मर्क में भी मैं तुम्हें अपना साथी बनाना चाहता हूँ । पिछले मर्कों का सम्बन्ध और तरह का था और इस मर्क का सम्बन्ध और तरह का होगा । इसलिये राजीमती ! विपाद मत करो । अपने वास्तविक कर्तव्य का विचार करो और मानव जीवन की सर्वोत्तम सिद्धि को प्राप्त करने की तैयारी करो । मैं तैयार हूँ, तुम्हें भी तैयारी कर लेनी चाहिए ।

नेमिनाथजी साधु बन गए । राजीमतीजी को जब कन्हा खरिद मित्रा तो एक महीने ही विचारपारा कन्हे मस्तिष्क में उत्पन्न हो गई । अभी तक नेमिनाथजी के व्यवहार में उन्हें कोई कठोरता दिखलाई देती थी वह अत्यन्त अनुकम्पा भावमयी होती । वह सोचने लगी—भगवान् की मुद्रा पर कितनी श्रद्धा है । उन्होंने मेरे व्यवहार के लिए कैसी अनोखी युक्ति निकाली है । प्रभु मरी आत्मा का व्यवस्था चाहते हैं । वे मुझे अक्षय सुख के मार्ग पर ले जाना चाहते हैं । बाकिर राजीमती मैं संकल्प कर लिये—

राजीमती को संयम खूनी,

छोड़ सकल परिवार—

बही है मरी मायना ॥

उन्होंने अपने संकल्प की घोषणा कर दी । कन्हे माया

पिता को जय यह बात मालूम हुई कि राजीमती सयम धारण करने का विचार कर रही है, तो उन्होंने हजार तरह समझाने की कोशिश की। पर राजीमती पर किसी का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—पिछले आठ भवों के सगर्द-सयध को मैं आज ठुकरा नहीं सकती। नेमिनाथजी के प्रति मेरे रोम-रोम में ही नहीं, आत्मा के कण कण में प्रीति व्याप्त है। अभी तक उस प्रीति में स्वार्थमय प्रेम का कालापन था, अब वह एकदम नि स्वार्थ होगी और इसी कारण एकदम निर्मल भी होगी। इस प्रीति के पथ से मैं विचलित नहीं होऊँगी। नेमिनाथजी के सिवाय ससार का कोई भी पुरुष मेरा स्वामी नहीं हो सकता।

उधर नेमिनाथ भगवान् एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षित हुए थे। राजीमती ने ७०० क्वारों कन्याओं के साथ सयम धारण किया। धन्य है शिवा देवी जैसी माता, जिन्होंने नेमिनाथ सरीखे पुत्र को उत्पन्न किया। भगवान् नेमिनाथ ने अपने महान् त्याग के द्वारा उस समय की जनता को एक आदर्श बोधपाठ पढाया। कितने ही हिंसक अहिंसक बन गये। कितने ही मासभोजियों ने मास भोजन का त्याग कर दिया। गाजर-मूली की तरह पचेन्द्रिय प्राणियों का सिर काटने वालों के सामने एक नवीन कल्पना खड़ी हो गई। अहिंसा की महिमा लोक में फैल गई।

भाइयो ! जिस जीव ने पहले पुण्य का उपार्जन किया है, उसी को ज्ञान लगता है। वही ज्ञान की बात पर विचार करता है। पुण्य हीन पुरुष को ज्ञान की बात रुचिकर नहीं होती। कहा है—

लगे ताल झंकार, लगे देवल के टांची,

लगे सिंह के बोल, लगे सूर के सांची ।

सगे मूरख की पूप, सगे चदा की ठारी,

सगे हूत के फूल, सगे मतिथ के प्यारी ।

लगत-लगत फल वह सगे, जिस फल को पची बुगे
बैताल कह विक्रम सुनो, मूरख जन को क्या सगे ?

पत्थर को जब कुम्हार कारीगर की टांची लागती है तो वह मूर्ति के रूप में परिणत हो जाता है । इसी प्रकार मनुष्य अगर सद्गुरु का कर्ना मान से तो वह देवता बन जाता है । मगर पुरुषार्थ को ही सद्गुरु का योग मिलता है, पुरुषार्थ को नहीं । क्या है —

मागधीन को ना मिले, मली बस्तु का योग ।

जब दास्ता पावन लगी, होत काक कण्ठ रोग ॥

समाज में मित्राभा में लक्ष्मण अपने कर्तव्य का विचार कर लिया । निष्पक्ष करने में वह विक्रम नहीं लगा । राजीमती ने भी कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक प्राप्त करके कर्तव्य के पथ पर चलना आरंभ कर दिया । इस प्रकार पुरुषार्थी भी कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान पाते ही अकर्तव्य कर्म से विमुख हो जाते हैं । ऐसे ही लोग विवेकवानों की गिनती में गिने जाते हैं । जिसे कर्तव्य का ज्ञान नहीं है, भय-अभय का भान नहीं है वह विवेकहीन है, मूर्ख है । मूर्खों को न बात करने की समीप होता है, न कही हुई बात को समझने का ही ।

चार मूर्ख किसी गाँव में गये । वे गाँव के बाहर, कुए के पास किसी पद के नीचे छिपे । अन्धों की माँ की चौकने के लिए

तेल की आवश्यकता पड़ी। तब उनमें से एक मूर्ख एक पैसा लेकर तेली के घर गया। तेली तेल तोलने लगा और मूर्ख आँखें फाड़-फाड़ कर तेली के शरीर को बड़े गौर से देखने लगा। तेली ने उससे पूछा—कहो भाई, घूर-घूर कर मेरी तरफ क्यों देख रहे हो ? मूर्ख ने उत्तर दिया—तू बहुत मोटा तोजा है। जब मरेगा तो अर्थी उठाने वालों को बहुत तकलीफ होगी। यही देख और सोच रहा हूँ। तेली को बड़ा गुस्सा आया। उसने तेल डिये बिना ही उसे भगा दिया।

जब वह मूर्ख खाली हाथ अपने साथियों के पास पहुँचा तो सब ने उसे आड़े हाथों लिया। कहा—मूर्ख कहाँ के, तू यह भी नहीं जानता कि मोटे-ताजे आदमी को श्मशान तक कैसे ले जाया जाता है। आखिर उनमें से एक तेल लाने को फिर तेली के पास गया। तेली ने पिछला किस्सा सुनाया। दूसरे मूर्ख ने कहा भाई तेली ! पहले जो आया था, वह बड़ा मूर्ख था। भला ले जाने वालों को तकलीफ क्यों होगी ? मरने के बाद एक बैल तुम्हारे पास है ही, दूसरा किसी पड़ौसी का या दोनों बैलों से तुम आसानी से चले जाओगे। तेली को फिर गुस्सा आया और उसने उसे भी भगा दिया। जब वह भी खाली हाथ लौटा तो पहले ने कहा—वह तेली महा-मूर्ख है। कोई भी घात समझता ही नहीं। चलो हम तुम दोनों बराबर रहे। मगर शेष दो ने उसे भी फटकारा।

• • फिर तीसरा मूर्ख तेल खरीदने चला। वह भी उसी तेली के पास पहुँचा। तेली ने पहले वाले दोनों की कहानी सुनाई। उसे सुन कर यह बोला—तेली भाई ! वे दोनों ही मूर्ख थे। जब तुम

इतने मोटे-ताबे हो तो तुम्हें क्या जरूरत है रमरान जाने की और क्या जरूरत है किसी का पैर मॉगने की ? तुम्हारे ही घर में लाट है और पाणी है । इसीसे तुम बड़ा धिय खाओगे । पर कम मूर्खों को इतनी सूझ ही क्यों है ?

इस बार तेन्नी को भीर ज्यादा क्रोध आया । उसमें इसे मार कर मगा दिया ।

अन्त में बीया मूल्य लेख करीबने निकलता । उसने रवाना होते होते कहा-देखना मैं सेक्रेटरीकर आता हूँ या नहीं ? तुम तीन घने भी एक पैसे का लेख न करीब सके और मैं अकेला ही सेकर आऊँगा ।

बीया मूल्य बड़े पर्सल के साथ शान में आकर रुक करीब ने बड़ा मगर बड़बड़ समय बरतन सेना ही मूँड गया । वह तेन्नी के पास पहुँचा और रुक मॉगा तो तेन्नी ने कहा—किसमें लोगे ? अज्जरत को जपाइ आया कि—घरे । मैं तो बरतन ही मही लाया ।

पास ही मैरेंबी का एक स्थान था । वह भागा-भागा बर्तों गया और एक पुपारना छठा लाया । उसने पुपारना में लेख भरवाया मगर बच गया तो पुपारने को बीया करके उसमें बाकी का रुक गिरवा दिया । फिर वह अपनी जगह के लिए रवाना हुआ । भला यदि पुपारना में कितना लेख समाता ? बोझ-सा लेख लगा था स रास्ते में वह भी सोल गया ।

पुपारना लेकर बीया मूल्य अपने साधियों में पहुँचा । बोझा—देखो आशिर मैं लेख से आया कि नहीं ? क्या तुम्हारी तरह बेबकूद हूँ ?

तीनों बोले—मगर यह तो धुपारना है, तेल कहाँ है ?

वह बोला—बड़ी मुश्किल से तेली का तेल निकाला तो अब यह धुपारना उसे पी गया । मगर जायगा कहाँ । होगा तो इसी के भीतर । मैं तो ले आया हूँ, अब तुम्हारा काम है कि उसे पीस कर तेल निकाल लो । मैं तेली के घर में से निकाल लाया तो क्या तुम इस धुपारने में से नहीं निकाल सकोगे ?

भाइयो ! ऐसे मूर्खों को ज्ञान लगना कठिन है ।

जम्बूकुमार की कथा—

ज्ञान और उपदेश का प्रभाव पड़ता है जम्बूकुमार जैसे पुण्यशाली पवित्र-हृदय पुरुषों पर । उन्होंने सुधर्मा स्वामी का उपदेश सुना । उसमें उन्हें ससार की सच्ची स्थिति का ज्ञान हो गया । और जब ज्ञान हो गया तो तत्काल ससार से छुटकारा पाने का निश्चय कर लिया । उनके निश्चय में पूरी दृढ़ता थी । प्रभव उन्हें विचलित नहीं कर सका और उनकी पत्नियाँ भी विचलित नहीं कर सकती । समुद्रश्री ने किसान का उदाहरण देकर जम्बूकुमार को यह समझाने का प्रयत्न किया कि लोकोत्तर सुखों की मृगतृष्णा में पड़कर लौकिक सुखों को त्याग देना उचित नहीं है । ऐसा करना उस मूर्ख किसान के समान कार्य होगा, जिसने गन्ना बोने के लिए खेत में खड़ी बाजरी उखाड़ कर फेंक दी थी ।

समुद्रश्री का कथन सुनकर जम्बूकुमार ने कहा—समुद्रश्री ! वह किसान विवेकहीन था, मगर मैं ऐसा नहीं हूँ । मैं ज्ञानियों के मार्ग पर चल कर आत्मकल्याण करना चाहता हूँ । देखो -

किसी जंगल में एक हाथी मर गया । उसे जानने के लिए जानवर आने लगे । पशु भी आते और पक्षी भी आते । राम होने पर पक्षी रुक कर बसे आते और सुबह फिर आ जाते थे ।

एक कौवा ने सोचा—वह ठीक नहीं है । रात को भाग जाता पड़ता है, इससे हम घाटे में रहते हैं । यह सोच कर कौवा स्वीर करने की जगह से मरे हाथी के पंठ में घुस गया । रात मर भीतर घुसा घुसा वह नरम-नरम मोंस खाता रहा । दूसरे दिन कौवों ने ऐसा करने के लिए मना किया, पर वह नहीं माना । एक रात ऑधी बली और मूसलधार बर्षा हुई । पक्ष के पानी के बहाव में पड़कर हाथी की लाश भी बहने लगी । बहती-बहती वह गंगा में पहुँची और फिर समुद्र में आ पहुँची । बमका गीला होने से नरम पड़ा तो कौवा बाहर निकला । और लाश पर बैठ कर मोंस मोचने लगा । संयोग से ऊपर होकर एक जहाज निकला । मत्स्यों ने उससे कहा—इस जहाज पर आजा तो फिनारे लग जायगा । पर वह नहीं माना । अन्त में उसने समुद्र में ही अपने प्राण गँवा दिये ।

इसी तरह है मित्र ! यह संसार समुद्र है । काममोग हाथी की लाश के समान हैं और सुपरमास्वामी शुद्ध नाथिक के जहाज हैं । वे तुम्हें संसार-सागर से तारने को तैयार हैं । मैं कौवे की तरह काममोगों में आसक्त होकर अपने जीवन को नष्ट नहीं कर सकता । जो काममोगों को रुक कर धम के पथ पर जसगा उसे आत्म्य की आनन्द प्राप्त हो ॥

स्थान प्रोपपुर ।
ता २१-५ ८८ }



तपस्तेज



स्तुतिः—

आपादकण्ठमुरुश्रृंखलवेष्टिताङ्गा—

गाढ वृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।

त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,

सद्यः स्वयं विगतबन्धमया भवन्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे भगवन् ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

हे महाप्रभु ! कोई पुरुष किसी कारण कारागार में पहुँच गया हो । वहाँ पैरों से लेकर गले तक जजीरो से जकड़ दिया

गया हा भार णसी गारी बकियों उस पहना ही गइ हो कि बसभी औष दितही हो भार णमी कालकोठरी में रख दिवा गया हा कि महीं हवा का प्रबरा भी कठिन है ता बहों उसकी पुकार सुन्न वाला कान है ? णमी संकटमय अवस्था में बह विचार करता है कि यहाँ में किसक भाग पुकार करें ? और मरी सहायता करेगा ? सिवाय भगवान् के और काइ हीनों और दुर्लभों का सहायक नहीं है । यह साध कर बह भगवान् आदिमाय को याद करता है । 'ॐ उपमा' इस पार अक्षर वाले महामंत्र का जाप करता है । जो भगवान् के पावन नाम का स्मरण करते ही तमाम हृदय-कदियों और बेकियों सहायक दृढ़ कर गिर पड़ती हैं । यह बंधन स मुक्त हा जाता है और स्वतन्त्र होकर, बरी होकर, सान्न्ध अपने पर पहुँच जाता है ।

इ भव्य पुण्या ' भगवान् के नाम की अद्भुत महिमा है । भगवान् के नाम की महिमा का फल जन्मी को प्राप्त होता है, जो ससार के समस्त सहायकों-साधनों से अपनी आस्था हटा कर केवल भगवान् के प्रति ही अन्तर्मुख रहता है । जब तक विश्व में बुद्धिपा है प्रभु के पावन नाम की महिमा का फल प्राप्त नहीं हो सकता ।

कहा जा सकता है कि आचार्य महाराज ने भगवान् के नाम की जो महिमा प्रदर्शित की है वह यथि मात्र है, प्रशंसा मात्र है । वास्तव में भगवान् के नाम का जाप करने से हृदयकदियों और बेकियों दृढ़ नहीं सकती । अगर दृढ़ सकती हो तो आज कोई भी कैरी 'नाम' जाप कर स्वाधीन क्यों नहीं बन जाता ?

इस प्रकार की शका में, भगवान्-नाम की महिमा में अविश्वास छिपा हुआ है। जिनके हृदय में भगवान् के प्रति पूरी आस्था नहीं वही ऐसी शका को अपने हृदय में स्थान देते हैं। और श्रद्धा न होने का कारण यह है कि उन्होंने कभी ऐसी सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं किया। श्रद्धापूर्वक प्रयत्न किये बिना ईश्वर की महिमा अनुभव में नहीं आ सकती। ऐसी स्थिति में ईश्वर की महिमा का अनुभव करने के बाद जो प्रयत्न करना चाहते हैं, उन्हें निराशा के सिवाय और क्या हाथ लगने वाला है ? ईश्वर की महिमा के अनेक प्रमाण शास्त्रों में मौजूद हैं। सुदर्शन सेठ शूली पर चढ़ा दिये गये थे, पर किस भौतिक शक्ति शूली को सिंहासन बना दिया था ? सती सीता को अग्नि के ढूँ में झोंक दिया गया, पर ईश्वरीय महिमा के सिवाय किसने उसकी रक्षा की थी ? अमरकुमार के प्राण बचाने कौन गया था ? चन्दनवाला की हथकड़ियाँ और वेडियाँ किस तरह तडाक से टूट गई थीं ? शास्त्रों में ऐसे-बहुत से दृष्टान्त मौजूद हैं, जिनसे पता चलता है कि परमात्मा के नाम का, एकाग्र भाव से जप किया जाय तो ससार की भीषण से भीषण शक्ति भी परास्त हो जाती है। अतएव भगवान् के नाम के अलौकिक माहात्म्य के विषय में शका को गु जाइश नहीं है।

इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर हुए। भगवान् ऋषभदेव सबसे पहले तीर्थंकर थे। उनके बाद अजितनाथजी, समवनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभुजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभुजी सुविधिनाथजी (पुष्पदन्तजी) और दसवें शीतलनाथजी हुए। सुविधिनाथजी और शीतलनाथजी के समय

म प्रीता और वैदिकों में कोई भद नहीं था। मगवान् श्रमभङ्गजी ने वज्र की जो आवाज़ें फरमाई थीं, वही पत्नी आ रही थीं। बाद में उनमें अन्तर पड़ गया। मगवान् श्रमभङ्ग के उपदेश में विस्मय जैसा आया, परिवर्तन कर आया। तब आत्मबोध हुआ और सभी स जैन पम और वैदिक धर्म अलग-अलग हो गए।

मगरहों तीर्थंकर भेषमितावजी और बारहवें वासुपूज्य स्वामी हुए। वासुपूज्य स्वामी की एक पत्नी नहीं थी प्रेरणा राशिनी है। जब वासुपूज्यजी अपनी माता के गर्भ में थे तब की बात है। किसी सेठ न बड़ी विशाल हथेली बनवाई। गुम सुहृदों में सेठ और सेठानी ने इस हथेली में राखन किया। आधी राशि का समय हुआ तो अकस्मात् आवाज सुनाई दी—‘पहूँ’। इस समय अचानक यह आवाज सुनकर सेठ और सेठानी विस्मित हो गए। उन्होंने ऊपर-ऊपर चारों ओर देखा मगर कोई भी मन्दर नहीं आया। जब कोई मन्दर न आया तो वे आँखें मूँद कर बैठ गईं। मगर फिर वही आवाज कानों में पड़ी—‘पहूँ’।

दोबारा वही आवाज सुनकर सेठ-सेठानी का घबराहट हुआ। मय के बारे में सभी हथेली छोड़कर अपनी पुरानी हथेली में ही भाग गए। इसीसे मैं जब मुकुन्द आया था तो दुम्हाजी (कोटा राजस्थान) राज घराने के चौकतबान्दजी चौक के कर्नाक होकर वहाँ गये थे। चौकतबान्दजी सेरे प्रति पक्षी मछि रखते थे। उन्होंने मुझ पर इतना सुनाया था—

इसीसे मैं इन्का तबू लगा हुआ था। एक बार राशि के समय तबू में आवाज आई—‘पहूँ’ आया। यह आवाज सुनकर

उन्होंने अपने बाल-घषों को तो भेज दिया, मगर खुद नहीं गये । दोबारा फिर वही आवाज सुनाई दी । दौलतसिंहजी ने डधर-उधर देखा-भाला, मगर कहीं कोई भी दिखाई नहीं दिया । रोज यही हाल होता रहा । मगर उनकी खुश किस्मती से उनका वहाँ से तनादला हो गया । वे कोटा चले आये । यह बात स्वयं दौलत-सिंहजी ने मुझे सुनाई थी और मुझ से पूछा था कि—‘यह क्या बात थी ?’ मैं ने उनसे कहा—‘वह ध्वनि आपकी तकदीर की ध्वनि थी ।’

दौलतसिंहजी के पिताजी की भी मेरे ऊपर भक्ति और श्रद्धा थी । कोटा दरवार उन्हें साथ बिठलाकर भोजन करते थे । एक बार दरवार ने उन्हें भोजन के लिए बुलवाया तो वह नहीं आये । उन्होंने उत्तर दिया—‘मैं मांस-मदिरा का त्यागी हूँ ।’ यह जानकर दरवार ने कहा कि यह पक्का जैन हो गया है । हमने कोटा में चातुर्मास किया तो उन्होंने निर्ग्रन्थ-प्रवचन और महावीर-चरित्र दोनों पढ़े । कोटा के बाद हम आगरा पहुँचे । कुल्हाड़ीरावजी सा दौलत-सिंहजी के पूज्य पिताजी के मन में फिर दर्शन करने का विचार आया । और विचार आते ही, पिछली रात्रि में, वे अलवाने पैर ही खाना हो गये । जब कोटा-नरेश और दूसरे मित्र उनसे मिले और पूछा—क्या बात है ? तब उन्होंने उत्तर दिया—अध मैं तपस्या करूँगा । उन लोगो ने उन्हें रोक लिया, किन्तु वे एक चौबारे में बैठ गये । अन्न-पानी का त्याग कर दिया और चार दिन बाद शरीर त्याग दिया । उन्होंने सोचा—जब घर में निकल पड़ा हूँ तो घर वापिस नहीं लौटूँगा । सचमुच वे घर नहीं लौटे और ससार से ही चल दिये ।

कहने का अभिप्राय यह है कि ससार में दिखाई देने वाली

राक्षियों हैं तो कुछ पेसी राक्षियों भी हैं खोदिलवाई नदी बेठी; मगर अपना प्रभाव अवरय दिखताही हैं ।

सेठ और सेठानी बाकी पटना का समाचार राजा के पास पहुँचा कि बहुत-सा द्रव्य लूट करके सुन्वर हबेली बनवाई और वह ध्वज हो गई । राजा न रानी से भी झिझ किया । तब रानी ने कहा—“आज हमारा पक्षग उसी हबेली में लगवाना ”

माइयो ! माता के दिवारों का असर गर्भ पर पड़ता है तो गम का प्रभाव माता पर भी पड़ता है । रानी के गर्भ में सादाव तीर्थंकर भगवान् की आत्मा विराजमान थी । उस परम पुण्यप्राप्ती आत्मा के प्रभाव से रानी में इतना साहस आगया, जो शूरवीर पुरुषों में भी कल्पित दिखताई पड़ता है । रानी की आज्ञा से जनक नौकरों ने कतरे से भरी हुई हबेली में रानी का पक्षग लगा दिया । मगर हबेली में पोंच करते ही वे झपने लगे । किसी तरह पक्षग बिदाकर ब बाहर आ गये । अकेली रानी हबेली में सोई । आधी रात्रि का समय हुआ । फिर वही आभाज कानों में पड़ी—“पड़ पड़, पड़ ?”

राणी प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए तैयार होकर ही हबेली में सोई थी । अतएव बिना पचराइट के उत्तर दिया-पड़ता है तो पक्षग जोड़ कर पड़ना । बस फिर क्या था । पड़ने वाला पक्षग जोड़ कर पड़ा । प्रातःकाल होते ही राजा अपने नौकरों-बाहरों के साथ बीड़े-बीड़े आये । हबेली में घुसकर उन्होंने ओ देखा तो उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा । रानी सज्जन और प्रसन्न थी और पक्षग के चारों ओर सोया ही सोना पड़ा था ।

हवेली का मालिक सेठ भी राजा के साथ आया-था । रानीजी ने उससे कहा - सेठ, तेरी तकदीर में सोना नहीं था, लेकिन यह सोना मैं तुम्हें ही देती हूँ ।

इस चमत्कारपूर्ण घटना का कारण रानी का गर्भ था । अतएव जब बालक का जन्म हुआ तो उसका नाम 'वासुपूज्य' रखा गया ।

तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथजी हैं । फिर अनन्तनाथजी, धर्मनाथजी और सोलहवें शान्तिनाथजी हुए । शान्तिनाथ स्वामी के समय में राजा हरिश्चन्द्र हुए हैं । इनके बाद कुन्थुनाथजी, अरहनाथजी, मल्लिनाथजी और मुनि सुव्रतनाथजी हुए । राम और लक्ष्मण इन्हीं के शासन में हुए हैं । फिर षष्ठीसवें नमिनाथजी और बाईसवें अरिष्टनेमिजी हुए । अरिष्टनेमिजी का कल कुछ परिचय दिया गया था । श्रीकृष्णजी और बलदाऊजी आदि इन्हीं के समय में हुए हैं । कृष्ण और बलदाऊ तो इन्हीं के चचेरे भाई थे ।

कृष्णजी महाराज पूर्व जन्म में ६६ लाख मासखमण की महान् और तीव्र तपस्या करके उत्पन्न हुए हैं । पूर्वजन्म की तपस्या का प्रचंड बल उन्हें प्राप्त है । अतएव किस की ताकत है जो उनका सामना कर सके ? उन्हें भौतिक बल के साथ-साथ आत्मिक बल-तपोबल-भी प्राप्त है । भौतिक बल की अपेक्षा तपोबल की शक्ति महान् होती है । संसार में सर्वोत्कृष्ट समझी जाने वाली शक्ति भी तप की शक्ति के समक्ष पानी भरती है । अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त किये बिना तपस्या नहीं होती और आत्मा पर विजय प्राप्त करना बड़ा ही दुष्कर कार्य है । कहा है—

मा सहस्र सहस्राण, संगाम दुष्प्रण विप्र ।

एगं विविद्वज्ज अप्याशुं, एस स परमा जमा ॥

—उत्तरा०, अ० ३

अर्थात्—द्वार को द्वार से गुणित करने पर इस ज्ञान होत है । ऐसे इस ज्ञान सिपाहियों की जैत्र एक तरफ और आत्मा अकेला दूसरी तरफ । एक आत्मी इस ज्ञान क्षेत्र पर विजय प्राप्त करता है और दूसरा अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करता है । इन दोनों की विजय में क्या अन्तर है ? दोनों की विजय में से निस्सी विजय अधिक मात्स्वपूर्ण है ? राक्षसकार पड़ते हैं—

एगं विविद्वज्ज अप्याशुं, एस से परमा जमा ।

जो अकेली अपनी आत्मा को जीतता है उसकी विजय परम विजय है । इस ज्ञान सिपाहियों को जीत-छेने की अपेक्षा अपनी आत्मा को जीत सेना बहुत कठिन है ।

एसी विजय तपस्या के बिना प्राप्त नहीं हो सकती । कृष्ण जी ने पूर्व जन्म में तपस्या करके आत्मसंयमक शक्ति प्राप्त की है । एक ओर ज्ञानों सैनिक हों और दूसरी ओर कृष्णजी अकेले हों, तो भी वे इन सैनिकों को एसी प्रकार लड़ा-भगा देते थे, जिस प्रकार किसान एक ही गोपल से चैक कर भिक्षुओं को भगा देता है । भीठप्य सहाराज स बीस ज्ञान अज्ञानों का बल था । वे बड़े ही अक्षय्य थे ।

उनका वपपन गोकुल में प्यतीत हुआ । गोकुल स्वर्गी कीहा भूमि है । परीक्षा न उन्हें पाखों स भी अधिक प्रीति के

साथ पाला-पोसा है। कभी-कभी देवकी रानी भी उनके पास पहुँच जाती हैं और खिलौने, वस्त्र तथा आभूषण ले जाती हैं। फिर यशोदा के भाग्य की सराहना करने लगती हैं। कहती हैं—सखी यशोदा! ससार में तुम्हारे समान कौन होगा, जिसे यह बालक रात-दिन पास में रहकर आनन्द पहुँचाता है। मैं अत्यन्त भाग्यशालिनी होती हुई भी अत्यन्त अभागिनी भी हूँ कि इसका विछोह सहना पड़ता है। यह बालक तुम्हारे और हमारे-दोनों के कुल को उज्ज्वल करेगा। हम दोनों की कीर्ति अमर कर देगा।

समय बड़ा बलवान् है। धीरे-धीरे कृष्णजी बड़े होते हैं और खेलते-कूदते तेरह वर्ष के हो जाते हैं। गोकुल में धूम मची रहती है। जिसे देखो उसी की जीभ पर कृष्णजी की चर्चा है। तमाम गोकुल-वासी कृष्ण को हृदय से चाहते हैं, प्यार करते हैं। मानों वे अकेली देवकी के नहीं हैं अकेली यशोदा के भी नहीं हैं, बल्कि सारे गोकुल के हैं। सभी गोपियाँ अपने-अपने बालकों की अपेक्षा भी उन पर अधिक प्रीति रखती हैं। उन्होंने सभी के हृदय को जीत लिया है। उनका नटखटपन सब के मन को मोह चुका है। अद्भुत-अद्भुत काम करके वे गोकुलवासियों को चकित और हैरान कर देते हैं। सब समझते हैं—कृष्ण के रूप में एक लोकोत्तर आत्मा गोकुल में अवतरित हुई है।

इस वचपन में भी कृष्ण बड़े-बड़े साहस के काम करते हैं। एक दिन उन्होंने काला साँप देखा। साँप पर दृष्टि पड़ते ही डर के मारे उनके साथी सब छोरे भाग खड़े हुए, मगर कृष्णजी तो डर को पहचानते ही नहीं हैं। वे साँप के पास चले गये और उसे पकड़ कर घर ले आये। बोले—मैया तेरे लिए वही बिलाने

का यह रस्ती से आया हूँ। पशोदा ने आ रस्ती देखी तो बसकी आँसी पर सोंप खोद गया। पुत्र के अनिष्ट की रक्षा से पशोदा बुरी तरह पबरा गई। कहा—लक्ष्मा ! इसे बाढ़ छोड़, अपनी छोड़ दे। फिर यह सोचने लगी—तीन लोक से निराशा यह बातक क्यों है ? भविष्य में अबरव ही कुछ बड़ा काम करेगा। यह मन ही मन बसकी कुराह मनाने लगी।

कृष्णजी कभी कुछ और कभी कुछ निराश्र काम किया ही करते हैं। कमी सैंस पर बढ़ कर सवारी निकालते हैं तो कमी और ही कुछ कर डालते हैं।

मात पशोदा रही रे विछेद,
मक्खन मांभी-मांगी खावे रे कुंवारियो।
अस अमना टट जावे रे सांवरियो ॥

पशोदा माता वही बिछोठी हैं तो पक्ष तो मोंग-मोंग कर मक्खन खात हैं, और जब मौका पाते हैं तो मक्खिया पर कुछ ही हाथ साफ कर देते हैं। कमी पसुना के किमारे जाकर खीका करते हैं। कमी मयूर-वीची का मुकुट अपने मस्तक पर धारण करके सुरोमित होते हैं। इस तरह—

असि कमल से दूर रहे नहीं।

सैसे भ्रमर फुलों पर आता है, उसी प्रकार कृष्णजी गुवाक बासों और गोपियों में हित मिश्र आते हैं। कमी बंसरी का राग सुनाते हैं तो इधर-उधर से भाग कर गायें इकट्ठी हो आती हैं। इस प्रकार गोकुल में सदैव बहकपहल मची रहती है। श्रीकृष्णजी

स्वयं आनन्द में रहते हुए और गोकुलवासियों को आनन्द देते हुए दिन प्रतिदिन बड़े हो रहे हैं ।

इधर एक दो दिन से कस देवकी के पास आने लगा है । देवकी की लड़की को देख कर उसने कहा—क्या यही छोकरी मुझे मारेगी ? और वह अपनी बात पर आप ही हँस दिया । फिर भी उसके दिल में धड़कन शुरू हो गई । उसने सभा में ज्योतिषियों को बुलवाया । उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि कस का विध्वंस करने वाले का जन्म हो चुका है । यह जानकर कस की चिन्ता फिर बढ़ी । उसने अपने सहारक की तलाश करने का निश्चय किया । पूछताछ करते-करते उसे पता चला कि नन्द अहीर के घर एक छोकरा है । वह छोटी-सी उम्र में ही बड़े-बड़े काम करके दिखला रहा है । कहीं वही तो कस का शत्रु नहीं है ?

कस ने जाँच-पड़ताल करने का विचार किया । उसने सोचा—गोकुल गाँव में एक केसरी सिंह को छुड़वा दिया जाय । अगर कोई असाधारण शक्ति वाला होगा तो वह सिंह को मार डालेगा । इस प्रकार उस बदमाश का पता चल जायगा । इस प्रकार विचार कर कस ने केसरी सिंह छुड़वा दिया ।

उधर कृष्णजी अपने मायियों के साथ खेल रहे थे । सिंह को देखते ही सब के सब भर-भरा कर भागे । कृष्ण से भी कहने लगे—कान्ह ! भाग आओ, भाग आओ ! मगर कृष्ण तो किसी और ही बात के बने थे । वे कब भागने लगे ? उन्होंने भागने वालों से कहा—ठहरो, ठहरो, भागो मत ! यह तो गीढ़ की तरह है । देखो, मैं इसे अभी पकड़ लेता हूँ । और सचमुच ही कृष्ण ने सिंह को धर दबोचा । फिर उसके दोनों जबड़े फाड़ कर उसे चीर डाला ।

कंस की रीका दूर हो गई । वह समझ गया कि नन्द का यह छोरा ही मेरा शत्रु है । उसने कृष्ण को मार डालने के लिए अब की बार एक कुछ बड़े को भेजा । कृष्ण ने छठे भी सीधा कर दिया ।

मगर नन्द और यशोदा अब चौकस हो गये हैं । उन्हें कतरे का घामास होने लगा । नन्द कृष्ण को बाहर जान से रोकने लगा । वह बाहर निकलना चाहते हैं तो यशोदा उनका रास्ता रोक लेती है । मगर अब होता इधर उधर भिड़त जाते हैं और मीका पाते हैं तो कृष्ण पर स झू हो जाते हैं और बांगल में आ पहुँचते हैं । वहाँ गुवाक-बाजों के साथ खेलते हैं । यशोदा उन्हें खंड-फटकार बतलाती है तो मोले बनकर, मुस्कराते हुए कहते हैं—भैया, गुवाकों के कड़के आये थे और अबरैसी मुझे पकड़ कर ले गये थे । मैं ने बहुत मत्ता किया, माने ही नहीं । कमी यह बेटे हैं भा तो माँ खेजने की मन में आ गई थी ।

एक दिन कृष्ण अपने साथियों के साथ खेल रहे थे । अथा मऊ बारह घिर आये और घोड़ों की बर्षा होने लगी । भीग जाने के डर से कड़के पहराने लगे । सब आप बोले—इस पर्वत को उठा लो और इसकी छाया में लपके रहें तो नहीं भीगेगे । कड़के बोले—पागल हो गये हो कनईबा ! कमी पर्वत भी उठाना या सकता है ? तब कनईबा ने कहा—पोंच भाइमी मिलकर बाहें सो कर सकते हैं । देखो मैं पर्वत को उठाता हूँ । तुम लोग भी बोझ-बोझ और हगामा । कृष्ण ने जोर लगाया और पर्वत उठ गया । यशोदा को पता चला तो वह भागी-भागी आई और बोई पकड़ कर घर ले

गई। वह मन ही मन इस अद्भुत बालक के लिए प्रभु से प्रार्थना करने लगी।

इसी प्रकार एक दिन कृष्णजी अपने साथियों को लेकर जमुना के किनारे खेलने लगे। कालीदह भरा हुआ था —

लेकर डंडा, मिलकर संडा,

कान्ह कुँवर जब रमण निसरियो ॥

खेलत गेंद गई जमना में,

कूदि परयो जहां काली-दह भरियो ॥

बहुत-से बालक मिलकर और अपने-अपने ढंके लेकर खेलने निकले। कृष्णजी उनके कप्तान थे। जमना के किनारे सब गेंद खेलने लगे। खेलते-खेलते गेंद नदी में जा गिरी, गड़गप हो गई। दूसरे लड़के कहने लगे देखो कन्हैया! तेरी बाजी है और गेंद तेरे हाथ से नदी में गिरी है। सौ या तो गेंद निकाल कर लाओ या हार मानो! मगर कृष्ण कब हार मानने वाले थे? उन्होंने कहा—देखो, अभी गेंद निकाल लाता हू। यह कह कर वह कपड़े उतारने लगे। बालकों ने कहने को कह तो दिया था, मगर वे यह नहीं चाहते थे कि कृष्ण जमनाजी में कूद पड़े, क्योंकि सभी बालक उन्हें बेहद प्रेम करते थे। कृष्णजी को सवमुच तैयार होते देख वे डर गये और नदी में न कूदने के लिए आग्रह करने लगे। मगर अनोखे काम किये बिना कन्हैया को चैन कहाँ? वे तो लंगोट कस कर काली दह में धड़ाम से कूद पड़े। काली दह में नागकुमार देवता का वास था। नागकुमार साँप के रूप में और उसकी पत्नी सर्पिणी के रूप में रहती थी। कृष्ण वहाँ पहुँचे तो नागिन ने कहा—

धरे होकरे ! क्या पाठाक्ष-लोक में जाने के लिए यहाँ आया है ?
बन्सी भाग जा, अभी मेरे पति सो रहे हैं ।

सोते नाग मेरे मुरतार ।

यहाँ से परा निकलना बाहर ॥

अभी मेरे स्वामी रायन कर रहे हैं । उनके वागने से पड़ने
ही तु बाहर निकल जा ।

कृष्ण ने कहा—मेरी गेंद दे दो तो मैं भाग जाऊँ ।

नागिन—भाबे पर काका मँडरा रहा है क्या ? यहाँ गेंद
का क्या काम है ?

कृष्ण—बरा-सी गेंद के लिए मुठ बोकती हो ? यह तो
बोरी सी है ।

नागिन तु ही गेंद की चोर ।

यों कहि बोले नन्दकिशोर ॥

ह नागिन ! अभी हम किनारे पर सोक रहे थे । गेंद में मैंने
जोरशर डंका लगाया तो वह बहस कर पानी में आ गिरी है ।
हमारे देखते-देखते तो यहाँ आई है और तुम भीबत बिगाड़
रही हो ।

नागिन ने सोचा—डंका बड़ा निर्भीक है । अभी तो कासी
रह में कूद पड़ा है और किस चक्कर के साथ बातें करता है ?
फिर कहा—

तरी गेंद मैंने ली कब और कब पकड़ मेरा पट्टा ।

नारी जाति से विवाद करता, तू है बड़ा चिबिल्ला ।
देता गेंद की चोरी सिर पर, तू है बड़ा निठल्ला ॥

तू ने गेंद लेते कब मेरा पल्ला पकड़ा है ? औरत की जाति जान कर मेरे सामने वारें बना रहा है और हैकड़ी दिखला रहा है । मगर मैं ऐसी-वैसी औरत नहीं हूँ । चाहूँ तो तुम्हें अभी मजा चखा सकती हूँ । लेकिन वालक जान कर क्षमा करती हूँ । अपना भला चाहता हो तो जल्दी भाग जा, नहीं तो मैं अपने पति को जगा दूँगी । वह जागते ही तेरी जान ले लेंगे ।

कृष्ण ने निडर हो कर कह दिया—मैं नाग क्या नाग के बाप से भी नहीं डरता ! बड़ा घमंड करती हो पति का । जगा कर देख लो न ।

नागिन को क्रोध आ गया । वह अपने पति के पास जाकर कहने लगी—

अब तो जागो जी भरतार,
मुझ से कान्ह करे तकरार ।
कान्ह करे तकरार नाथ जी-
कान्ह करे तकरार... ॥

कान्हों यहाँ आ पहुँचा है और मुझे चोरी लगा कर मगड़ रहा है । मेरी बेइज्जती करता है । आप जागिए ।

जागा-नाग सहस फन धारी ।
जिसका तेज बड़ा है भारी ॥

कहते हैं, उस नागनेत्र ने अपने हठार फन कर लिये । वह फुफ्फुकारता हुआ कण्ठ के सामने आया । कण्ठ के हाथ में गेंद सेलने का डंडा था और बांसुरी भी । मगर हठार फन बाधे साँप के सामने डंडा और बांसुरी क्या काम आ सकते थे ? लेकिन पुण्य जिसका उद्धार होता है, उसका कभी कुछ भी बिगाड़ नहीं हो सकता । कण्ठजी के पुण्य के प्रभाव से गरुडनेत्र भागे और उन्होंने एक हठार कण्ठ के रूप बना लिये । आखिर कण्ठ ने माग को माथ ढिंका और उसके फन पर लड़े हो गये ।

नागिन को स्वप्न में भी यह लवाक नहीं था कि इस छोकरे की बीजा इतनी विचित्र है ! उसने अपने पति की दुर्बला देन कर कहा—तुम अपनी गेंद ले लो और मेरे पति को छोड़ दो ।

कण्ठ—मरी यह सचारी है । मैं इसे नहीं छोड़ूँगा ।

उधर साय के बाकलों ने यह बात देखा तो इतने पचराये कि न पूछो बात । काम से कई भागे-भागो परतोदा के पास पहुँचे । परतोदा को सारी कथा सुनाई तो उसके भी प्राण सूख गये । सोचने लगी—न जाने इस बाकल का क्या होमहार है । कितना रोकती हूँ मगर मानता ही नहीं । और फिर वह न बाकलों पर भी लक्ष्य पड़ी । बोली—

कहैयो म्हारो जमना में कुद पकपा ॥

जहाँ रे ब्रह्म का सोम ठमारा, कोई न आय कहयो ॥

तुम सब साग बड़े दुष्ट हो । इस ब्रह्म के सभी लोग ठगोरे हैं । उल्लूक धमुना में कुदने लगा तो किसी ने भी लक्ष्य नहीं की !

मगर यशोदा को चैन नहीं पड़ी । वह भागी-भागी यमुना के किनारे आई । वहाँ मौजूद बालक से पूछा—कृष्ण कहाँ है ? इसी समय कृष्ण ने माथा बाहर निकाला । लडके चिल्ला उठे—कालिया आ गया, कालिया आ गया । कृष्ण किनारे आये तो गेद भी साथ लेते आए । उन्होंने नाग और नागिन को विदा कर दिया । यशोदा ने नाग के ऊपर कृष्ण को सवार देखा तो पूछा—यह क्या है कान्हू । कान्हू बोले—कुछ नहीं मैया, यह मेरी सवारी है ।

करे यशोदा आरती भर मोतियन का थाल ।

बजे बान अरु वासुरी, नृत्य करे गोपाल ॥

यशोदा ने कृष्ण की आरती की और उन्हें घर ले आई । अब वह और अधिक सावधानी रखने लगी ।

कालिया नाग को नाथ लेने की घात मामूली घात नहीं थी । वह गोकुल तक सीमित नहीं रही । इस घटना का समाचार मथुरा तक पहुँचते-देर न लगी । कस के कानों में बात पहुँच गई । इससे एक ओर कस की चिन्ता और घबराहट बढ़ गई और दूसरी ओर किसी न किसी उपाय से कृष्ण को यमलोक पहुँचा देने की भावना भी बढ़ गई । वसुदेवजी ने जब यह वृत्तान्त सुना तो उन्हें भी चिन्ता हुई । वे सोचने लगे—मैंने तो कृष्ण को गोकुल इसलिए भेजा था कि छिपकर बैठा रहे, लेकिन वह तो अपने बल और पौरुष के द्वारा बाहर आ रहा है । कहीं कोई अनर्थ न हो जाय । बालक अभी छोटा है । वसुदेवजी ने इस प्रकार सोच-कर नन्द को सदेशा भेज दिया—कृष्ण को जरा कठोरता के साथ

कण्ठ में रखता और मूत्र बूझ कर भी मथुरा में मह आने देता । अब बलमशूरी भी कण्ठ के पास आ गये । दोनों भार्य बड़ ही प्रेम से गल्ल लगा कर मिला । दागों में बहुत प्रीति बढ़ी । कण्ठजी अब तब चकल से, अब उनके दूसरे सहायक भी आ पहुँच । फिर क्या था ? अब किसकी ताकत को उनका बाह्य भी बाध कर सक । दोनों भार्य आनन्द में रहते हैं रोह-झूड़ में समथ व्यतीत करते हैं और एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ते । शिपर निकल पड़ते हैं गावियाँ और गोप उन्हें घेरे रहते हैं । कभी-कभी गोकुल और मथुरा के बीच में करव की खाया में बैठते हैं और इच्छामुसार मजा मीज करत हैं ।

गोकुल की व्याधिनें वही-दूध लेकर मथुरा में बेचन के लिए निकलती हैं तो कण्ठजी अपने साथियों को हुक्म देत-हैं—जाओ इन्हें कहा कि हमारा टैक्स देकर आगे बढ़े । लड़के टैक्स मँगते हैं । बहुत-सी व्याधिनें साबती हैं—इस कल्लट लड़के से कौन छत्रमे यह मोषकर व भुषणाय कुछ हिस्सा वही-दूध-मक्खन भारि का ह बेनी हैं । किसी व्याधिन का मत्तारणन करने की इच्छा हाठी है तो वह सीधी तरह टैक्स नहीं चुकाती । इसी बहाने वह कण्ठ से बाधे कर लेती है और शिप को सन्तुष्ट करती है । यह कहती है—जाओ यह हो नहीं बूगी । क्या मैं नन्दलाव से डरती हूँ ? तुम गोकुल में रहत हो तो मैं भी गोकुल में ही रहती हूँ । बाद रक्ता, तंग क्रिया तो कस राजा से खरियाव कर बूगी ।

लड़के जाकर कण्ठ से कह देते हैं । कण्ठ स्वयं था बमकते हैं । कहत हैं—जानती हो मरा नाम ? मैं बकि के बॉकियन को कस मर म छीक कर देता हूँ । कंस को-मुत्ताना हो तो जुटा जाओ ।

मैं तो यही चाहता हू कि वह मेरे पास आ जाय तो देश का सकट भिटे । उसे पल भर में नीलाम बुलवा दू । मगर वह आता कहाँ है ?

गवालिनें कृष्ण की बातें सुन-सुन कर प्रसन्न होती हैं । कहती हैं—तुम छोटे मुह बड़ी बात मत किया करो । कितने चिथिल्ले हो तुम । जरा-से दही और मक्खन के लिए तरसते हो । लो, जितना खाना हो, लो । और वे उनका टैक्स अदा कर देती हैं ।

भाइयो ! यह वर्णन इस बीसवीं शताब्दी का नहीं है । आजकल तो दही-दूध इस देश में दुर्लभ पदार्थ हो गये हैं । जिस जमाने का यह वर्णन है उस जमाने में भारतवर्ष में, दूध-दही की नदियाँ बहती थीं । इस देश में पशुधन की बहुतायत थी । शायद ही कोई अभाग्य गृहस्थ ऐसा होगा जिसके घर गायें-भैंसे न रहती हों । अतएव यहाँ न दूध की कमी थी और न दही की कमी थी । यही कारण था कि उस समय की प्रजा खूब सन्तुष्ट और वलिष्ठ थी । दूध-दही आदि गोरस जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाले हैं । जिन लोगों के लिए यह पदार्थ सुलभ होते हैं, वे भाग्यवान् समझे जाते हैं । आज की स्थिति को देखते हुए उस समय की कल्पना करना भी कठिन है । अत्यन्त खेद का विषय है कि आज दूध-दही की अत्यन्त कमी हो जाने के कारण लोगों को नकली दूध और वनस्पति का घी-जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ही हानिकारक है, इस्तेमाल करना पड़ता है । इन पदार्थों के इस्तेमाल से तरह तरह की नयी-नयी बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं और जनता का स्वास्थ्य और बल घटता जा रहा है ।

इस परिस्थिति का मुकाबिला कैसे किया जा सकता है ? इस प्रश्न को गंभीरता के साथ विचार करने की आवश्यकता है । इस दयनीय व्रत का मुख्य कारण है पशुधन के प्रति वैसी भावना न रहना जैसी पहले थी । पहले के लोग गाव को माता मान कर उसका पालन-पोषण और रक्षण करते थे । आज लोग गाव को भी कसाई के सिपुह करते हुए संकोच नहीं करते । पहले के लोग गावों की रक्षा करके उनके दूध-दही का उपभोग करते थे और आज लोग गाव को ही ला जाते हैं ।

माइयो ! फल की प्राप्ति कैसे होती है जो दूध की रक्षा करता है । दूध की रक्षा करने वाला सर्वत्र उसके फलों का उपभोग कर सकता है । मगर जो आइसी दूध को ही पकाव कर कैक देगा या बचा देगा, उसे फिर फल कैसे मिल सकेंगे ? गाव दूध के समान है और उसका दूध फल के समान है । गाव की रक्षा करते बासों को दूध दही आदि मिल सकते हैं, मगर जो गाव को ही काट कर का बायगा उसे तो उसके फल से वंचित ही होना पड़ेगा । जिस देश में गाव की पूजा की जाती थी, वही देश में आज गाव काटी और जार्र जाती है ! यह किंतुने सोच का विषय है । इसी के चरमरूप आज लोग दूध-दही के किए तरसते हैं । श्री कृष्ण ने गोकुल में रह कर गे जाति की महिमा को बढ़ाया था । उस समय गुजालिनें अगर कृष्णजी को दही-मक्खन दे देती थीं तो जार्र नहीं बात मही थी । इससे उन्हें कोई बड़ी हानि नहीं होती थी ।

श्रीकृष्ण गोकुल की समस्त गोपियों के प्यारे थे । गोपियों कभी-कभी पशोबा से चरती—दुग्धने भी लूट जाता है इस कान्हा

को । यशोदा हँस देती और कहती—यह क्या अकेला मेरा ही है ? तुम सभी का है वह । तुम्हारा न होता तो तुम उसे प्यार क्यों करती ?

नन्दजी के घर दूध, दही, मक्खन आदि की कमी नहीं थी । उनके पास दस हजार गायें थी । फिर भी कृष्णजी मौज करने के लिए ही दूध-दही की छीना-फपटी या चोरी कर लिया करते थे । इस प्रकार सारे गोकुल में वे एक प्रकार का उल्लास बनाये रखते थे । अब उनकी उम्र करीब-१५-१६ वर्ष की हो गई थी ।

इधर कंस की बहिन सत्यभामा बड़ी हो गई । कंस ने उसका विवाह करने के लिए स्वयंवर करने का निश्चय किया । देश-देश के राजाओं को आमत्रण भेज दिये गये और मथुरा में विशाल और सुन्दर सभामण्डप बनाया गया । स्वयंवर मण्डप यमुना के किनारे तैयार हो गया । दूर-दूर के राजा स्वयंवर में सम्मिलित होने आये ।

कंस ने स्वयंवर में सारंग धनुष रक्खा और घोषणा की कि जो राजा या राजकुमार इस धनुष का चढ़ाएगा, उसी के गले में वरमाला पड़ेगी । वही सत्यभामा को प्राप्त कर सकेगा ।

वसुदेवजी का एक लड़का अनाधिष्ठिकुमार था । वह गोकुल में आया और कृष्ण तथा बलराम से मिला । दूसरे दिन तीनों भाई साथ-साथ मथुरा के लिए रवाना हुए । रथ में बैठ कर वे चले तो कृष्ण ने कहा—इस मार्ग से चलो । अनाधिष्ठिकुमार बोले—यह मार्ग खराब है । बीच में झाड़ू-झंखाड़ू बहुत हैं । तब श्रीकृष्ण

ने कहा—परवाह मत करो । चासिर कुप्प के बगाने मागसे ही रथ रवाना हुआ । रास्ते में जो झाड़ पेड़ आये कुप्पजी ने उन्हें मूली की तरह उखाड़ कर फेंक दिया और मधुरा तक का रास्ता साफ कर दिया । जमनाजी को पार करके रथ मधुरा पहुँचा ।

सीतो कुमार सीधे स्वर्णर-मंडप में जा पहुँचे । स्वर्णर मंडप में अनेक देवों के वृषसिंहास शान के साथ बसे हुए हैं । विविध प्रकार के बच्चों और अर्द्धकारों से अर्द्धकृत व ऐसे माहूम होते हैं, जैसे देवाग्र्य मनुष्य का रूप धारण करके बैठे हों । सब के मन में सत्यमामा को प्राप्त करने की प्रबल कामना जाग रही है । अपने बल और पौरुष पर भरोसा रखने वाले राजा लोग यही समझ रहे हैं कि बस सत्यमामा हमें ही मिलन वाली है । प्रभु सत्यमामा जलम सिंगार से सजकर, अप्सरा के समान सुरोमित होती हुई स्वर्णर मंडप में आईं । उसके साथ उसकी सखियाँ थी । सत्यमामा के हाथों में बरमाला सुरोमित थी ।

प्राचीन काल के इतिहास में ऐसे-ऐसे स्वर्णरों की अनेक घटनाएँ जानने को मिलती हैं । स्वर्णर में मनुष्य जानने या तरबतर करने की जो शक्ति रखती आती थी वह बरा की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण थी । यही शक्ति से बीरता और पराक्रम को प्रोत्साहन मिलता था । अत्रिय लोग ऐसे भवसरों पर विजयी होने के लिए सदैव प्रयत्नरत रहते थे । इससे बरा में बीरता बढ़ती थी । प्रतिस्पर्धा की भावना से बीरता में एक दूसरे से बढ़ जान की कोशिश करते थे । यही कारण है कि उस समय में एक ने बढ़कर एक बीर पुरुष हुए हैं ।

आज दुर्भाग्य समझना चाहिए लोगों का कि उनकी दृष्टि वीरता, शूरता और शक्ति की तरफ नहीं रही है। आज शूरता के बदले सम्पत्ति, वीरता के बदले धित्त और पराक्रम के बदले पैसे की पूजा होती है। आज विवाह करते समय वर की शक्ति और वीरता को कोई नहीं पूछता, केवल धन को ही पूछती होती है। धन ही मनुष्य की सर्वोत्तम कसौटी बन गया है। जब गुणों को कोई टके सेर नहीं पूछता और धन को ही परमेश्वर समझा जाता है तो नतीजा यही होता है कि लोग गुणों की तरफ ध्यान न देकर धन को ही अपने जीवन का उद्देश्य समझने लगते हैं। आज यही दशा इस देश में हो रही है। सब लोग पैसे के पीछे पागल हैं। जीवन की कोई कीमत नहीं, विद्या का कोई मूल्य नहीं, सद्गुणों की कोई पूछ नहीं है। जो कुछ है, आज धन ही सार-सर्वस्व है।

भाइयो ! मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ और किन शब्दों में कह कर समझाऊँ ? और कौन नहीं समझता कि जीवन और धन में से जीवन ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है ? धन जीवन के लिए है, जीवन धन के लिए नहीं है। माना कि जीवन को सुखमय बनाने में, गृहस्थ-अवस्था में धन की जरूरत होती है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि तुम धन के लिए अपने सारे जीवन को और समस्त सद्गुणों को ही निछावर कर दो।

आज धन के सम्बन्ध में प्रतिस्पर्धा होने के कारण और धन को ही प्रतिष्ठा मिलती देख कर लोग विवाह-शादी जैसे अवसरों पर भी धन को ही महत्त्व देते हैं। कन्या का पिता चाहता है कि मुझे लक्ष्मि-पति जैसा मिले और लड़के का पिता चाहता है

कि मुझे ऐसा कोई संबंधी मिल जाय तो मन से मरु घर मर दे ! इस तरह दोनों की नजर मन पर ही होती है । इससे बेचारे गरीबों की हिस्ती परेशानी होती है, इस ओर किसी का लयाल नहीं जाता । बोम्प से बोम्प लड़के कुंवारे फिर हैं और मनवान् बूढ़े शायिर्षो करके अपने मुद्दाप का लडावत हैं । जिस देश की ओर जिस जाति की पेसी बरा हो उसका उत्थान कैसे होगा ?

माथीन काष्ठ में बीरता का सत्कार होता था, आज कम का सत्कार होता है । देश का यह पठन क्या सामान्य पठन है ? बीरता का सम्मान करने के लिए ही उस समय की स्वयंवरप्रथाही में ऐसी-ऐसी शर्तें रखी जाती थी । कम ने भी उस समय की प्रथाही का ही अनुसरण करके स्वयंवर में यही शर्तें रखी कि जो सारा पतुप को बढ़ाएगा, उसी के साथ सत्यमामा का विवाह कर दिया जायगा ।

राजा लोग बारी-बारी से अपने अपने स्थान से उठते हैं और पतुप बढ़ाने की कोशिश करते हैं । उनमें से कोई असफल हो जाते हैं और कोई पतुप लेव कर ही लौट जाते हैं । इनका मुंह कच्चा स लाल हो जाता है और वे भीची भाँसें करके अपनी जगह बैठ जाते हैं । जब की बार अनाधिपकुमार पतुप छठाने लगा तो उसका पैर फिसल गया । लोग हँसने लगे । वही समय भीकृष्ण न जो उसके पास ही कब से पतुप को छटायो और अनायास ही बढ़ा दिया । पतुप बढ़ाकर कृष्णजी ने जो हँकार की तो राजा आ की उस समा में सज्जाटा जा गया ।

दूसरे दिन मलयुद्ध का विजय हुआ । कृष्ण और कज्जाल दोनों गोकुल लौट आए । परीक्षा से बहा-नैबा मुकद बसी ही

हमारे लिए पानी गर्म कर देना । कल कस के मल्लों से हमें कुशती लड़नी है । कस के मल्लों से कुशती लड़ने की बात सुन कर यशोदा का हृदय कॉपने लगा । वह सोचने लगी—कहाँ यह कोमल बालक और कहाँ राक्षसों सरीखे कस के मल्ल । कोई अनर्थ अब होना ही चाहता है । उसने कृष्ण को बहुतेरा समझाया पर कृष्ण कब मानने वाले थे ? फिर भी सुबह होने पर उसने पानी गर्म नहीं किया । तब बलरामजी को गुस्सा आ गया । बोले—‘आखिर तो अहीरनी ही ठहरी ।’ यह शब्द सुन कर कृष्णजी को गहरा आघात लगा । उन्होंने बलदाऊ को फटकारा और कहा—मेरी माता का फिर इस प्रकार अपमान करोगे तो समझ लेना कि कुशल नहीं है । कोई दूसरा होता तो मैं उसकी जीभ पकड़ कर बाहर खींच लेता । खबरदार, फिर कभी ऐसे शब्द कहे तो ।

बलराम बोले—गुस्से में निकल गया । मैं ऐसा कहना नहीं चाहता था । मगर तुम्हारी असली माता रानी देवकी हैं । तुम राजा वसुदेव के पुत्र हो । यह बात तुम्हें अभी मालूम नहीं है ।

कृष्णजी अपने जीवन का यह नवीन मर्म सुनकर चकित और विस्मित रह गये । आज उनके हर्ष का पार नहीं था । ऐसा उत्साह उनमें जाग उठा, मानो सौ गुना बल बढ़ गया हो ।

दोनों भाई मंडप में आये तो दरवाजे पर दो मस्त गज-राज खड़े थे । कस ने महावतों को सिखला दिया था कि कृष्ण और बलराम ज्यों ही इधर आवें हाथियों को इशारा कर देना और दोनों को कुचलवा देना । किसी तरह जीवित न बचने पावें ।

यही हुआ। इपर दोनों भाइयों ने हिंसा भी मचाई। मगर दोनों ने एक-एक हाथी की सूँड़ पकड़ी और जमीन पर पटक दिया। फिर उनके बतखों को उठाकर मार दिया। इतना करके वे समा मरहट में पहुँचे। अन्त में दोनों भाइयों का कंस के भाण्ड और मुष्टिक नामक मत्तों के साथ झुलसी हुई। अन्त में एक और भाण्ड और दूसरी ओर कपड़ों को देखकर दौड़कर पकड़ ली। कई करने लगे—क्यों हाथी भाण्ड और क्यों बाकल कपड़। हाथ इस बाकल की क्या बुराई होगी? जिन्हें कंस के कुछ अभिप्राय का पता था, वे आस तौर से बिन्ता में पड़ गये। उन्होंने समझा बाकल कपड़ को जला भी नहीं बचा सकता। मगर कंस के बहरे पर उस समय एक अद्भुत शौर्य और अमूर्त तेज मन्त्रक रहा था। उन्होंने निर्भीकता से कहा—केसरी सिंह के सामने हाथी की क्या बुराई होती है, बाकल में पड़ी बाप लोगो का बतलायेगा।

आखिर झुलसी में झुलसी ने वह वीरता बतलाई कि लोग दाँतों लसे बगली बचाने लगे। भाण्ड मारा गया और कपड़ बिजली हुए। उधर बलराम ने भी मुष्टिक को प्राणहीन करके दराकों को आश्रय में बुला दिया। दराकों की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। मगर कंस के दर के मारे किसी ने ठाढ़ी नहीं बसाई।

फिर भी कंस के ज्योति में कम रूप मारण किया। पहले दोनों हाथी मारे गये और अब दोनों मत्त भी मारे गये। वह देखकर भीतर ही भीतर कंस काँप उठा। उसे पक्षी के दोनों पंख उठाकर दिये जाएँ तो वह पक्षी काचार और बिकरा हो जाता है,

उसी प्रकार कस लाचार और विवश होता हुआ भी ऊपर से क्रोध दिखलाने लगा । उसने कहा—इन दोनों वदमाश छोकरों ने कुश्ती के नियमों का उल्लंघन करके मेरे मल्लों को मार डाला है । यह हत्यारे हैं । हत्या के अपराध में इन्हे प्राणदंड की सजा दी जाय । साँप को दूध पिला कर नन्द ने भी घोर अन्याय और जुल्म किया है, उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली जाय ।

कंस की यह बौखलाहट सुनकर कृष्ण के नेत्रों से आग बरसने लगी । उन्होंने कस से कहा—पामर ! पहले अपनी जान बचाने की फिक्र कर, फिर हमें प्राणदंड देना । जरा होश सँभाल । भगवान् का नाम जप ले । जिन्दगी में कभी परमात्मा को याद नहीं किया होगा, अब मौत के समय तो याद कर ले । परलोक की तैयारी कर ले ।

कस तलवार हाथ में लेकर खड़ा हो गया । कृष्ण पर वह वार करने को तैयार हो ही रहा था कि कृष्ण ने उसकी तलवार पकड़ ली । एक हाथ से तलवार और दूसरे हाथ से कस की चोटी पकड़ी । चोटी पकड़ कर भरी सभा में उसे घननन, घुमाकर उसे जोर से फेंक दिया । शेर के सामने बेचारा मृग क्या कर सकता है । कृष्ण ने कहा—पातकी ! तू ने मेरे छह भाइयों के प्राण लिये हैं और प्रजा पर घोर अत्याचार किया है । तू ने अपनी बहिन और बहिनोई को भी नहीं छोड़ा । उन्हें तू ने कागगार में कैद किया । अरे कस तेरे पापों का कहाँ तक बखान किया जाय, तू ने अपने मगे बाप के साथ भी दुश्मन के समान व्यवहार करके उन्हें कैदी बना रक्खा है । तेरे अत्याचार चरम सीमा को प्राप्त हो चुके हैं । तेरे पापों का षड़ा भर चुका है । अब इस पृथ्वी

पर जीवित रहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

इस प्रकार कंस का ज्वल करकं कृष्णजी ने अपनी नि अत्याचार और अन्याय का अन्त किया। कंस का पठन एवं कर सग्नन पुरुषों का परम प्रमोद हुआ। तुर्जन लोग भय से र्कप ठह।

माइयो ! बीबीस तीर्थंकरों का विवरण आपने सुना रहा था। बाइसवें तीर्थंकर भगवान् नमिताय के समय में कृष्णजी और पद्मपुत्री हुए। इन्होंने अपने चरित स लोगों को विस्मिन् किया।

बाइसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनमि के बाद भगवान् पारवनाथजी और अश्विन तीर्थंकर भगवान् महावीर हुए। भगवान् पारवनाथजी के जीवन की भी अनन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं और महावीर स्वामी के जीवन में भी अनेकानेक महत्त्व तथा श्रेष्ठपूर्ण वृत्तान्त हैं। इन दोनों तीर्थंकरों के जीवन चरित प्रबल-प्रकाशित हो चुके हैं। आज इतना समय नहीं है कि हमारे जीवन पर प्रकाश डाला जा सके।

किसी भी महापुरुष का जीवन लीजिए, आपको सब में एक ही बात मिलेगी। मान्य सब की जीवनी एक ही चक्र पर घूमती है। वह चक्र है तपस्या का। प्रत्येक महापुरुष के जीवन में तप का ही क्षेत्र उद्भासित होता है। महापुरुष का परिचय अर्थात् तप की शक्ति का परिचय। तपस्या के प्रभाव से महापुरुष का जन्म होता है। तप व प्रभाव से ही वह असीमिक रूप बनकर दिग्गजाते हैं।

कृष्णजी ने अपने जीवन में जो चमत्कार कर दिखलाये थे, उनका बीज कहाँ है ? गोकुल के पानी ने कृष्णजी में अनूठी शक्ति और तेज नहीं उत्पन्न कर दिया था । गोकुल का पानी तो सभी गोकुलवासी पीते थे । कृष्णजी खाना भी वही खाते थे जो दूसरे लोग खाते थे । फिर उनमें अलौकिक शक्ति कहाँ से आ गई ? इस प्रश्न का उत्तर हमें उनके पूर्व जन्म के वृत्तान्त से मिलता है । वे कठोर तपस्या करके आये थे । तप का तेज अपने साथ लाये थे । उसी तेज के प्रभाव से उन्हें महान् बल, पौरुष, यश और सन्मान मिला ।

भाइयो ! इस वृत्तान्त को सुनाने का अभिप्राय यह है कि आप भी शक्ति के अनुरूप तपस्या करो और अपनी आत्मा को तेजस्वी बनाओ । यह पर्युपण महापर्व तपस्या का अपूर्व अवसर है । तपस्या करोगे तो इस लोक में और परलोक में आनन्द ही आनन्द होगा ।

स्थान-जोधपुर }
ता० १-६-४८ }



१३०१/१०५२

श्रीमोक्ष प्रेस रातनाम.

१३५

